भूमिका

स्वास्थ्य कला और गृह-प्रबन्ध की रचना विद्याविनोदिनी तथा हाईस्कूल की परीक्षा के पाठ्य क्रम के अनुसार की गई है। इसमें उन सभी विषयों पर सविस्तर प्रकाश डाला गया है जिनका जानना हमारी कन्याओं और गृहदेवियों के लिए परम आवश्यक है। हमारे शरीर की रचना, शरीर के मुख्य-मुख्य अंगों की रक्षा, भोजन, जल, वायु, गृह की सफाई, रोग और उनके कारण, रोगों से बचने के उपाय, सरल चिकित्सा, आकस्मिक चिकित्सा, गृह प्रबन्ध आदि के नियम इस पुस्तक के विषय हैं। ये ऐसे विषय हैं जिनका समुचित ज्ञान हो जाने से बालिकाएँ और देवियाँ अपना भावी जीवन सुधार सकती हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में कुल चौदह अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में एक विषय पर गंभीरतापूर्वक विचार व्यक्त किया गया है। भाषा सरल, सुबोध और प्रवाहपूर्ण है। अन्त में प्रश्न भी दे दिये गये हैं। आवश्यकतानुसार चित्र देकर विषय को भली भाँति हृदयगम कराने की पूर्ण चेष्टा की गई है। इस प्रकार यह पुस्तक आदि से अन्त तक उपयोगी बनाने की चेष्टा की गई है। आशा है जिन बालिकाओं और देवियों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है उनको इससे पर्याप्त लाभ होगा।

—लेखक

विषय-सूची

अध्याय १

हमारे शरीर के मुख्य अंग

स्वास्थ्य के नियमों को भली भाँति समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि हमारे शरीर के मुख्य भाग क्या हैं, उनका काम क्या है और वे अपना काम किस प्रकार करते हैं, अर्थात् शरीर-विज्ञान का कुछ ज्ञान प्राप्त करना उचित है।

तुम्हारा शरीर एक प्रकार का इञ्जन है। इञ्जन को चलाने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है। बिना शक्ति उत्पन्न किये इञ्जन का चलना असम्भव है। यह शक्ति इञ्जन के अन्दर कोयला जलाकर पैदा की जाती है और इसी के कारण इञ्जन रेलगाड़ी को खींचकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है। इसके लिए उसे शक्ति की आवश्यकता होती है। मनुष्य चलता-फिरता, पढ़ता-लिखता, खेलता-कूदता—सच पूछो तो हज़ारों तरह के काम नित्य प्रति करता है। इन कामों के करने के लिए उसे भी शक्ति की आवश्यकता होती है और वह शक्ति उसके शरीर के अन्दर उत्पन्न होकर प्रयोग में आती है। बिना कोयला जलाये इञ्जन नहीं चल सकता। कोयला जलने से ही इञ्जन को अपने काम के लिए शक्ति मिलती है। इस प्रकार बिना खाना खाये मनुष्य का शरीर अपना काम नहीं कर सकता। मनुष्य को खाने से ही शक्ति मिलती है। खाना एक प्रकार का ईंधन है, जिसे जलाकर शरीर शक्ति उत्पन्न करता है और उसे अपने काम में लाता है।

जैसे रेल के इञ्जन में एक विशेष भाग इसलिए होता है कि उसके अन्दर कोयला फेंककर जलाया जाय, वैसे ही मनुष्य के शरीर में कुछ

अंग खाना पहुँचने और हज़म करने के लिए होते हैं। इन अंगों को पाचन यन्त्र कहते हैं। जो भोजन हम करते हैं, मुँह में होकर मेदे, आँतों आदि में जाता है और ये सब पाचन-यन्त्र के ही भाग हैं।

इञ्जन में कोयला जलने के लिए यह आवश्यक है कि हवा अच्छी तरह अन्दर जाती रहे बिना हवा के पदार्थों का जलना असम्भव है, बिना पदार्थ जले शक्ति उत्पन्न नहीं हो सकती। तुमने देखा होगा कि लालटेनों में बत्ती के पासवाले भाग में छोटे छोटे अनेक छेद होते हैं। इन छेदों में होकर हवा अन्दर जाती और बत्ती के जलने में सहायता करती है। यदि इन छेदों को बिलकुल बन्द कर दिया जाए, तो लालटेन का जलना असम्भव हो जावे, क्योंकि वायु के बिना पदार्थ जल नहीं सकते।

जिस प्रकार इञ्जन को वायु की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार शरीर को भी होती है। प्रति क्षण नाक के द्वारा हवा जाती और बाहर आती रहती है। बिना हवा के जीवन असम्भव है। शरीर के वह भाग, जो हवा के अन्दर लाने के लिए बने हैं और जिनमें हवा का उपयोग होता है श्वास-यन्त्र कहे जाते हैं।

इञ्जन में अनेक पहिये और पुर्जे इसलिए होते हैं कि भाप बनने से उत्पन्न शक्ति उन्हें चलाकर इञ्जन को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जा सके। अर्थात् इञ्जन के ये भाग गति से सम्बन्ध रखते हैं। मनुष्य के शरीर में भी कुछ भागों का अभिप्राय यही होता है कि शरीर का चलना, हरकत करना सम्भव हो। इन भागों को गति-यन्त्र या पेशी-मण्डल कहते हैं। हड्डियों के ऊपर तथा अन्य स्थानों पर जो मांस रहता है उसे गति-यन्त्र ही समझना चाहिए। मांस और पेशियाँ एक ही चीज हैं।

इञ्जन के अधिकांश भाग धातु के बने होते हैं और वे सख्त होते परन्तु मनुष्य के शरीर में कुछ अंग मांस, खाल आदि मुलायम होते

हैं और कुछ सख्त। शरीर के सख्त भागों को हड्डियाँ कहते हैं। हड्डियों के समुदाय को अस्थि-मण्डल या ककाल कह सकते हैं।

तुम जानते हो कि इञ्जन में राख, कीट, मैल इत्यादि ऐसे पदार्थ नित्य उत्पन्न होते रहते हैं जिनके अन्दर जमा होते रहने से इञ्जन के पुर्ज़ों को हानि पहुँचने की सम्भावना रहती है। ये पदार्थ बाहर निकाल फेंकना अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्य के शरीर के अन्दर भी अनेक पदार्थ इसी प्रकार के नित्य उत्पन्न होते रहते हैं। ये पदार्थ शरीर के लिये केवल व्यर्थ ही नहीं, बल्कि हानिकारक होते है। इनका बाहर निकलना अत्यन्त आवश्यक है। मल-मूत्र, पसीना इत्यादि ऐसे ही पदार्थ है। शरीर के इन भागों को, जिनका काम मल-रूपी पदार्थों को बाहर निकाल फेंकना है, मलोत्सर्ग-यन्त्र कहते हैं।

इञ्जन में कुछ पाइप अर्थात् धातु की नलिकाएँ भाप को उत्पन्न होने के स्थान से उस जगह ले जाती है, जहाँ पर भाप की शक्ति का प्रयोग होता है। शरीर के अन्दर भी अनेक नलिकाएँ अत्यन्त पतली-पतली होती हैं। ये शरीर के प्राय. प्रत्येक भाग में पाई जाती हैं। इनमें होकर रक्त इधर-उधर दौड़ता रहता है। रक्त के द्वारा ही शरीर के प्रत्येक अग को भोजन पहुँचता है और उनमें उत्पन्न मल-रूपी पदार्थों का बाहर निकलना सम्भव होता है। नलिकाओं में रक्त को लगातार चलाते रहने के लिए एक यन्त्र पम्परूपी होता है जिसे हृदय या दिल कहते हैं। रक्त की नलिकाओं और हृदय को रक्त-यन्त्र कह सकते हैं।

इञ्जन को ठीक प्रकार चलाने के लिए एक ड्राइवर (चलानेवाला) की आवश्यक्ता होती है। ड्राइवर के बिना इञ्जन नहीं चल सकता। शरीर में भी विविध अगों से ठीक प्रकार काम लेने के लिए एक ऐसे भाग की आवश्यकता होती है, जो सब पर निरीक्षण रक्खे और सबसे यथोचित काम ले। इस भाग को नाड़ी-मण्डल कहते हैं। हमारा दिमाग़

आदि नाड़ी-मण्डल के ही अंग हैं। नाड़ी-मण्डल एक प्रकार से शरीर का राजा है और उसकी आज्ञानुसार ही सब भाग अपना-अपना काम करते है।

इञ्जन को ठीक तौर पर चलाने के लिए यह आवश्यक है कि चलाने वाले को इञ्जन से वाहर की दशाओं का ज्ञान रहे। बिना ऐसी बातें जाने, कि रेल की पटरी सीधी गई है या मुड़ी हुई, पटरी पर कोई और रेलगाड़ी तो नहीं आ रही है, ड्राइवर और इञ्जन की ख़ैर नहीं हो सकती। इस कारण इञ्जन में ड्राइवर के लिए ऐसी सुविधाएँ होती हैं कि वह बाहर इधर-उधर देख-भाल सके। शरीर के ड्राइवर को भी बाहर की दशाओं का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा ये सब ज्ञानेन्द्रियाँ शरीर के ड्राइवर की सुविधा के लिए ही होती हैं। इनके द्वारा दिमाग़ को बाहर की दशाओं का पता चल सकता है और वह शरीर को ठीक प्रकार चला सकता है।

उपर्युक्त भागों के अतिरिक्त शरीर के कुछ भाग और होते हैं, परन्तु हमारे अभिप्राय के लिए इन्हीं भागों का वर्णन पर्याप्त है।

१—हड्डियों का ढाँचा—मनुष्य की हड्डियों के समुदाय को नर-कंकाल, अस्थि-कंकाल या अस्थि-पिंजर कहते हैं। मनुष्य के शरीर में सब मिलाकर २०० से अधिक हड्डियाँ होती है। हड्डियों से शरीर को अनेक लाभ हैं। बिना हड्डियों के शरीर का आकार स्थिर रहना असम्भव है। हड्डियाँ ही शरीर का आधार हैं। यदि हड्डियाँ न हों तो मनुष्य चल-फिर उठ-बैठ—कोई काम न कर सके। हड्डियों के कारण ही गति सम्भव होती है। इसके अतिरिक्त, हड्डियाँ शरीर के कोमल अंगों की रक्षा करती हैं। उनके भीतर ही मस्तिष्क (दिमाग़), हृदय (दिल) फेफड़े आदि कोमल भाग छिपे रहकर

बाहर के आघातों से बचते हैं। यदि हड्डियाँ न होतीं, तो ये अंग ज़रा-सी चोट या झटके से ही ख़राब हो जाते।
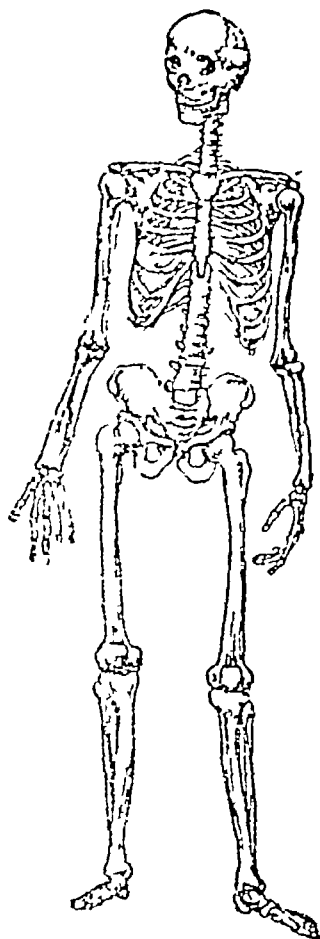
मनुष्य का अस्थि-पिंजर

नर कंकाल के चार भाग होते हैं —

१—खोपड़ी (सिर की हड्डियाँ)
२—धड़ की हड्डियाँ
३—हाथों की हड्डियाँ और
४—टाँगों की हड्डियाँ

(१) खोपड़ी—नर कंकाल का ऊपर का भाग है। सिर की हड्डियों को ही खोपड़ी कहते है। खोपड़ी में कुल मिलाकर २२ हड्डियाँ होती हैं। खोपड़ी खोखली होती है और उसके अन्दर शरीर का सबसे प्रधान अंग मस्तिष्क रहता है। यदि मस्तिष्क खोपड़ी के अन्दर न होता, तो उसे बाहर के आघातों से हानि पहुँचने की आशंका रहती।

(२) धड़ की हड्डियाँ—मनुष्य के धड़ में निम्न हड्डियाँ होती हैं —

१—रीढ़ (मेरु दंड) की हड्डियाँ
२—पसलियों की हड्डियाँ
३—छाती की सामने की हड्डी
४—कन्धे की हड्डियाँ
५—कूल्हे की हड्डियाँ

रीढ़ या मेरुदंड कमर के बीच में, खोपड़ी से लेकर धड़ के निचले भाग तक होता है। यह ३३ हड्डियों से बनता है, जिनमें से पिछली ६ हड्डियाँ जुड़कर दो हड्डी बन जाती हैं। रीढ़ की हड्डियाँ ही कमर का आधार है। ये हड्डियाँ आपस में इस प्रकार जुड़ी होती हैं कि मनुष्य की कमर इधर-उधर, आगे-पीछे मुड़ सकती है, परन्तु हमें इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिए कि लगातार धड़ या गर्दन एक ओर को मुड़े रहने से रीढ़ को हानि पहुँचती है। कुछ समय बाद उसका स्वभाव मुड़े रहने का पड़ जाता है और वह सीधी नहीं रह सकती। जो बच्चे

लगातार झुककर बैठे रहते हैं, उनकी कमर मुडकर कमान-सी हो जाती है। लिखते-पढने, चलते-फिरते, खेलते-कूदते—सदा कमर को सीधी रखने का प्रयत्न करना चाहिए। बहुत सी लडकियाँ गर्दन मोड़, कमर झुका, उकडियों बैठकर सीने-पिरोने का काम करती है। इससे उन्हें अत्यन्त हानि पहुँचती है। उनकी कमर मुड जाती है और गर्दन झुक जाती है। ऐसा होने से शरीर के भीतर के अंगों को पूरा स्थान नहीं मिलता और वे अपना काम पूरा तरह नहीं कर सकते। कुछ समय बाद रोग शरीर को आ घेरते हैं और अत्यन्त कष्ट होता है।

कभी मत भूलो कि रीढ को सीधा रखना स्वास्थ्य के लिए बहुत आवश्यक है। अधिकतर झुके रहना शरीर में रोग के बीज बोना है। तुमने प्राय देखा होगा कि वे लोग जो झुककर लगातार काम करते रहते हे, कभी-कभी उठकर जम्हाई लेते हैं और अपने हाथ ऊपर को तानते हैं। इसका कारण यह है कि लगातार झुककर बैठे रहने से काफी हवा उनके फेफडों में नहीं पहुँच पाती और उन्हे जम्हाई लेना आवश्यक हो जाता है।

रीढ को ठीक रखने के लिए एक क्रिया बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है। वह यह है कि सीधे खड़े होकर दोनों हाथ ऊपर को तानिये और जितनी ऊँचाई तक पहुँच सकें, पहुँचाने का प्रयत्न कीजिए। इस प्रकार दिन में तीन-चार बार करने से मनुष्य की कमर सीधी होने में बहुत सहायता मिलती है।

रीढ की प्रत्येक हड्डी के बीच में एक छेद होता है और ये सब हड्डियाँ इस प्रकार जुडी रहती है कि सब हड्डियों के छेद एक दूसरे के ऊपर आ जाते हैं। इस प्रकार मेरुदण्ड के अन्दर एक नाली-सी बन जाती है। इस नाली में नाडी मण्डल का एक भाग—सुषुम्ना—रहता है। सुषुम्ना और मस्तिष्क आपस में मिले रहते हैं।

पसलियों की हड्डियाँ, जो गिनती में १२ बाईं ओर और १२

दाहिनी ओर होती हैं, सीने अर्थात् धड़ के ऊपर के भाग को कवच की भाँति घेरे रहती हैं। ये पीठ की तरफ़ रीढ़ की हड्डियों से जुड़ी होती हैं और सामने छाती की हड्डी से आ मिलती हैं। इस प्रकार धड़ का ऊपर का भाग—सीना—चारों ओर से हड्डियों के द्वारा सुरक्षित रहता है। इसके भीतर हृदय और फेफड़े, जो शरीर के मुख्य और कोमल अग हैं, होते हैं।

कंधे की प्रधान हड्डियाँ चार होती हैं—दो सामने और दो पीछे। सामने की हड्डियाँ गर्दन के नीचे इधर उधर होती हैं और हँसली की हड्डियाँ कहलाती हैं। पीछे की हड्डियाँ तिकोनी तथा चपटी होती हैं और उनसे बाहु की हड्डियाँ जुड़ी रहती हैं।

कूले की हड्डियाँ धड़ के नीचे के भाग में होती हैं और उनसे जंघे की हड्डियाँ जुड़ी रहती हैं।

(३) हाथों की हड्डियाँ—बाहु में एक लम्बी, गोल और मजबूत हड्डी होती है, जो कंधे की तिकोनी हड्डी से इस प्रकार जुड़ी रहती है कि बाहु चारों ओर घुमाया जा सकता है। बाहु की हड्डी के नीचे, पहुँचे की हड्डियाँ लगी रहती हैं और वे दो होती हैं। बाहु और पहुँचे की हड्डियों के बीच के जोड़ को कुहनी कहते हैं। पहुँचे की हड्डियों के बाद कलाई की हड्डियाँ होती हैं और उनसे हथेली की हड्डियाँ जुड़ी रहती हैं। हथेली की हड्डियों से उँगलियों की हड्डियों का जोड़ रहता है।

(४) टाँगों की हड्डियाँ—जंघा में, बाहु की तरह ही, केवल एक हड्डी होती है। यह हड्डी शरीर की सब हड्डियों से अधिक लम्बी और मोटी होती है और कूले की हड्डी से जुड़ी रहती है। घुटने के स्थान पर जंघा की हड्डी पिंडली की हड्डियों से आ मिलती है। पिंडली में दो, और पैर में २६ हड्डियाँ होती हैं। टाँगें चलने फिरने और हाथ चीज़ों के पकड़ने के काम में आते हैं। इसलिए इनकी आन्तरिक बनावट में भी यथोचित भेद हो गया है।

२—पेशी-मंडल—शरीर का वह भाग, जिसे साधारण तौर पर 'मास' कहते हैं, पेशी-मण्डल कहा जाता है। पेशियों या पुट्ठों के द्वारा ही मनुष्य चल फिर, दौड भाग सकता है। सच पूछो तो, वह जितने काम करता है, सब पुट्ठों के द्वारा ही कर पाता है। पुट्ठों को शरीर की गति-यन्त्र समझना चाहिए। बिना पुट्ठों के मनुष्य का खड़ा होना, बैठना, बोझ उठाना और कोई भी काम करना असम्भव है।

पुट्ठे—मास पिण्ड—दो प्रकार के होते हैं। एक तो मनुष्य की इच्छा-शक्ति के आधीन रहते हैं और उसकी आज्ञानुसार काम करते हैं। उदाहरण के लिए, हाथ और पैर के पुट्ठे समझिए। दूसरी भाँति के पुट्ठे मनुष्य की इच्छा के आधीन नहीं रहते और स्वयं अपना काम करते हैं, जैसे हृदय या खाने की नलकी के पुट्ठे। ये प्राय. अपना काम इस प्रकार करते हैं कि हमें उनका पता भी नहीं चलता।

अब यह भी जान लेना चाहिए कि पुट्ठों के द्वारा गति किस प्रकार हो पाती है? बाहु की हड्डी के ऊपर एक पुट्ठा रहता है, जिसका कार्य हाथ को ऊपर नीचे करना है। अन्य सब पुट्ठों की तरह, यह पुट्ठा सिकुड़कर लम्बाई में छोटा (परन्तु चौडाई में अधिक) हो सकता है और आवश्यकतानुसार फिर पहले जैसा ही लम्बा बन सकता है। यह पुट्ठा एक ओर पहुँचे की हड्डियों से और दूसरी ओर कन्धे की तिकोनी हड्डी से जुड़ा है। साथ ही बाहु की हड्डी और पहुँचे की हड्डियाँ इस प्रकार कुहनी पर एक-दूसरे से लगी रहती हैं कि वे ऊपर-नीचे को मुड और खुल सकती हैं। जब बाहुवाला पुट्ठा सिकुडकर छोटा हो जाता है तब पहुँचे की हड्डियाँ ऊपर को खिच आती है और हाथ ऊपर को उठता है। पुट्ठे के फिर लम्बा होने पर हाथ सीधा हो जाता है। इस प्रकार के स्थान पर हाथ का खुलना-मुड़ना सम्भव होता है।

सिकुड़ना और फिर लम्बा हो जाना पुट्ठों का स्वभाव है और इस कारण ही शरीर की सब क्रियाएँ हो पाती है।

३—पाचन-यन्त्र—तुम जो खाना खाते हो, कहाँ जाता है? शरीर के उस अंग को जिसका कार्य भोजन पचाना है, पाचन यन्त्र कहते हैं। पाचन-यन्त्र के अनेक भाग हैं जो चित्र में दिखलाए गये हैं। सबसे पहले खाना मुँह में पहुँचता है। मुँह के अन्दर दो प्रकार के दाँत होते हैं—एक प्रकार के दाँतों का काय भोजन को कुतर कुतरकर टुकड़े करना और दूसरे प्रकार के दाँतों का कार्य भोजन को चबाना है। निगलने से पहले खाने को खूब अच्छी तरह चबाना आवश्यक है। बिना चबाये पाचन-क्रिया ठीक तौर पर नहीं हो सकती। इसके दो कारण हैं। एक तो, जब

मनुष्य का पाचन-यन्त्र
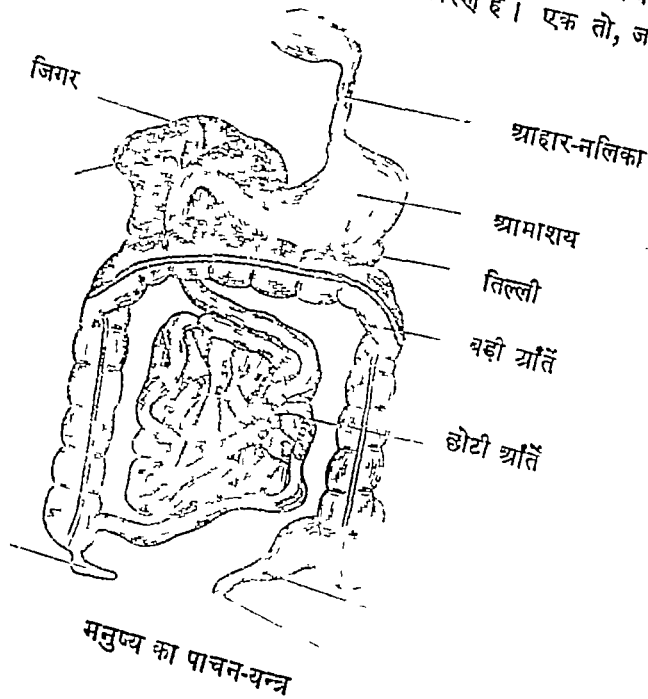
तक खाना चबाकर पतला नहीं हो जाता, तब तक उस पर पाचन-यन्त्र के रसों का असर नहीं होता। दूसरे बिना अच्छी तरह चबाये खाने में अच्छी तरह थूक नहीं मिल पाता। भोजन के कुछ अश बिना थूक मिले नहीं पच सकते। ज्यों-ज्यों खाने को चबाया जाता है, मुँह में से थूक निकलकर उसमें आ मिलता है। इससे खाना पतला हो जाता है और हज़म भी ठीक तौर पर हो सकता है। थूक में एक रस ऐसा होता है कि वह खाने के 'स्टार्च'' * नामी अश को पाचन योग्य बना देता है। इसलिए जो लोग भोजन को बिना चबाये वैसे ही निगल लेते है, उन्हें अकसर बदहज्मी हो जाया करती है।

जब हम खाना निगलते हैं तब वह अन्न की नलिका में होकर मेदे या आमाशय में पहुँचता है। यहाँ मेदे की दीवारों में से निकलकर एक रस उसमें आ मिलता है और पाचन में सहायता करता है। इस रस को आमाशय-रस कहते है।

मेदे से खाना छोटी आँतों में जाता है। इन आँतों के पहले भाग में जिगर और पैन्क्रियास से (जो दो पाचन रस बनानेवाले भाग है) रस आता है और पाचन-क्रिया में सहायता देता है छोटी आँतों से खाना बडी आँतों में पहुँचता है और अन्त में गुदा के रास्ते बाहर निकल जाता है। इस प्रकार खाने को मुँह से चलकर गुदा तक कई फुट लम्बी यात्रा करनी पडती है। इस यात्रा में उसमें कई प्रकार के रस मिलकर परिवर्त्तन करते है। खाने का लाभदायक अश पाचन यन्त्र की दीवारो में होकर रक्त में जा मिलता है और रक्त के द्वारा वह शरीर के सब भागो मे पहुँ-चता है। लेकिन वह अश, जो शरीर के लिए प्राय. व्यर्थ होता है मल या विष्ठा के रूप मे बाहर निकल जाता है।

---

* आटा, मैदा, चावल जैसे पदार्थों में "स्टार्च" का अंश ही अधिक-तर होता है।

४—रुधिर-संचार—अभी वर्णन हो चुका है कि पेशियों के सिकुड़ने से शरीर के भिन्न-भिन्न भाग हिलते-डुलते हैं और हमारे छोटे-बड़े सब काम उन्हीं पर निर्भर हैं। परन्तु यदि हम थोड़े दिन तक खाना-पीना छोड़ दें तो पेशियों से बहुत काम नहीं ले सकते, इससे वे निर्बल हो जाती हैं, क्योंकि उनका कुछ अंश सदा क्षीण होता रहता है और उनसे निकम्मी तथा निकृष्ट वस्तुएँ उत्पन्न होने लगती हैं। हमारे नाम-मात्र हिलने से भी हमारे शरीर का कुछ न कुछ भाग अवश्य क्षय हो जाता है, चाहे पलक मारना, मुँह चलाना अथवा उँगली उठाना ही क्यों न हो।

इसी न्यूनता को पूर्ण करने के लिए हमें प्रतिदिन भोजन की आवश्यकता होती है। अब यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस भोजन से यह न्यूनता किस प्रकार पूर्ण होती है। भोजन रुधिर-द्वारा इस न्यूनता को पूर्ण करता है। रुधिर भोजन से ही मांस उत्पन्न करनेवाला पदार्थ ग्रहण करके शरीर के सब भागों में बाँट देता है। यह किस प्रकार ग्रहण करता है हम आगे चलकर बताएँगे।

रुधिर शरीर के पालन पोषण करने तथा उसको प्रफुल्लित रखने के अतिरिक्त उसके निकम्मे तथा निकृष्ट भाग को भी निकालता रहता है। यदि वह शीघ्र दूर न किया जाय तो शरीर में भाँति-भाँति के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

रुधिर शरीर का पालन पोषण करता है और उसके निकम्मे भाग को निकाल देता है। इस पर विचार करने से पहले हम स्वयं रुधिर का वर्णन करेंगे, क्योंकि इसके सम्बन्ध की बातों का जानना अति आवश्यक जान पड़ता है।

यह तो सब जानते हैं कि रुधिर द्रव तथा गहरे लाल रंग का होता है और जल की अपेक्षा कुछ गाढ़ा होता है, परन्तु जब इसमें मैले तथा निकम्मे पदार्थ मिल जाते हैं तब इसका रंग गहरा बैंगनी हो जाता है।

रुधिर बाल और नखों के अतिरिक्त, शरीर के प्रत्येक भाग में पाया जाता है। यही कारण है कि हमारे शरीर के किसी भाग में, चाहे कितनी ही पतली सुई चुभोई जाय, कुछ न कुछ रुधिर निकल आता है।

परन्तु इसका तात्पर्य्य यह नहीं है कि रुधिर शरीर में इस प्रकार रहता है जिस प्रकार मशक़ में पानी, वरन् यह सम्पूर्ण शरीर में फिरता रहता है। रुधिर अगणित छोटी-छोटी नलियों द्वारा शरीर के एक भाग से दूसरे भाग में घूमा करता है। शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में रुधिर दिल से पहुँचता है जो छाती की बाई ओर स्थित है और सदैव धडकता रहता है।

दिल छाती की हड्डी के नीचे बाई ओर स्थित है। यह परिमाण में मुट्ठी के बराबर है। दिल के ऊपर का भाग दाहिनी ओर पीछे को झुका हुआ है और नीचेवाले भाग की अपेक्षा जो कुछ नोकीला है तथा बाई ओर को झुका हुआ है, अधिक चौडा है और बहुत पुष्ट तथा मोटी पेशियों से बना हुआ है। इन्हीं पेशियों के बार-बार सिकुडने और फैलने के कारण दिल धडकता है। यह सिकुड़ना तथा फैलना हमारी इच्छा के बाहर है, जिस प्रकार कि साँस लेने की पेशियों का सिकुडना तथा फैलना हमारे अधिकार में नहीं है। अतएव दिल न तो हमारी इच्छा और बस से धड़कता है और न हमारे रोकने से रुकता है।

दिल के भीतर सदा रुधिर भरा रहता है। भीतरी भाग पुष्ट पेशियों से चार ख़ानों में विभाजित है, जिनमें से दो दाहिनी ओर और दो बाई ओर स्थित है।

ऊपर के प्रत्येक ख़ाने में एक-एक छेद है। इन छेदों के द्वारा ऊपर के ख़ाने नीचे के ख़ानों से मिले हुए हैं। इन छेदों पर एक-एक परदा है जो साधारण किवाडों की भाँति केवल एक ही ओर को खुल सकता है। ये परदे इस प्रकार खुलते हैं कि ऊपर के ख़ानों का रुधिर नीचे के

ख़ानों में सुगमता से आ सकता है, परन्तु जब नीचे के ख़ानों का रुधिर ऊपर को जाता है तब तत्काल ही परदे बन्द हो जाते हैं।

दिल के दोनों ऊपर के ख़ानों में कोई ऐसा छेद नहीं है जो उन दोनों को मिला दे। इसी प्रकार नीचे के दोनों ख़ानों में भी परस्पर कोई लगाव नहीं है।

दिल के बाईं ओर का ख़ाना सदैव चटकीले लाल रंग के रुधिर से भरा रहता है और दाहिनी ओर का ख़ाना गहरे बैंगनी रंग के रुधिर से भरा रहता है। इस दशा को हमने चित्र में इस प्रकार दिखाया है कि बाईं ओर का ख़ाना जिसमें लाल रुधिर रहता है उसमें लाल रंग दिया है और जिसमें बैंगनी रुधिर रहता है उसमें बैंगनी रंग दिया है।

चित्र को देखने से यह ज्ञात होगा कि दिल के ख़ानों में छोटी बड़ी ८ नालियाँ हैं। इन्हीं नालियों द्वारा दिल सम्पूर्ण शरीर को रुधिर पहुँचाता रहता है। लाल नालियों में से शुद्ध रुधिर बहता है और बैंगनी नालियों में से अशुद्ध रुधिर बहा करता है।

अब हम यह बतायेंगे कि दिल किस प्रकार रुधिर सम्पूर्ण शरीर में पहुँचाता है।

रुधिर शरीर के मैल तथा निकम्मे पदार्थों को लेकर अशुद्ध तथा मैला हो जाता है, फिर दो बड़ी नालियों के द्वारा दिल के ऊपर के दाहिने ख़ाने में जाता है। ये नालियाँ उँगली के बराबर मोटी हैं। इनमें से एक शरीर के ऊपर के भाग से और दूसरी नीचे के भाग से मैला रुधिर एकत्र करके दिल में पहुँचाती है। इन दोनों नालियों को चित्र में बैंगनी रँगा गया है जिससे यह देखते ही ज्ञात हो जाय कि इनमें से होकर मैला रुधिर जाता है।

जब दिल के दाहिनी ओर का ऊपर का ख़ाना मैले रुधिर से पूर्णतया भर जाता है, तब जहाँ तक सम्भव होता है फैल जाता है। तत्पश्चात् सिकुड़ने लगता है और मैले रुधिर को निचोड़ता है। रुधिर निकलते

समय परदा नं० ५ को दबाकर और तुरन्त खोलकर नीचे के ख़ाने नं० ३ में आ जाता है।

यह ख़ाना नं० ३ भी अब रुधिर से भर जाने पर सिकुड़ने लगता है और परदा नं० ५ तत्काल ही बन्द हो जाता है और रुधिर, चूँकि उपर के ख़ाने में लौटकर नहीं जा सकता, इसलिए छेद ६ के द्वारा बड़ी नली ८ में चला जाता है। यह नली दिल से कुछ दूर ऊपर जाकर दो भागों में विभाजित हो जाती है जिनमें से एक दाहिनी ओर और दूसरी बाईं ओर के फेफड़े में चली जाती है। यह बड़ी नली और इसकी दोनों शाखाएँ बैंगनी रंग से रँग दी गई हैं जिससे ज्ञात हो जाय कि मैला रुधिर इनमें होकर फेफड़ों को जाता है।

फेफड़े त्रिभुजाकार थैले के सदृश होते हैं जैसा कि चित्र को देखने से ज्ञात होगा। जब मैला रुधिर फेफड़ों से होकर जाता है तब उसका मैल दूर हो जाता है और फिर लाल हो जाता है। अगले अध्याय में फेफड़ों की बनावट तथा उनके द्वारा रुधिर के शुद्ध होने की दशा वर्णन की जायगी।

फेफड़ों के भीतर होकर जाने से जब रुधिर शुद्ध हो जाता है तब फिर दिल की ओर लौट आता है और चार नलियों के द्वारा ऊपर के ख़ाने नं० २ में जो बाईं ओर स्थित है, पहुँचता है। इन चार नलियों में से दो नलियाँ दाहिने और दो बायें फेफड़े की ओर से आती हैं चूँकि इन नलियों में स्वच्छ रुधिर रहता है, इसलिए चित्र में इनका रंग लाल दिखाया गया है।

ऊपर का ख़ाना नं० २ स्वच्छ रुधिर से भरते ही सिकुड़ने लगता है और इसके सिकुड़ने से परदा नं० ६ खुल जाता है और रुधिर नीचे के ख़ाने नं० ४ मे चला जाता है।

फिर यह ख़ाना भी जब रुधिर से पूर्णतया भर जाता है तब सिकुड़ने लगता है और रुधिर को वेग से बाहर निकालने का उद्योग करता है और

परदा नं० ६ इस समय बन्द हो जाता है और अन्त में रुधिर दिल के बाहर उस छेद से जो नं० १० पर स्थित है होकर ऊपर की एक बड़ी नली नं० ७ में जिसको मूल धमनी कहते हैं, बहने लगता है। यह धमनी शरीर में रुधिर की सबसे बड़ी नली है और अँगूठे के समान मोटी है।

मूल धमनी दिल से कुछ दूर ऊपर को जाकर घूमती है। यहाँ से इसकी दो बड़ी शाखाएँ सिर की ओर और दो हाथों की ओर जाती हैं और यही नीचे की ओर सम्पूर्ण धड़ में फैलती चली गई है और इसी से सैकड़ों शाखाएँ फूटकर धड़ के निचले भागों में फैली हुई हैं और यही कमर पर पहुँचकर दोनों टाँगों के लिए दो बड़ी-बड़ी शाखाओं में विभाजित हो गई है। ये सब बड़ी-बड़ी शाखाएँ आगे और छोटी-छोटी शाखाओं में विभाजित होती चली जाती हैं यहाँ तक कि अन्त में बाल के सदृश सूक्ष्म हो गई हैं।

रुधिर की ये नालियाँ इतनी अधिक तथा इतनी घनी हैं कि शरीर के प्रत्येक भाग में इनसे एक जाल-सा बन जाता है। यही कारण है कि शरीर का कोई भाग ऐसा नहीं है जिसमें तनिक सी भी सुई चुभ जाय और उससे रुधिर न निकले। दिल से निकलकर रुधिर पहले मूल धमनी फिर इसकी बड़ी शाखाओं में और फिर उनकी अत्यन्त छोटी-छोटी शाखाओं में और अन्त में बाल के सदृश सूक्ष्म नलियों में बहता है। इन्हीं नलियों की पतली दीवारों के द्वारा रुधिर पेशियों और शरीर के अन्य भागों को भोजन पहुँचाता है और शरीर का मैला भाग अपने में सोख लेता है। जब रुधिर शरीर के मैले भाग को सोख करके इन नलियों से होकर जाता है तब धीरे-धीरे उसका रंग ललाई से बदलकर गहरा बैंगनी हो जाता है।

शरीर के भिन्न-भिन्न भागों का निकम्मा रुधिर उन बड़ी-बड़ी नलियों में से होकर जाता है जो अनगिनत बालों के सदृश सूक्ष्म नलियों के परस्पर मिलने से बनती हैं। यहाँ तक कि वह अन्त में दिल के दाईं

और ऊपर के ख़ाने में उन दो बडी नलियों के द्वारा जाकर पहुॅचता है। यह अशुद्ध रुधिर फिर फेफड़ों में शुद्ध होकर दिल के बाईं ओर जाता है और दिल इस शुद्ध रुधिर को फिर मूल धमनी के द्वारा शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में पहुॅचाता है और वह प्रत्येक स्थान से लौटकर फिर दिल मे आ जाता है और नवीन होकर नये चक्कर के लिए उद्यत होता है। साराश यह कि मनुष्य के जन्म से लेकर उसकी मृत्यु तक यही क्रम सदा जारी रहता है।

दिल के ऊपर के दोनों ख़ाने एक ही समय में सिकुडते और रुधिर को निकालते हैं और ठीक उसी समय नीचे के दोनों ख़ाने फैलकर उस निकले हुए रुधिर को ले लेते है। फिर जब नीचे के दोनों ख़ाने सिकुडते और रुधिर को फेफड़ों और शरीर के अन्य भागों में पहुॅचाते हैं तब ऊपर के ख़ाने फैलकर फेफड़ों और शरीर के भिन्न-भिन्न भागों से रुधिर को ले लेते हैं, अतएव यह क्रिया इसी प्रकार होती रहती है। जब ऊपर के ख़ाने सिकुड़ते हैं तब नीचे के फैल जाते हैं और जब नीचे के सिकुडते हैं तब ऊपर के फैल जाते हैं। यह क्रमशः सिकुड़ना और फैलना लगातार होता रहता है और इसी के द्वारा जीवन भर शरीर के सम्पूर्ण भागों में रुधिर बराबर पहुॅचता रहता है। छाती के बाईं ओर पूरा हाथ रखने से यह क्रिया विदित हो सकती है।

रुधिर की प्रत्येक बूॅद को अपने चक्कर के पूर्ण करने में तीस सेकेंड लगते हैं, अर्थात् उसको दिल के दाईं ओर के ऊपर के ख़ाने से चलकर फिर वहीं लौट आने में तीस सेकेन्ड लगते है।

इसी रीति से दिल के द्वारा रुधिर शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में दौडता रहता है।

रुधिर की वे नलियाँ जो शुद्ध रुधिर को सम्पूर्ण शरीर में पहुॅचाती हैं धमनियॉ कहलाती हैं और जो शरीर के मैले रुधिर को दिल में पहुँचाती हैं, शिराएँ कहलाती हैं।

धमनियाँ कुछ मांस की गहराई में होती हैं, परन्तु शिराएँ साधारण रीति से उतनी गहराई में नहीं होतीं, वरन् शरीर के प्रत्येक भाग में खाल पर दिखाई देती हैं और विशेषकर हाथों की पीठ पर भली भाँति दिखाई देती हैं।

रुधिर धमनियों में कुछ रुककर और कुछ वेग तथा झटके के साथ बहता है। किन्तु शिराओं में क्रमानुसार धमनियों की अपेक्षा बहुत ही धीमी चाल से बहता है। बाल के सदृश सूक्ष्म नलियाँ, जिनका वर्णन आ चुका है और जो अधिक विस्तार के साथ दिखाई गई हैं, सबसे छोटी धमनियों और शिराओं को परस्पर मिलाती हैं। इन नलियों में रुधिर बहुत धीरे धीरे चक्कर करता है।

५—स्नायु संस्थान—जब हम किसी अङ्ग से काम लेते हैं (जैसे हाथ हिलाते हैं, खड़े होते हैं, या बैठते हैं) तब उस अङ्ग की पेशियाँ सिकुड़ती हैं और फैलती हैं। अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि पेशियों को सिकुड़ने और फैलने के लिए कौन आदेश देता है, ऐसा करने के लिए शरीर का कौन-सा अङ्ग उन्हें आज्ञा देता है। किसी गरम वस्तु पर उँगली लगते ही हाथ खिंच जाता है और हट आता है। हाथ की पेशियों को हटने की आज्ञा कहाँ से मिलती है? हमारे कुछ काम बहुत सरल होते हैं और कुछ बड़े पेचीदा होते हैं। इन सब कामों की आज्ञा देने के लिए ईश्वर ने शरीर में एक राज्य स्थापित किया है। स्नायु संस्थान वही राज्य है जहाँ से सब कामों के लिए पेशियों को सिकुड़ने और फैलने का आदेश मिलता है। शरीर में बाहर से जो खबर आती है उसके उत्तर में क्या करना चाहिए, यह बात स्नायु-संस्थान ही प्रत्येक अङ्ग को बतलाता है। गरम वस्तु का अनुभव करने और उससे बचने के लिए हाथ हटाने की आज्ञा यही संस्थान देता है। स्नायु संस्थान सारे संस्थानों का राजा माना जाता है। सोच-विचार का काम मस्तिष्क की आज्ञा के बिना नहीं हो सकता। इस कारण मस्तिष्क को महाराजा की पदवी दी जा सकती है।

अब हम स्नायु संस्थान के मुख्य भाग और उनके कामों पर विचार करेंगे।

इस स्थान को तीन मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है—मस्तिष्क, सुषुम्ना और नाड़ी-मंडल। मस्तिष्क खोपड़ी के गोल सन्दूक के भीतर स्थित होता है और सुषुम्ना रीढ़ की नली के भीतर। ये दोनों गर्दन के पीछे के भाग में जुड़े होते हैं। नाड़ी मंडल सारे शरीर में फैला होता है। यह पतले-पतले तन्तुओं से बना होता है। इनमें से कुछ तन्तु सुषुम्ना से निकलते हैं और कुछ मस्तिष्क से। सामने के चित्र में सारे स्नायु-संस्थान को दिखाया गया है।
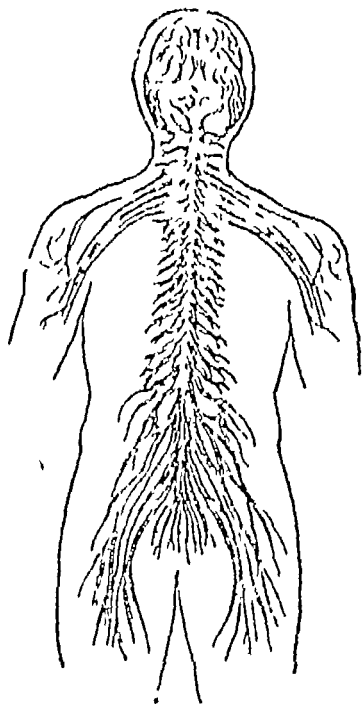
अगर शरीर के किसी भाग में एक सुई चुभोई जाय तो तुरन्त पीड़ा का अनुभव होता है। कोई भी भाग ऐसा नहीं प्रतीत होता जहाँ पीड़ा का अनुभव न किया जा सके। इसका अर्थ यह है कि शरीर के सब भागों में स्नायु फैली हुई हैं जो तार का काम देती हैं और खबर पहुँचाती हैं। हमारे नाखून को अगर सुई से दबाया जाय अथवा बाल कैंची से काटे जायँ तो हमें पीड़ा नहीं होती। इसका अर्थ यह है कि इन स्थानों तक नाड़ी के तन्तु नहीं पहुँचते। यह देश के उन गाँवों की तरह हैं जहाँ तार नहीं पहुँचा और तार-द्वारा खबर नहीं भेजी जा सकती।

(१) मस्तिष्क—जैसा हम ऊपर बता चुके हैं, मस्तिष्क खोपड़ी के भीतर सुरक्षित रहता है। मस्तिष्क सारे शरीर का महाराजा है। हम जो विशेष काम करते है उसके लिए हमें मस्तिष्क से ही आज्ञा मिलती है। मनुष्य का मस्तिष्क काफ़ी बड़ा होता है। वह सारी खोपडी में फैला होता है। तौल में यह लगभग १½ सेर के होता है। उच्च कोटि के जीवों, उदाहरण के लिए बन्दर, घोड़ा, गाय, कुत्ता इत्यादि को परमात्मा ने मस्तिष्क दिया है, परन्तु किसी दूसरे जीवधारी का मस्तिष्क उतना बड़ा नहीं होता जितना मनुष्य का। घोड़े का मस्तिष्क मुशकिल से ½ सेर होता है। घड़ियाल का केवल एक उँगली के बराबर होता है। पुरुप की अपेक्षा स्त्री का मस्तिष्क क़रीब ½ पाव कम होता है। बालकों का मस्तिष्क युवा पुरुष की अपेक्षा छोटा होता है, परन्तु वह बहुत जल्दी जल्दी बढता है और युवावस्था तक बढ़ता जाता है।

आगे के चित्र में खोपड़ी में सुरक्षित मस्तिष्क दिखलाया है। मस्तिष्क के तीन मुख्य भाग होते हैं। चित्र में खोपड़ी के नीचे ऊपर का जो भाग है उसे बृहत् मस्तिष्क कहते हैं। बृहत् मस्तिष्क सारे मस्तिष्क का लगभग ⅞ भाग होता है। उससे नीचे और थोड़ा पीछे की ओर जो छोटा-सा भाग होता है इसे लघु मस्तिष्क कहते हैं। लघु मस्तिष्क के नीचे और सुषुम्ना के ऊपर का भाग जो ग्रीवा के ऊपर होता है, उसे सुषुम्ना शीर्षक कहते हैं। इसे सुषुम्ना का ऊपरी भाग भी कहा जा सकता है।

बृहत् मस्तिष्क मस्तिष्क का मुख्य भाग है और उसके सारे विशेष कामों को वही सँभालता है। मनुष्य की मानसिक शक्तियाँ इसी पर निर्भर हैं। आगे का चित्र देखने से तुम्हें ज्ञात होगा कि इसके दो भाग हैं। इन दोनों भागों के बीच में एक गहरी दरार होती है जो कि नली के समान मालूम पड़ती है। देखने में बृहत् मस्तिष्क मांस के गुदगुदे लोंदे के समान मालूम पड़ता है। दरार से यह सम्पूर्ण लोंदा दो भागों में

विभाजित हो जाता है। इस लोदे का सारा धरातल एक पर्त से ढँका रहता है जिसे वल्क कहते हैं। यह चादर खिंचकर बिछी नहीं होती, बल्कि जगह-जगह यह दरारों मे धँसी होती है। इसी कारण सारे मस्तिष्क
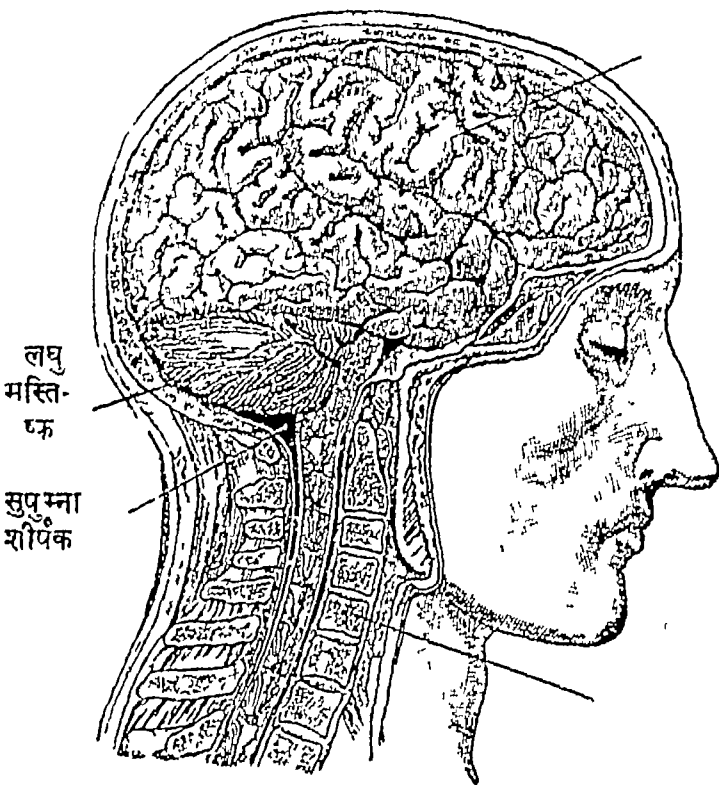
का धरातल ऊबड़-खाबड़ बना होता है। जिस मनुष्य की खोपड़ी में जितनी अधिक दरारें होती हैं और जितना ऊबड़-खाबड़ मस्तिष्क होता है वह उतना ही अधिक बुद्धिमान् होता है। जानवरों की अपेक्षा मनुष्य के

मस्तिष्क में अधिक दरारें होती है और बालक की अपेक्षा शिक्षित युवा के मस्तिष्क में कहीं अधिक दरारें होती हैं।

इस चादर (अर्थात् वल्क) के ऊपर जगह जगह वात-कोष्ठ स्थित होते हैं। ये कोष्ठ एक दूसरे से रेशों से मिले होते हैं। जो मनुष्य जितना चतुर होता है उसके वल्क पर उतने ही अधिक वात कोष्ठ होते हैं और उतने ही अधिक जोड़ और सम्बन्ध उनमें स्थापित हो जाते हैं। मनुष्य के जितने काम बुद्धि से सम्बन्ध रखते हैं उनके करने की आज्ञा इन्हीं वल्क के ऊपर स्थित केन्द्रों से मिलती है। आँख, कान, नाक इत्यादि इन्द्रियों के काम का प्रबन्ध यहीं से होता है। मस्तिष्क मेदा के एक गूदे के समान होता है। उसकी बनावट मांस और पेशियों से कुछ पृथक् होती है। यह नर्म गूदा दो प्रकार का होता है। एक सफेद और दूसरा भूरे रंग का। बाहर की ओर का मसाला भूरा होता है और भीतर की ओर का सफेद। सारे मस्तिष्क में रुधिर से भरी हुई धमनियाँ और शिराएँ फैली होती हैं।

लघु मस्तिष्क—यह वृहत् मस्तिष्क के नीचे पीछे के भाग में स्थित होता है। यह भी एक नाली से बायें और दाहिने दो भागों में बँटा रहता है और इसके धरातल में भी बहुत सी परतें होती हैं। ऊपर की ओर वृहत् मस्तिष्क से और नीचे की ओर सुषुम्ना से यह बँधा होता है। मनुष्य का लघु मस्तिष्क तौल में लगभग तीन छटाँक होता है। स्त्रियों का लघु मस्तिष्क पुरुषों की अपेक्षा कुछ भारी होता है। लघु मस्तिष्क का ठीक ठीक काम क्या है, यह अभी निश्चित नहीं हो पाया, पर ऐसा अनुमान किया जाता है कि मनुष्य के शरीर और उसके अङ्गों साधने से सम्बन्ध रखनेवाले जितने काम होते हैं, उनका प्रबन्ध इसी निर्भर है। इसमें दोष उत्पन्न हो जाने से मनुष्य लड़खड़ाकर चलने है। पक्षियों का लघु मस्तिष्क काफी बड़ा होता है। इसका कारण

यही कहा जाता है कि उन्हें अपने शरीर को सदा साधने का काम करना पड़ता है।

सुषुम्ना शीर्षक—लघु मस्तिष्क के नीचे के सुषुम्ना के उस ऊपरी भाग को जो लघु मस्तिष्क में आकर मिलता है, सुषुम्ना शीर्षक कहते हैं। यह पूरे मस्तिष्क का एक भाग माना जाता है। पर सच पूछा जाय तो यह वह भाग है जिससे सुषुम्ना और मस्तिष्क दोनों जुड़ते हैं। यह लगभग १½ इंच लम्बा और पौन इंच व्यास में होता है। रस्सी के सिरे पर गाँठ लगा देने से जो आकृति दिखाई देती है यह ठीक वैसा ही होता है। सुषुम्ना शीर्षक का अधिकार शरीर के कुछ मूल अङ्गों पर है। उन अङ्गों पर जीवन का बहुत-सा काम निर्भर रहता है, जैसे—साँस लेना, हृदय-स्फुरण, रक्त-प्रवाह इत्यादि। छींकने, चबाने, चूसने, खाँसने आदि की आज्ञा भी इसी स्थान से मिलती है।

मस्तिष्क से और सुषुम्ना शीर्षक से स्नायु के १२ जोड़े निकलकर इंद्रियों अर्थात् नाक, कान, आँख, जिह्वा और चेहरे की ओर जाते हैं। तार के समान यह समाचार लाते हैं और आज्ञा पहुँचाते हैं।

(२) सुषुम्ना—रीढ़ की हड्डी की बनावट के वृत्तान्त में तुमने यह पढ़ा है कि गुट्टी एक दूसरे पर इस प्रकार रक्खी रहती है कि समस्त रीढ़ की हड्डी के भीतर एक नली ऊपर से नीचे तक बन जाती है। इसी नली के भीतर हड्डी के खोल से चारों ओर सुरक्षित सुषुम्ना स्थित रहती है। इसकी आकृति एक रस्सी के समान होती है, जो ऊपर की ओर मस्तिष्क के पेंदे से आरम्भ होकर नीचे कमर में समाप्त होती है।

सुषुम्ना की लम्बाई युवा मनुष्य में लगभग १८ इंच होती है। जैसे मस्तिष्क भूरे और श्वेत रङ्ग के गूदे से बना होता है, उसी प्रकार सुषुम्ना भी इन्हीं दोनों प्रकार के गूदों से बना होता है। यह भूरा मसाला बीच में होता है और श्वेत चारों ओर। अगर सुषुम्ना को कहीं से आड़ा काटा

जाय तो भूरा मसाला H की आकृति बनाता हुआ दिखाई देता है जैसा आगे चित्र में दिखाया है।

जैसे समस्त मस्तिष्क से १२ जोड़े स्नायुओं के निकलते हैं उसी प्रकार सुषुम्ना से ३१ जोड़े स्नायुओं के निकलकर शरीर के अलग-अलग भागों को जाते हैं। सुषुम्ना रीढ़ की हड्डी की नली में बन्द रहती है, परन्तु इन स्नायुओं के निकलने के लिए दोनों ओर छोटे-छोटे मार्ग हैं जिनमें से यह रीढ़ से बाहर निकल आते हैं। रीढ़ में से निकलने के उपरान्त ये शाखाओं में विभाजित हो जाते हैं। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जाते हैं, त्यों त्यों शाखा-प्रतिशाखा निकल पड़ती है। शरीर के प्रत्येक अङ्ग के कोने तक स्नायुओं की शाखाएँ पहुँच जाती हैं और सारे शरीर पर एक जाल-सा बिछ जाता है।

सुषुम्ना के दो मुख्य कार्य हैं—एक तो खबरों को मस्तिष्क में पहुँचाना और जो मस्तिष्क आज्ञा दे उसे आगे को चला देना और दूसरा प्रतिक्रियात्मक कार्य का प्रबन्ध करना। प्रतिक्रियात्मक कार्य के लिए उन्हीं केन्द्रों से आज्ञा मिलती है जो कि सुषुम्ना पर स्थित होते हैं।
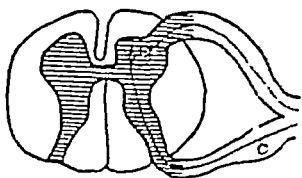
हम बहुत से काम ऐसे करते हैं जिनमें सोचने-विचारने की बिलकुल आवश्यकता नहीं पड़ती। इन कामों के करने के लिए पेशियों को मस्तिष्क से आज्ञा नहीं लेनी पड़ती। जब हमारा हाथ किसी गर्म वस्तु से छू जाता है तब हम तुरन्त ही उसे झटके से हटा लेते हैं। हाथ हटाने में हाथ की पेशियों को सिकुड़ना पड़ता है। इस प्रकार सिकुड़ने के लिए सुषुम्ना वाले केन्द्रों से आज्ञा मिलती है। जब कोई पैर की तली में गुदगुदी करता है तब पैर तुरन्त हटा लिया जाता है। जब आँख के

सामने जोर से हाथ हिला दिया जाता है तब पलक तुरन्त बन्द हो जाती है। ये सब क्रियाएँ प्रतिक्रियात्मक है। कुछ क्रियाएँ प्राकृतिक होती हैं, परन्तु कुछ ऐसी भी होती है जिन्हें हम सीखते है। सीख लेने के उपरान्त यह भी हम वैसे ही करने लगते हैं जैसे प्रतिक्रियात्मक कामों को। साइकिल चलाना या बुनना सीख लेने के उपरान्त बिना सोचे-विचारे हम स्वाभाविक रीति से ही करते हैं।

हम यह भी कह चुके हैं कि सुषुम्ना का काम मस्तिष्क को ख़बर पहुँचाना है। सच पूछा जाय तो यह दलाल का काम करता है, पर इसमें और दलाल में इतना अन्तर है कि यह दलाली नहीं लेता। तार अथवा टेलीफोन का जैसा संस्थान होता है उसी प्रकार स्नायुओं का भी होता है। जैसे झाँसी से देहली को तार जब भेजा जाता है तब उसे आगरा से होकर जाना पडता है क्योंकि आगरे का तार घर एक मुख्य केन्द्र है। उसी प्रकार हाथ या पैर से मस्तिष्क को ख़बर जाने के लिए उसे सुषुम्ना में होकर जाना पडता है।

एक बात विचित्र है। वह यह कि दाहिने हाथ को काम करने के लिए आज्ञा देनेवाले केन्द्र मस्तिष्क के बाई ओर के वल्क पर स्थित हैं। अगर दाहिने हाथ को क़लम उठाना हो तो उसे आज्ञा मस्तिष्क के बाई ओरवाले भाग से मिलेगी। दाहिने हाथ से चली हुई ख़बर सुषुम्ना तक दाहिनी ओर ही जाती है फिर वह ऊपर जाकर बाई ओर भेजी जाती है और बायें मस्तिष्क के केन्द्र को पहुँचती है। दाहिने हाथ को काम करने के लिए बाई ओर के मस्तिष्क से आज्ञा चलकर सुषुम्ना के बायें भाग में आती है, फिर वह दाहिनी ओर भेज दी जाती है और दाहिनी ओर की नाडी-द्वारा दाहिने हाथ को पहुँच जाती है।

(३) नाड़ियाँ—मस्तिष्क और सुषुम्ना पर स्थित केन्द्र ख़बर को लेते है और यथायोग्य आज्ञा देते हैं। मस्तिष्क को ख़बर पहुँचाने का काम और वहाँ से आज्ञा के लाने का काम नाडियाँ करती हैं। ये उन्हीं

तारों के समान हैं जो तुमने रेलों और सड़कों के किनारे देखे होंगे जिनके द्वारा तार की ख़बर जाती है। केन्द्र अफ़सरों के समान हैं और नाड़ियाँ चपरासियों इत्यादि का काम करती है। सारे शरीर में दूर से दूर अङ्ग तक ये तार फैले रहते हैं। इनका एक जाल शरीर में बना हुआ है। शरीर के प्रत्येक अङ्ग में क्या हो रहा है, इसकी ख़बर मिलनी चाहिए और उन्हें अपना काम ठीक चलाने के लिए क्या करना चाहिए, इसकी आज्ञा मिलनी चाहिए। इसलिए नाड़ियाँ संपूर्ण खाल के धरातल के नीचे तक पहुँची होती है। नाख़ून और बाल में इनका प्रवेश नहीं होता। इससे इनको काटने अथवा कतरने में कुछ पीड़ा नहीं होती।

शरीर के किसी भाग में किञ्चित् ही आघात होने से पीड़ा होने लगती है। यह पीडा ही ख़बर के भीतर भेजे जाने की आरम्भिक दशा है। पीडा की ख़बर मस्तिष्क को मिलती है। शरीर के जिस अङ्ग में आघात हुआ, उसको बचाने के लिए क्या करना चाहिए इस बात के बारे में मस्तिष्क तुरन्त आज्ञा भेजता है। पीडा से दुःख अवश्य होता है, परन्तु उसी के द्वारा यह अनुभव होता है कि अग को कुछ ख़राबी हुई और उसको निवारण करना चाहिए। अगर ख़राबी का पता न लगे, तो अग निकम्मा हो जाने का भय है। स्नायुओं-द्वारा आघात का पता लगता है। अगर स्नायु न हों तो न कुछ पता चल सकता है और न कष्ट का निवारण हो सकता है।

नाड़ियाँ दो प्रकार की होती है—एक वे जिनके द्वारा अग से सुषुम्ना अथवा मस्तिष्क को ख़बर पहुँचाई जाती है, इन्हें केन्द्रगामी नाडी कहते हैं। दूसरी वे जिनके द्वारा मस्तिष्क अथवा सुषुम्ना से अंग की पेशियों को आज्ञा पहुँचती है। इन्हें केन्द्रत्यागी नाड़ी कहते हैं।

नाड़ियाँ श्वेत रग की होती हैं और पतले महीन तारों से बनी हुई होती है। कुछ नाड़ियाँ बड़ी और मोटी होती हैं और कुछ छोटी और

सूक्ष्म। महीन महीन तार मिलकर एक रस्सी-सी बन जाती है। नाडी की बनावट क़रीब-क़रीब वैसी ही होती है जैसी कि एक मोमबत्ती को कागज में लपेट देने से बन जाती है। मोमबत्ती के भीतर जैसे बत्ती होती है उसी प्रकार नाडी के भीतर एक मुख्य तार होता है जो कि किंचित् भूरे रंग का होता है। इसके ऊपर जैसे मोमबत्ती का मोम होता है वैसे ही एक श्वेत रंग का मसाला रहता है। इसके बाहर जैसे हमने कागज लपेटा है उसी प्रकार एक भूरे रंग की चादर-सी लिपटी रहती है। अगर किसी नाडी को आडा काटा जाय तो ऐसा दिखाई पडेगा।

नाडियों के भीतर की बत्ती बहुत लम्बी होती है और शरीर के किसी अंग से आरम्भ होकर सुषुम्ना या मस्तिष्क तक बराबर चली जाती है। यदि किसी प्रकार से शरीर के किसी भाग की नाडी को आघात हो जाय तो शरीर के उस भाग के हिलने डुलने की शक्ति जाती रहती है।

नाडी-मंडल का कार्य बडा विचित्र है और ईश्वर की महिमा को बतलाता है। स्नायु-संस्थान के कार्य को हम एक साधारण उदाहरण से स्पष्ट कर सकते हैं। मान लो कि किसी रात को हम नंगे पैर मैदान में घूम रहे हों। रास्ते में एक पेड की छोटी-सी मुलायम डाली पडी है। अकस्मात् उस पर हमारा पैर पडता है। पाँव पडते ही पाँव के ज्ञान-तन्तुओं को पैर के नीचे कुछ वस्तु दबने का ज्ञान होते ही केन्द्रगामी नाड़ियों द्वारा भीतर खबर होती है। मस्तिष्क को ज्ञान होते ही केन्द्रत्यागी नाड़ियों द्वारा पैर की पेशियों को आज्ञा मिलती है कि वे सिकुडें अर्थात् पैर हट जाय। अब अगर मस्तिष्क के वल्क के ऊपर के ज्ञान केन्द्र जाग्रत नहीं होने पाये तो काम यहीं समाप्त हो जायगा। परन्तु ऐसा नहीं होता, क्योंकि धीरे-धीरे ज्ञान-केन्द्र उदय होते जाते हैं इस कारण मस्तिष्क में ख़बर पहुँचते ही दूसरे ज्ञान-केन्द्रों को भी खबर हो जाती है और यह सोचा जाता है कि जिस वस्तु पर पैर पडा वह सर्प तो

नहीं है। इस कारण गर्दन की पेशियों को आज्ञा दी जाती है कि वह गर्दन को झुकावे, आँख को आज्ञा होती है कि वह देखे। आँख के द्वारा ज्ञान होकर नाड़ियों द्वारा खबर जाती है कि साँप नहीं है। ज्ञान-केन्द्र हाथ की पेशियों को आज्ञा देते हैं कि उसे रास्ते से उठाकर फेंक दो। इस प्रकार सब काम होता है—और कैसे आश्चर्य की बात है कि यह सब एकदम एक दो सेकंड के भीतर हो जाता है।

(२)६—साँस के अंग—तुम पढ़ चुके हो कि जब बैंगनी रंग का अशुद्ध रुधिर फेफड़ों में होकर जाता है तो उसका बैंगनी रंग जाता रहता है और वह शुद्ध होकर अपने स्वाभाविक रंग पर आ जाता है और पूर्णतया लाल हो जाता है।

अब यह बात जानने योग्य है कि रुधिर फेफड़ों में पहुँचकर किस प्रकार स्वच्छ होता है, परन्तु इसे जानने के पहले इस बात का जानना अत्यन्त आवश्यक है कि फेफड़े क्या हैं और किस काम आते हैं और उनका मुख्य अभिप्राय क्या है?

(यदि गले के नीचे उस स्थान पर जहाँ हँसली की हड्डी है उँगली रखकर गले को दबायें तो भीतर की ओर एक कड़ी नली जान पड़ेगी और इसको कुछ बल-पूर्वक दबाने से चित्त घबड़ाने लगेगा। यह नली नाक के गढ़े और मुँह के पीछे के भाग से जा मिली है।) यह तो सब जानते हैं कि साँस लेते समय जो हवा हमारे शरीर के भीतर जाती है या उससे बाहर को निकलती है, वह साधारण रीति से नाक ही के छेदों से होकर जाती है और कभी ऐसा भी होता है कि साँस मुँह की ओर से आने-जाने लगती है, परन्तु यदि ध्यान से देखो तो विदित होगा कि (दोनों दशाओं में साँस का आना-जाना इसी नली के द्वारा होता है, इसलिए इसको साँस की नली कहते हैं।)

(यह नली मुँह के पीछे से होकर छाती में चली गई है और कुछ दूर नीचे जाकर दो शाखाओं में विभाजित हो गई है। इन शाखाओं में से

एक दाहिनी ओर और दूसरी बाईं ओर को जाती है। इनमें से प्रत्येक शाखा फिर बहुत-सी छोटी-छोटी शाखाओं में विभाजित हो जाती है और ये सब छोटी-छोटी शाखाएँ और भी अधिक छोटी-छोटी शाखाओं में विभाजित हो जाती हैं और इसका ऐसा क्रम बँध जाता
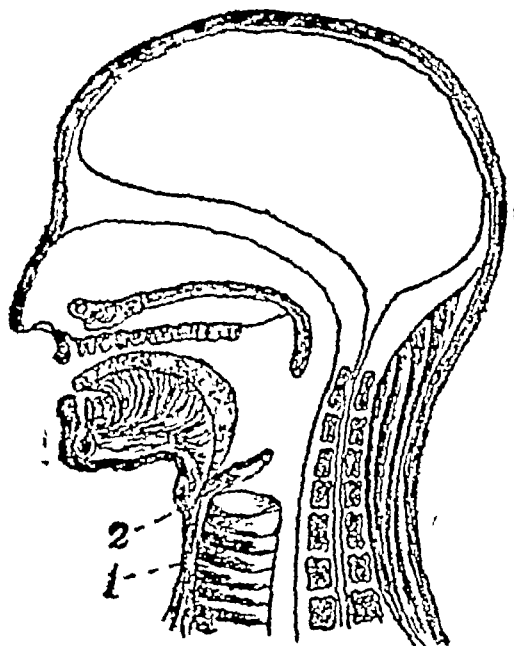
(१) साँस की नली, (२) साँस की नली का ढकना।

है कि शाखाओं से शाखाएँ फूटती ही चली जाती हैं, यहाँ तक यह दशा हो जाती है कि बाल के सदृश सूक्ष्म नलियाँ हो जाती हैं। इन सूक्ष्म नलियों में से प्रत्येक लगभग सत्रह सौ छोटे छोटे खानों में जिनकी दीवारें बहुत ही पतली होती हैं, समाप्त होती हैं। यह छोटे-छोटे खाने

चूँकि साँस की नली के द्वारा बाहरी हवा से मिले होते हैं, इसलिए सदा हवा से भरे हुए रहते हैं। इसी कारण इन स्थानों को हवा के खाने कह सकते हैं।)

(छाती के प्रत्येक ओर लगभग तीस लाख इसी प्रकार के खाने होते हैं। चूँकि इन सब खानों का आकार स्वच्छता के साथ छोटे से चित्र में
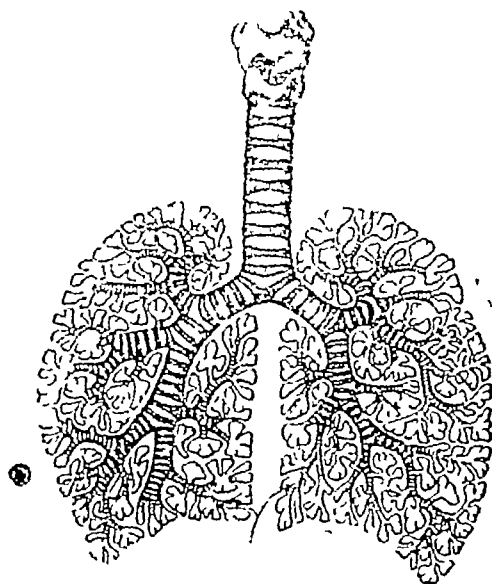
दिखाना बहुत ही कठिन काम है। इसलिए इस आकृति में केवल थोड़े से दिखाये गये हैं।

छाती के दोनों ओर साँस की नली की बहुत सी शाखाएँ उनके खानों सहित पतली सी झिल्ली से मढ़ी हुई हैं।) यह झिल्ली एक थैली की दशा में होती है। (साँस की नली के दोनों ओर की दोनों

थैलियों को फेफड़े कहते हैं जो कि साधारणतः हलके गुलाबी रङ्ग के होते हैं।

फेफड़े छाती की भीतरी दीवारों के साथ सदैव जुड़े रहते हैं और दिल को सम्मुख के थोड़े से भाग के अतिरिक्त लगभग चारों ओर से घेरे रहते हैं और छाती के भीतर का शून्य स्थान इनसे ही भरा रहता है।
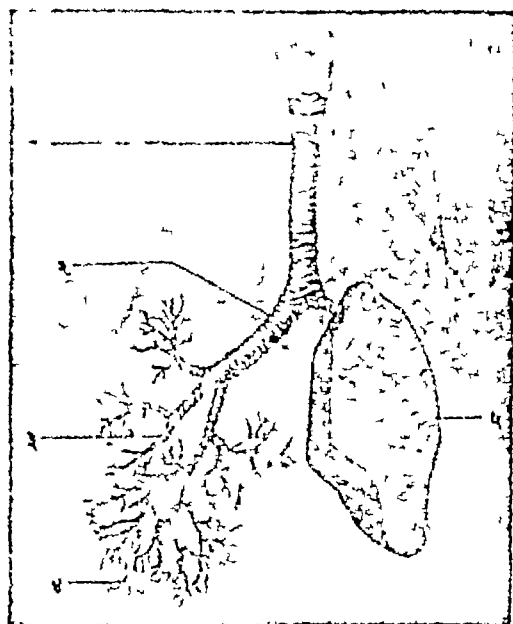
१—साँस की नली, २—फेफड़े, ३—दिल, ४—फेफड़ों के नीचे की पतली-सी बड़ी मिहराबदार पेशी।

दिल का अशुद्ध रुधिर दोनों फेफड़ों में दो बड़ी नलियों के द्वारा जिनमें से एक दाहिने और दूसरा बायें फेफड़े में होकर जाती है, पहुँचता रहता है। ये नलियाँ फेफड़ों में पहुँचते ही बहुत-सी छोटी छोटी

शाखाओं में विभाजित हो जाती है और फिर ये शाखाएँ भी और शाखाओं में बँटती हुई क्रमश बाल के सदृश सूक्ष्म नलियों में विभाजित हो जाती हैं और फिर ये सब मिलकर बड़ी-बड़ी नलियाँ बनाती हैं यहाँ तक कि अन्त में चार बड़ी नलियाँ बन जाती है, जिनके द्वारा फफड़े से रुधिर दिल में आता है। फेफड़ों में उपर्युक्त बाल के सदृश सूक्ष्म नलियों की इतनी अधिकता है कि प्रत्येक छोटे हवा के खाने के चारों ओर उन नलियों का एक घना जाल-सा बन जाता है।

अब सुगमता से समझ में आ सकता है कि (फेफड़े दो बड़ी थैलियाँ है, जो हवा के छोटे-छोटे अगणित खानों का योग है, जिन पर बाल के सदृश सूक्ष्म रुधिर की नलियों का घना जाल लिपटा हुआ है।)

फेफड़े और साँस की नली साँस लेने के लिए हैं जैसा कि हम अब बताते हैं।

साँस के भीतर जाते समय नाक तथा मुँह से सन्निकट की हवा मुँह के पिछले भाग से जाती है और (अगणित छोटे-छोटे हवा के खानों में भर जाती है) और फेफड़े इस हवा के बल से रबड़ के थैले की भाँति फैल जाते हैं। फिर साँस के बाहर आने में लगभग सम्पूर्ण हवा फेफड़ों से निकल जाती है।)

प्रत्येक साँस में कुछ हवा फेफड़ो में जाकर फिर बाहर निकल आती है (इसी को साँस लेना कहते हैं।)

अब यह बताया जायगा कि हम साँस किस प्रकार लेते हैं अर्थात् फेफड़ों में हवा किस प्रकार आती-जाती है।

पहले यह बताया गया था कि (छाती चारों ओर से पसलियों द्वारा घिरी हुई है और सामने की ओर छाती की हड्डी से और पिछली ओर रीढ़ से जुड़ी हुई हैं। ये पसलियाँ पुष्ट चपटी पेशियों से ढकी हुई हैं जो शरीर की दूसरी पेशियों की भाँति घट-बढ़ सकती है। जब पेशियाँ सिकुड़ती हैं, तब पसलियाँ उनके साथ ऊपर को खिंच जाती

हैं और उनके नीचे की बड़ी पसलियाँ उनके स्थान पर आ जाती हैं। इससे छाती दोनों ओर फैल जाती है। पसलियों के सामने के सिरों के ऊपर उठने से छाती की हड्डी आगे की ओर को बढ़ जाती है और इससे छाती की चौड़ाई आगे पीछे की ओर से अधिक हो जाती है। इसी प्रकार जब पसलियों के बीच की पेशियाँ सिकुड़ती हैं तब छाती का विस्तार आगे-पीछे और दाईं तथा बाईं ओर अधिक हो जाता है। फिर जब ये पेशियाँ फैलकर अपने स्थान पर आ जाती हैं तब पसलियाँ छाती की हड्डी-सहित नीचे जा बैठती हैं और छाती का भीतरी विस्तार न्यून हो जाता है, परन्तु छाती का भीतरी विस्तार एक और प्रकार से बढ़ता है।

छाती के नीचे के भाग में और ठीक फेफड़ों के नीचे एक पतली किन्तु दृढ़ पेशी है। इससे फेफड़ों के नीचे के भाग अथवा आधार ऐसी दृढ़ता से जुड़े रहते हैं जिस प्रकार इनकी दीवारें छाती की दीवारों से जुड़ी रहती हैं। यह पेशी पसलियों, छाती की हड्डी और रीढ़ से मिलने के कारण मिहराब की तरह हो गई है। इस मिहराब का पृष्ठ छाती की ओर झुका हुआ है। इस प्रकार इस पेशी से छाती पेट से पूर्णतया अलग हो गई है। शरीर की अन्य पेशियों की भाँति यह पेशी भी सिकुड़ सकती है। जब यह सिकुड़ती है तब सम्पूर्ण नीचे को खिंच जाती है और चपटी हो जाती है। यही कारण है कि छाती का भीतरी विस्तार ऊपर से नीचे को बढ़ जाता है, परन्तु जब यह पेशी फैलकर ऊपर को उठती है तब छाती का भीतरी विस्तार कम हो जाता है। इस पेशी के सिकुड़ने पर जब छाती के भीतर ऊपर से नीचे को विस्तार बढ़ता है तो साथ ही पसलियों के बीच की पेशियाँ भी सिकुड़ने लगती हैं और छाती को पीछे से आगे की ओर और दाईं से बाईं ओर बढ़ाने लगती हैं। इस प्रकार छाती एक ही समय में प्रत्येक ओर को बढ़ जाती है।

छाती के इस प्रकार फैलने से फेफड़ों के बाहर और छाती के भीतर

सम्भव था कि कुछ जगह खाली रहती, परन्तु (फेफड़े ऊपर की ओर छाती की भीतरी दीवारों से और नीचे की ओर मिहराबदार पेशी से जुड़े रहते हैं। इसलिए जो स्थान इस प्रकार खाली होता है उसको फेफड़े ही फैलकर पूरित कर देते हैं।) अतएव छाती के भीतर शून्य स्थान कदापि नहीं रह सकता। साराश यह है कि (छाती के फैलते समय फेफड़े भी फैल जाते हैं और इस प्रकार हवा नाक या मुँह तथा हवा की नलियों के द्वारा फेफड़ों में आती है। फेफड़ों में हवा के आने की यही विधि है।)

(फेफड़ों में वायु के आते ही छाती के नीचे की बड़ी बड़ी पेशियाँ और पसलियों के बीच की पेशियाँ अपने-अपने स्थान पर आ जाती हैं और इस प्रकार छाती का भीतरी विस्तार कम कर देती है। ये पेशियाँ अपने स्थान पर जब लौटती हैं तब फेफड़ों को चारों ओर से दबाती हैं जिससे फेफड़ों के भीतर आई हुई वायु बाहर निकल जाती है। इस प्रकार वायु फेफड़ों से बाहर निकला करती है।) छाती के नीचे की मिहराबदार पेशी तथा पसलियों के बीच की पेशियाँ जिनके द्वारा हम साँस लेते हैं, साँस लेने की विशेष पेशियाँ कही जा सकती हैं। (जब इनका सिकुड़ना तथा फैलना बन्द हो जाता है तब साँस का आना जाना भी बन्द हो जाता है और मृत्यु हो जाती है। इन पेशियों का इस प्रकार सिकुड़ना तथा फैलना प्रत्येक मिनट में सत्रह बार होता है और इस प्रकार हम प्रत्येक मिनट में सत्रह बार साँस लेते हैं। ये पेशियाँ रात दिन अपना काम लगातार करती रहती हैं, चाहे हम जागते हों या सोते हों। यही नहीं हम चाहें या न चाहें, ये लगातार साँस लेती रहती हैं, अतएव साँस की पेशियाँ भी दिल की पेशियों की भाँति हमारे अधिकार में नहीं हैं।)

फेफड़ों के विषय में अब बहुत सी बातें ज्ञात हो गई हैं अर्थात् ये साँस लेने के साधन हैं और इनसे किस प्रकार हम साँस लेते हैं। किन्तु हमको यह नहीं ज्ञात हुआ कि साँस लेने की आवश्यकता तथा उद्देश्य

क्या है ? (इसका मुख्य अभिप्राय यह है कि फेफड़ों में जो मैला रुधिर आया है वह शुद्ध हो जाय ।)

मैला रुधिर किस प्रकार शुद्ध होता है इसके जानने के पहले हमें यह देखना चाहिए कि जो वायु फेफड़ों में आती है उसमें निकलने से पहले कोई रासायनिक परिवर्तन होता है या नहीं। सम्भव है कि कोई यह विचार करे कि जैसी वायु फेफड़ों से बाहर निकलती है वैसी ही भीतर जाती है, परन्तु यह भूल है। इस अन्तर को भली भाँति समझने के लिए अपनी उँगलियों पर साँस छोड़ो। इससे तुमको विदित होगा कि जो वायु फेफड़ों के भीतर से निकलती है वह सन्निकट की वायु से अधिक गर्म होती है। किसी ठण्ढी वस्तु पर जैसे स्लेट या दर्पण पर साँस लेने से जल की बहुत छोटी-छोटी बूँदें दिखाई देंगी। यदि किसी खोखले बाँस की नली के द्वारा साफ़ चूने के जल में जो किसी शीशे के गिलास में भरा हो, फूँकते रहें तो वह जल की भाँति सफ़ेद हो जायगा। ये दशाएँ साधारण वायु से उत्पन्न नहीं हो सकतीं। इससे सिद्ध हुआ कि फेफड़ों से निकलनेवाली वायु बाहर की वायु से सर्वथा भिन्न होती है। अतएव जो वायु फेफड़ों के भीतर जाती है उसमें बाहर निकलने से पहले कुछ परिवर्त्तन हो जाता है। अब यह देखना है कि यह परिवर्त्तन क्या है और किस प्रकार होता है ?

जो वायु फेफड़ों में जाती है वह उस मैले रुधिर के मैल को, जो शरीर के भिन्न-भिन्न भागों से दिल के मार्ग से होकर वहाँ पहुँचता है, खींच लेती है और इस प्रकार उससे युक्त होकर बाहर निकलती है। इस प्रकार फेफड़ों के भीतर की वायु में परिवर्त्तन होता रहता है। भीतर जानेवाली वायु जो शुद्ध होती है, उसको हम शुद्ध वायु कहेंगे और जो वायु भीतर से बाहर को आती है और अशुद्ध होती है उसको हम अशुद्ध वायु कहेंगे। यह अशुद्ध वायु मोमबत्ती, काग़ज़, कोयला इत्यादि बहुत-सी वस्तुओं के वायु में जलने से भी उत्पन्न होती है। इनमें से किसी वस्तु को लो

और लोहे के लगभग एक हाथ लम्बे तार में बाँधकर जलाकर तुरन्त एक बड़े शीशे के गिलास में लटका दो। फिर कुछ देर पश्चात् निकाल लो और गिलास में चूने का टुकड़ा और थोड़ा पानी डालो और कुछ समय तक हिलाओ। इससे यह दूध की भाँति सफ़ेद हो जायगा। इससे यह सिद्ध हुआ कि वायु में कुछ वस्तुओं के जलने से वैसी ही अशुद्ध वायु उत्पन्न होती है जैसी कि फेफड़ों से निकलती है। हमारे शरीर के गर्म रहने और साँस के गर्म निकलने से भी शरीर के भीतर अग्नि का होना सिद्ध होता है। इस समय शरीर में जलनेवाली अग्नि का ज्ञान यद्यपि हमको प्रकाश तथा धुएँ से नहीं होता, परन्तु शरीर की गर्मी और अशुद्ध वायु की गन्ध से उसका होना निश्चय है। इस भीतरी ज्वाला से भाप भी बनती है जिसको हम साँस के साथ देखते हैं।

यदि जलती हुई बत्ती किसी शीशे के गिलास से इस प्रकार बन्द कर दी जाय कि वायु भीतर प्रवेश न कर सके तो वह तत्काल ही बुझ जायगी। इससे यह सिद्ध होता है कि कोई वस्तु वायु के बिना जल नहीं सकती। जब अग्नि वायु के बिना नहीं जल सकती तब सम्भव है कि हमारे शरीर के भीतर की अग्नि उस वायु से सुलगती रहती हो जो हम साँस के द्वारा जन्म से मृत्यु तक भीतर ले जाते हैं और सम्भव है कि वे मैले तथा निकम्मे पदार्थ जो हमारे शरीर के अंगों के काम करने से उत्पन्न होते हैं इसी अग्नि में स्वाहा होकर अशुद्ध वायु की उत्पत्ति करते रहते हों।

अशुद्ध वायु और भाप जो शरीर के निकम्मे और व्यर्थ भागों के जलने से उत्पन्न होती है, बाल सी सूक्ष्म रुधिर की नालियों की अनन्त पतली दीवारों में से होकर रुधिर में मिल जाती है, जिससे वह अशुद्ध हो जाता है और उसका रंग बैंगनी पड़ जाता है। इस ढंग से रुधिर शरीर के व्यर्थ अंशों को लेकर और दिल के दाहिने खाने से होकर फेफड़ों में पहुँचा देता है। अब यह देखना है कि बैंगनी रंग का अशुद्ध

रुधिर फेफड़ों में आकर किस प्रकार अपने मैल को दूर करके फिर शुद्ध लाल रंग का हो जाता है।

हम यह देख चुके है कि साँस के साथ बाहर की शुद्ध वायु फेफड़ो में प्रवेश करती है अर्थात् वायु के खानों में भर जाती है और इन खानों की पतली दीवारों पर की अगणित बाल के सदृश सूक्ष्म रुधिर की नलियों के बहुत ही निकट होने के कारण रुधिर के पास पहुँच जाती है। वायु के खानों और रुधिर की नलियों की दीवारें ऐसी पतली होती हैं कि शुद्ध वायु सुगमता से रुधिर में मिल जाती है और इसके बदले अशुद्ध वायु और भाप रुधिर से अलग होकर वायु के खानों में आ जाती हैं और मैला रुधिर अशुद्ध वायु तथा भाप से अलग होने और शुद्ध वायु से मिलने के पश्चात् फिर शुद्ध हो जाता है और उसका रंग फिर बैंगनी से लाल हो जाता है। वायु के खानों से अशुद्ध वायु और भाप फेफड़ों से बाहर निकल आती है। सारांश यह है कि साँस के द्वारा रुधिर का मैल दूर होता रहता है।

प्रश्न

(१) शरीर के चलाने के लिए शक्ति कहाँ से आती है?

(२) इन्जन और शरीर के भागों में क्या समानताएँ हैं?

(३) नीचे लिखे अङ्गों का कार्य बताइए :—

पाचन यन्त्र, श्वास-यन्त्र, पेशी-मण्डल; कङ्काल, मलोत्सर्ग-यन्त्र, रक्त यन्त्र, नाड़ी मण्डल, ज्ञानेन्द्रियाँ।

(४) रक्त का कार्य क्या है?

(५) मलरूपी पदार्थों का शरीर से बाहर निकलना क्यों आवश्यक है?

अध्याय २

स्वास्थ्य के लिए वायु की उपयोगिता

स्वास्थ्य की परिभाषा – स्वास्थ्य या तन्दुरुस्ती का अर्थ है शरीर का बिल्कुल ठीक होना। स्वस्थ मनुष्य के सब अंग अपना-अपना कार्य पूरी तरह करते हैं। उसे किसी प्रकार की पीडा या व्याधि नहीं सताती और न उसे काम करने में आलस्य ही आता है। उसके बदन में फुर्ती रहती है और रोग प्राय उसके पास तक नहीं फटकते।

मनुष्य यदि स्वास्थ्य के नियमों का ठीक ध्यान रक्खे तो वे सदा नीरोग बने रहे। उन्हें बीमारी हो ही नहीं। अधिकतर रोग अविद्या या मूर्खता के कारण होते हैं। लोग या तो स्वस्थ रहने के नियम जानते नहीं या यदि जानते भी हैं तो जान-बूझकर उनका पालन नहीं करते। भारतवर्ष में बहुत सी मृत्युएँ इसी अविद्या के कारण ही होती है।

स्वस्थ रहने से अनेक लाभ हैं। स्वस्थ मनुष्य को भाँति भाँति के दर्द, फुंसी फोड़े, खाँसी-जुकाम और अन्य रोग नहीं होते। जिस किसी का स्वास्थ्य नित्य खराब रहता है, उसका जीवन भार हो जाता है। जीवन के आनन्द उसके लिए व्यर्थ हो जाते है और वह रात दिन दुखी रहने लगता है, परन्तु स्वस्थ मनुष्य का चित्त प्रसन्न रहता है। वह रोगियों की अपेक्षा कहीं अधिक काम कर सकता है और वह जीता भी अधिक ही है।

स्वस्थ रहने से जब इतने अधिक लाभ है, तब हमें चाहिए कि स्वास्थ्य के नियमों का पूरी तरह पालन करें और अपने शरीर को सर्वथा

नीरोग बनायें। रोग हमारे लिए एक प्रकार की चेतावनी है। हमें रोग तभी होता है, जब हम आरोग्यता के नियमों का उल्लंघन करते हैं। हमें चाहिए कि इन नियमों का सदा ध्यान रक्खें। यदि कभी रोगी हो भी जायँ, तो रोग की उपयुक्त चिकित्सा कराने के अतिरिक्त उसका मूल कारण ढूँढें और ऐसा उपाय करें कि हमें फिर रोग न हो सके। बुद्धिमानी इसी में है कि रोग होने ही न दिया जाय। रोग के चंगुल में फँसना कष्टदायक और हानिकारक है।

बहुधा अशिक्षित लोग यह समझते हैं कि रोग भूत, प्रेत, चुड़ैल, जादू टोने या नजर लग जाने से होते हैं। यह सब भूल है। रोग का मूल कारण यह होता है कि रोगी स्वास्थ्य के नियमों की परवाह नहीं करता। इस कारण प्रकृति उसे दण्ड देती है। हमारा शरीर एक प्रकार की मशीन है। यदि मशीन की ठीक देख भाल न की जाए और उसे उलटा सीधा चलाया जाय तो वह शीघ्र बिगड़ जाती है, अपना काम ठीक नहीं कर सकती। इस प्रकार शरीररूपी मशीन से ठीक काम लेने के लिए उसकी देखभाल की आवश्यकता है। स्वास्थ्य के नियमों का पालन किये बिना मनुष्य स्वस्थ नहीं रह सकता। बिना स्वस्थ रहे, जीवन कष्टमय हो जाता है और भाँति-भाँति के रोग मनुष्य को सताने लगते हैं। बात बात में आलस्य आता है, फुर्ती और प्रसन्नता काफूर हो जाती है और जीवन दूभर हो जाता है। इसलिए स्वास्थ्य के नियम पालन करना ही बुद्धिमानी है।

२ स्वास्थ्य में वायु का महत्त्व—स्वस्थ शरीर के लिए हवा, पानी तथा भोजन की बड़ी आवश्यकता है। परन्तु इन सबमें हवा परम आवश्यक है। हम बिना खाने, बिना पानी पिये कुछ देर तक रह सकते हैं, पर बिना हवा के एक मिनट भी जीवित नहीं रह सकते। इसलिए पानी तथा भोजन की अपेक्षा हमारे लिए हवा का अत्यन्त महत्त्व है।

सुन्दर स्वास्थ्य के लिए शुद्ध वायु की अत्यधिक आवश्यकता है। जिस प्रकार कुछ दिनों तक अच्छा एव शुद्ध भोजन न मिलने से शरीर रोगी हो जाता है, उसी प्रकार शुद्ध वायु न मिलने से स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता।

प्रकृति का यह नियम है कि अग्नि से शक्ति उत्पन्न होती है। इजन में कोयला-पानी इसी लिए दिया जाता है। ठीक इसी प्रकार वायु से भी शरीर में शक्ति उत्पन्न होती है। इस शक्ति से हमारा शरीर बराबर काम करता रहता है। अत अब हमें यह जान लेना चाहिए कि हवा में वह कौन सा तत्त्व है जो शरीर को शक्ति प्रदान करता है।

(1) स्वच्छ वायु की उपयोगिता—इसलिए यह बहुत जरूरी है कि हम हमेशा साफ हवा में रहे और सोते वक्त कमरे के दरवाज़े और खिड़कियों तथा रोशनदानों को खुला रक्खें जिससे कि साफ हवा कमरे में आ सके और दूषित हवा बाहर जा सके। यदि सर्दी अधिक हो तो ओढ़ने और पहिनने के वस्त्रों की संख्या अधिक कर लेनी चाहिए, परन्तु दरवाज़े बन्द न करने चाहिए। और यह भी बहुत जरूरी है कि सोते समय हम अपने मुँह को खुला रक्खें, लिहाफ अथवा कम्बल से ढक न लें, नहीं तो हमको साँस लेने के लिए अच्छी हवा न मिलेगी।

तुमने देखा होगा, प्रात काल उठकर स्वच्छ हवा में टहलनेवालों की तन्दुरुस्ती कैसी अच्छी रहती है। बहुत से ७० ८० वर्ष के बूढ़े मनुष्य भी प्रात काल के वायु सेवन के कारण बहुत अच्छी तरह अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

तुम्हारे स्कूल, छात्रालय, बड़े बड़े दफ़्तर इत्यादि सब खुली हवा में इसीलिए बनाये जाते हैं कि वहाँ के लोगों को साफ हवा हमेशा मिलती रहे। (2)

अब यह जानकर कि शुद्ध वायु हमारे लिए भोजन के समान है, हमको चाहिए कि हम अपने शरीर के लिए जैसे और भोजन का प्रबन्ध

करते है, वैसे ही इसका भी करें। पेट भरने की ओर दृष्टि रखते हुए भी, हम लोग अपने शरीर के लिए इस अनमोल भोजन के जुटाने की चिन्ता नहीं करते। यह हमारी बडी भूल है। इसके कारण न मालूम कितने सुन्दर जवान असमय ससार से कूच कर जाते हैं और अपने आश्रितों को असहाय छोड जाते हैं।

शुद्ध वायुरूपी भोजन न मिलने से शरीर कमज़ोर होकर बीमारियों का शिकार हो जाता है। बीमारी हो जाने से रोग से लडाई करने की शक्ति शरीर में नहीं रह जाती। फलत. रोग की जीत और शरीर की हार होती है। जब हमें शुद्ध वायु नहीं मिल सकती तो हम उसी दूषित वायु का प्रयोग करते है जिसके ज़हरीली होने का हम पक्का सबूत दे चुके हैं। इस वजह से हम अपने शरीर को और भी कमज़ोर बना देते हैं।

शुद्ध वायु के तत्त्व—शुद्ध वायु एक संयुक्त तत्त्व है, जो विविध भाँति के वाष्पो से मिलकर बनती है। उसके मिश्रण अशों का अनुपात निम्नलिखित है .—

वायु के मिश्रण-अंश—

१—ओषजन २० ६६ प्रतिशत्।

२—तर्द्यजन ७६· प्रतिशत्।

३—आंगारिकाम्ल ·०४ प्रतिशत्।

४—इन तीन अशों के अतिरिक्त आधुनिक अन्वेषणों के अनुसार ओषजन में कुछ सूक्ष्म मात्रा में पानी और दो-एक अश भी पाये जाते हैं।

१—ओषजन या आक्सीजन—ओषजन रगहीन गधहीन और सूक्ष्म पदार्थ या वाष्प है जिसमें कोई स्वाद नहीं, कोई रुचि नहीं, परन्तु इस पर जीवन का आधार है। अग्नि में, दीपक में, साराश यह कि प्रत्येक

ज्योति में ओपजन का अंश है। जो ज्वाला बनकर जलता हुआ दिखाई पड़ता है। यदि ओषजन न हो तो जीवन नहीं रह सकता, परन्तु यह भी स्मरण रहे कि विशुद्ध ओषजन में भी जीना असम्भव है।

२—तर्क्ष्यजन या नाइट्रोजन—ओपजन की भाँति तर्क्ष्यजन भी रंग-रहित, गन्धरहित, व स्वादरहित वाष्प है। यह स्वय यद्यपि अंशरहित वस्तु है और इसमें कोई विशेष गुण नहीं है, तथापि ओपजन के तीक्ष्ण प्रभाव को मन्द करने के लिए और इसे तरल बनाने के लिए इसकी आवश्यकता होती है। ओपजन की तीक्ष्णता का अनुमान इससे किया जा सकता है कि इसे हलका करने के लिए लगभग चौगुनी तर्क्ष्यजन के मिश्रण की आवश्यक्ता होती है।

३—अंगारिकाम्ल या कार्बोनिक एसिड गैस—वायु की तीसरी और अतीव विषैली अंश आंगारिकाम्ल है जो ओपजन और अंगारजन या कार्बन के मेल से उत्पन्न होती है। जब कोई चीज़ जलती है तब आक्सीजन उससे मिलकर एक नई वायु कार्बोनिक एसिड पैदा कर देती है। यह वायु साधारण हवा से अधिक भारी होती है। इसलिए एक जगह इकट्ठी हो जाती है और कोई चीज इसमें जल नहीं सकतीं। मनुष्यों और जानवरों के लिए तो यह विष के समान है। जब हम साँस लेते हैं तब हवा हमारे फेफड़ों में जाकर ख़ून में इकट्ठी की हुई गन्दगी जलाकर कार्बोनिक एसिड के रूप में बाहर निकलती है। यह बाहर निकली हुई हवा साँस लेने के योग्य नहीं रह जाती। इसलिए यह उचित है कि सदा खुली और ताज़ी हवा में साँस ली जाय। सर्दी के दिनों में तो सोते समय यह बहुत ही ज़रूरी है कि रात को लिहाफ़ अथवा कम्बल से मुँह कभी न बन्द किया जाय। नहीं तो कार्बोनिक एसिड को अलग होने और प्राण वायु को साँस लेने के लिए अन्दर पहुँचने में रुकावट पैदा होगी। कमरे के दरवाजे और खिड़कियाँ

भी खुली रहनी चाहिए, क्योंकि इनसे दूषित वायु के बाहर निकलने और ताज़ी हवा के अन्दर आने में सहायता मिलती है।

हम ऊपर कह चुके है कि कार्बोनिक एसिड गैस हम लोगों के लिए विष के समान है। इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि जिस कमरे में हम सोते हो उसमें कोई तेल का लैम्प अथवा आग न जलनी चाहिए क्योंकि जलने में यह भी कार्बोनिक एसिड गैस उत्पन्न करते हैं। रेल के कोयलों को तो कमरे में कभी भी न जलाना चाहिए। इनके जलने से कारबन मोनो आक्साइड (Corbon monoxide) बनती है और यह वायु प्राणघातक है। जाड़े के दिनो में जिन आदमियों ने इन कोयलों की अँगीठी को दहकाकर कमरा बन्द कर लिया है वह सब कमरा खोले जाने पर मुर्दा पाये गये है। ताज़ी वायु न जाने से कारबन डाइ आक्साइड कारबन मोनो आक्साइड में परिवर्तित हो जाता है और इस प्रकार कभी-कभी स्वच्छ वायु की कमी से मृत्यु तक हो जाती है।

अब तुम्हारी समझ में आ गया होगा कि हमको ताज़ी हवा की क्यो ज़रूरत होती है। हमको यह आदत डालनी चाहिए कि जहाँ तक हो सके हम अपना प्रत्येक कार्य खुली हवा में करे। इसी लिए सुबह-शाम हवा खाने के लिए बाहर जगल में घूमने जाना अच्छा है। मकान भी हमारे ऐसे होने चाहिए जिनमें हवा के आने जाने में बिलकुल रुकावट न हो।

कमरे के दरवाज़े और खिड़कियाँ तक यदि सम्भव हो तो खुले रहने चाहिए। यदि हो सके तो रोज़, नहीं तो दूसरे-तीसरे दिन कमरे में धूपबत्ती जलाकर रख देना चाहिए। इससे कमरे की हवा साफ हो जाती है और सुगन्ध से कीड़े मर जाते है। ऐसे कमरे मे जाने से चित्त भी प्रसन्न होता है।

शुद्ध हवा में आक्सीजन गैस का अंश अधिक होता है। यह आक्सीजन शरीर में अग्नि पैदा करके कार्बोनिक एसिड गैस बन जाती

है और यह हवा भारी, भापयुक्त तथा गरम होती है। भाप तथा कार्बानिक एसिड से भरी होने के कारण इस हवा में ज्यादा हिलने की शक्ति नहीं होती। इसलिए यह हमारी तन्दुरुस्ती के लिए हानिकारक होती है।

बहुत से लोग किसानों की तरह दिन भर मैदान में काम नहीं करते। उनको दिन भर बैठे बैठे किसी दफ्तर, स्कूल या बैंक में काम करना पड़ता है अथवा किसी फैक्टरी या मिल में दिन भर मेहनत-मजदूरी करनी पड़ती है। ऐसे मनुष्यों को चाहिए कि सुबह शाम थोड़ा समय निकालकर ताजी हवा का सेवन जरूर करें। जो लोग ऊँचे ऊँचे बन्द मकानों में रहते हैं या जिनके मकानों के पास गन्दे व्यापार होते हैं, उनको भी ऐसी जगहों से दूर, पार्क या नदी के किनारे, जहाँ धूल न उड़ती हो, शुद्ध वायु में थोड़ी देर जरूर टहलना और अपने फेफड़ों के अन्दर साफ वा भरना चाहिए।

खुली हवा में घूमना—अब नये शहरों को बनाते समय शहर के बीच में जगह-जगह पार्क भी बनाये जाते हैं। यह पार्क उन स्त्रियों और पुरुषों के लिए होते हैं जो कि तंग गलियों के अन्दर अँधेरी कोठरियों में रहते हैं और जिन्हें शुद्ध हवा नहीं मिलती। यहाँ यह लोग जी बहलाकर और ताजी हवा का सेवन कर अपना स्वास्थ्य ठीक रख सकते हैं।

बालकों को चाहिए कि सुबह-शाम साफ हवा में—मैदान में या नदी के किनारे घूमें। शाम को पाठशाला की फील्ड में तरह-तरह के खेल खेलें और व्यायाम करें। ऐसा करने से वे हमेशा नीरोग व स्वस्थ रहेंगे।

हवा का आना-जाना—अब हम कमरा में प्रयोग की हुई दूषित वायु को बाहर निकालने और उसकी जगह शुद्ध वायु पहुँचाने के तरीकों पर ध्यान देंगे। इसको Ventilation कहते है। कमरे का रुख पूर्व-

पच्छिम की ओर होना चाहिए जिससे शुद्ध हवा दूषित हवा को बाहर करके उसकी जगह आसनी से ले सके। इस विषय में तुम्हें यह जानना आवश्यक होगा कि जब हवा गर्म हो जाती है तब वह ऊपर को उठती है और ठंडी हवा उसका स्थान ले लेती है। कमरे की हवा जब साँस लेने से गर्म हो जाती है तब वह उपर को उठती और उसकी जगह दूसरी ताज़ी हवा आ जाती है। यदि इस दूपित तथा गर्म हवा को निकलने का रास्ता नहीं मिलता तो कमरा गर्म हो जाता है। हवा में एक तरह की बदबू आने लगती है और दम घुटने लग जाता है।

मान लो कि कमरे में हवा आने के लिए केवल एक दरवाज़ा है। ऐसी हालत में जितनी हवा एक बार कमरे में आ जायगी वह निकल न सकने के कारण गर्म हो जायगी। कार्बोनिक एसिड और भाप की अधिकता के कारण हमारा दम घुटने लगेगा, जिससे हमारे सिर में चक्कर आने लगेगा। ऐसे कमरे में कुछ दिन रहने से हम बीमार पड जायँगे। यदि कमरे में १०-१२ फ़ीट की ऊँचाई पर एक रोशनदान हो तथा जिस ओर कमरे का सदर दरवाज़ा हो उसके सामनेवाली दीवाल में कुछ ऊँचाई पर एक खिडकी हो तो तुम्हारे कमरे की गर्म हवा ऊँचे उठकर रोशनदान से बाहर निकल जायगी। इस तरह शुद्ध हवा को कमरे के भीतर आने का मौक़ा मिल जायगा। तुम हमेशा इस बात को ध्यान में रक्खो कि तुम्हारे उठने-बैठने के स्थानों में यदि तुम्हें शुद्ध वायु तथा प्रकाश बहुतायत से मिलता रहेगा तो तुम्हारा शरीर सदा तन्दुरुस्त और बलिष्ठ बना रहेगा।

साँस लेने से हवा मे परिवर्तन—हम साँस के द्वारा स्वच्छ हवा अपने शरीर के भीतर ले जाते हैं। इस हवा में जो मुख्य वायु मिली रहती है—एक का नाम आक्सीजन है और दूसरी का नाइट्रोजन। कुल हवा का $\frac{1}{5}$ भाग आक्सीजन होता है और $\frac{4}{5}$ नाइट्रोजन। आक्सीजन वायु अग्नि को जलने में सहायता देती है। इसलिए भीतर जाकर वह

काम में आ जाती है। जब हम साँस के द्वारा हवा बाहर निकालते हैं तब भीतर गई हुई नाइट्रोजन वायु ज्यों की त्यों बाहर आ जाती है। आक्सीजन काम में आ जाती है और एक दूसरी दूषित वायु बन जाती है, जिसका नाम कारबोनिक एसिड गैस है। यह साँस के द्वारा बाहर निकलती है। साँस के साथ थोड़ी-सी भाप भी निकलती है और अगर मनुष्य का स्वास्थ्य ठीक नहीं होता तो साथ में और भी दुर्गन्धित वस्तुएँ निकलती हैं। साँस के द्वारा बाहर निकली हुई हवा में फिर साँस लेने से आवश्यक आक्सीजन नहीं मिल सकता और साँस लेने के लिए यह हवा हानिकारक हो जाती है।

फेफड़े और हवा—हवा हमारे चारों ओर विद्यमान है। कोई जगह हवा से खाली नहीं, परन्तु हवा को न हम देख सकते हैं, न छू सकते हैं। जब तक हवा चलती न हो, उसको हम स्पर्श भी नहीं कर सकते, न उसे सुन ही सकते हैं। यही कारण है कि हवा का हर जगह होना हमें मालूम नहीं होता। वास्तव में हवा पृथ्वी के चारों ओर कई मील तक फैली हुई है और पृथ्वी को कोट की भाँति घेरे हुए है। इसी हवा को वायु मण्डल कहते हैं।

ज़रा थोड़ी देर अपना मुँह बदकर, नाक के नथनों को उँगलियों से दबाओ और इस प्रकार कुछ देर तक नाक मुँह दोनों को खूब बन्द रहने दो। कुछ देर बाद, तुम्हें दम घुटता हुआ मालूम होगा। इसका क्या कारण है?

कारण यह है कि प्रतिक्षण नाक या मुँह में से होकर हवा अन्दर जाती और बाहर आती रहती है। इसी हवा से खून साफ होता है और प्रत्येक अङ्ग को अपने काम के लिए शक्ति मिलती है। बिना हवा के थोड़ी देर जीना भी असम्भव है।

हम जब साँस लेते हैं, तब हवा नाक में होकर मुँह के पिछले भाग

जाती है। वहाँ से हवा की नलकी के द्वारा फेफड़ों में पहुँचती है और फेफड़ों में आये हुए रक्त को शुद्ध करती है।

मनुष्य के दो फेफडे होते हैं—एक दाहिना और एक बायाँ। फेफडे पसलियों के भीतर की ओर रहते हैं, वे हवा भरने से फूल जाते हैं और हवा निकलने पर पटकते हैं। इसी लिए साँस लेने से मनुष्य की छाती फैलती और साँस निकाल देने से सिकुडती है।

फेफडे रक्त शुद्ध करने के यन्त्र हैं। शरीर का सब रक्त फेफड़ों में आता रहता है। वहाँ से शुद्ध होकर विविध अङ्गों में लौट जाता है। कुछ समय बाद, जब रक्त अशुद्ध हो जाता है तब फिर फेफड़ों में आता और शुद्ध होता है।

वैज्ञानिकों ने पता चलाया है कि हवा वास्तव में दो प्रकार की वायुओं से मिलकर बनी है। इन दोनों को "आक्सीजन" और "नाइट्रोजन" कहते हैं। यदि हम १०० घनफुट हवा लें, तो उसमें प्राय. २१ घनफुट आक्सीजन और ७९ घनफुट नाइट्रोजन होगा। इनके अतिरिक्त, हवा मे बहुत थोड़ा अंश कार्बन डाइ-आक्साइड नामक गैस का और कुछ पानी की भाप का भी रहता है। धूल, कीटाणु और अन्य तरह-तरह की गन्दगियाँ भी हवा में मिलना साधारण बात है।

हवा के इन भागों में से, आक्सीजन जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। वास्तव में जो हवा शरीर के अन्दर जाती है, उसका आक्सीजन भाग ही हमारे प्रयोग में आता है। यह भाग रक्त से जा मिलता है और इसकी जगह, कार्बन डाइ आक्साइड गैस रक्त से निकल-कर फेफड़ों की हवा में आ मिलती है और उसे अशुद्ध कर देती है। इसलिए फेफड़ों से निकली हुई हवा साँस लेने योग्य नहीं होती।

यदि तुम्हे १० फ़ुट लम्बे, १० फ़ुट चौड़े और १० फ़ुट ऊँचे कमरे में बन्द कर दिया जाय, तो साधारण तौर पर तुम्हारे साँस लेने

से २० मिनट में उस कमरे की सब वायु अशुद्ध हो जायगी। यदि कमरे के द्वार और उसकी खिड़कियाँ बन्द रहें, तो अब तुम्हें उस गन्दी हवा में ही साँस लेना पड़ेगा, जिससे तुम्हारे शरीर को अत्यन्त हानि पहुँचेगी।

अनेक मूर्ख मनुष्य रात-दिन बन्द कमरों में रहते और सोते हैं। उनके फेफड़ों को शुद्ध वायु नहीं मिलती। उन्हें खाँसी, जुकाम, तपेदिक़ आदि अनेक रोग आ घेरते हैं और उनका जीवन भार हो जाता है।

शुद्ध हवा से अधिक आवश्यक कोई चीज़ नहीं। हवा ही जीवन और स्वास्थ्य का मूल है। बिना हवा के किसी भी प्राणी का जीवित रहना असम्भव है। हवा का आक्सीजन भाग रक्त को शुद्ध करता है और रक्त के साथ विविध अङ्गों में जाकर उनको शक्ति प्रदान करता है। हवा के द्वारा शरीर में गर्मी उत्पन्न होती है और बिना हवा के शरीर का कोई भाग अपना काम नहीं कर सकता।

मनुष्य को चाहिए कि अपने मकान ऐसे बनाये कि उनमें शुद्ध हवा निरन्तर आती रहे। साँस के द्वारा निकली हुई हवा, हलकी होने के कारण, ऊपर को उठती है और कमरे की छत के पास जाकर इकट्ठी हो जाती है। इसलिए कमरे के ऊपर के भाग में खुलनेवाले रोशनदान अवश्य बनाने चाहिए। जहाँ तक हो सके, खिड़कियाँ और दरवाज़े ऐसे बनाने ठीक हैं कि कमरे में हवा आर-पार आ जा सके।

हवा के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम सदा याद रक्खो :—

(१) हमें नगर या गाँव की तग और मनुष्यों से खचाखच भरी हुई गलियों में कदापि नहीं रहना चाहिए।

(२) घर के द्वारों और खिड़कियों को सदैव रात-दिन खुला रखना चाहिए।

(३) घर के पास वृक्षों या पौधों का होना लाभदायक है; क्योंकि वे वायु में से विषैली गैस ले लेते हैं और आक्सीजन बाहर निकाल देते हैं।

(४) हमारे घर, कपड़े और शरीर सदैव सर्वतः शुद्ध रहने चाहिए। बिछौने में ऐसे कम्बल होने चाहिए, जो धुल सके, न कि ऐसी रजाइयाँ जो कभी नहीं धुलतीं और जिनमें वर्षों रोगजनक पदार्थ दबे रहते हैं। कमरों में मैला फर्श, टाट या दरी, नहीं होनी चाहिए और सारा सामान ऐसा होना चाहिए जो समय पर सहज ही शुद्ध किया जा सके।

(५) कमरे में अधिक मनुष्यों को न सोना चाहिए और सोते समय कपड़े से मुँह कभी नहीं ढकना चाहिए।

(६) आग, अँगीठियाँ, लैंप आदि कमरे में जलते नहीं रखने चाहिए। इनकी जगह गरम जल की बोतल बिछौने को भली भाँति रख सकती है।

(७) रहने के कमरों के निकट ही पाखाने नहीं होने चाहिए, बल्कि घर भर में कोई पाखाना नहीं होना चाहिए। पाखाना ढकनेवाले कूँडों या बाल्टियों में फिरना चाहिए और उसके ऊपर सूखी मिट्टी डाल देनी चाहिए; परन्तु पानी नहीं डालना चाहिए।

(८) रसोई की बचन-खुचन, भाजी के छिलके और फलों की गुठलियाँ आदि डालने के लिए ढकनेवाले पीपे रखने चाहिए जो दिन में दो बार साफ़ करवा देने चाहिए।

(९) शुद्ध वायु में केवल रहना ही आवश्यक नहीं, बल्कि भली भाँति वायु को फेफड़ों में ले जाना आवश्यक है। बहुत से मनुष्यों के फेफड़ों में वायु भली भाँति कभी नहीं भरती और इसके तीन कारण हैं :—

(१) निचला बैठे रहना, (२) चुपचाप रहना, (३) छाती का दबा रहना।

विशेषत स्त्रियाँ और लड़कियों के फेफड़े जो घरों में निचली और चुपचाप बैठी रहती हैं और पढ़ते-लिखते, भोजन पकाते या सीते-पिरोते आगे को झुकी रहती हैं, भली भाँति वायु से नहीं भरते और इसलिए उनका लहू शुद्ध नहीं होता।

हिलने-डुलने से गाने से, व्यायाम करने से और कुर्सी पर सीधे बैठने से फेफड़े फैल सकते हैं और वायु भली भाँति उनमें भर सकती है।

लहू की शुद्धि के लिए कोई अच्छा खेल खेलना जैसे गेंद उछालना और लपकना तथा बहुत चिल्लाना और गाना अत्यन्त लाभदायक है। बच्चों और नवयुवकों को विशेषत चिल्लाकर, गाकर, खिलखिलाकर, हँसकर और उछल-कूदकर अपने फेफड़ों को काम में लाने की आवश्यकता है।

यही कारण है कि केवल सैर करने की अपेक्षा खेल-कूद सबके लिए अधिक लाभदायक है। यदि सैर और व्यायाम को एक जितना समय दिया जाय, तो व्यायाम में श्वास अधिक लिये जाते हैं और बहुत सा लहू शुद्ध होने से शरीर में बल आता है।

(१०) घर में प्रकाश आने से भी वायु के शुद्ध होने से सहायता मिलती है। गली-सड़ी वस्तुओं से जो विष वायु में मिलकर वायु को मलिन करते हैं, उनको अँधेरा और सील और भी बढ़ा देते हैं। धूप वायु की बहुत सी विषैली वस्तुओं को सुखा देती है और फिर वायु से हानि नहीं पहुँच सकती। पौधों के समान बच्चों को भी फलने-फूलने के लिए बहुत से प्रकाश की आवश्यकता है, इसके बिना वे पीले रंग के और निर्बल रहते हैं, जैसे अँधेरे में लगे हुए पौधे।

(११) साँस सदा नाक के द्वारा लेनी चाहिए। बहुत से लोगों को मुँह से साँस लेने की आदत पड़ जाती है, जो बहुत बुरी है। प्रकृति ने साँस लेने के लिए नाक विशेष तौर पर बनाई है। हवा जब नाक में

होकर जाती है तब उसे एक तंग, नमीदार नलकी में होकर अन्दर जाना पड़ता है। इससे दो लाभ होते हैं; एक तो वायु गर्म और तर हो जाती है; दूसरे धूल और कीटाणु इस नलकी में अटके रह जाते हैं, फेफड़ों तक नहीं पहुँच पाते। मुँह के द्वारा साँस लेने से ठंडी, खुश्क और धूल व कीटाणुओं से भरी हुई हवा सीधी फेफड़ों में चली जाती है और उन्हें हानि पहुँचाती है।

मुख द्वारा साँस लेने के अवगुण—हम बता चुके हैं कि मुँह से साँस लेना नियम के प्रतिकूल है। बच्चे मुँह से साँस लेते हैं, उनको साधारणतया नीचे लिखी व्याधियाँ हो जाती हैं :—

(१) नाक द्वारा वायु छनकर जाती है। दूसरे वह कि उष्ण हो जाती है और शरीर के भीतरी अवयवों में ठंड का प्रवेश नहीं होने पाता। मुँह से साँस लेने में इन दोनों बातों में से एक भी नहीं होती। मुँह से साँस लेनेवाले के फेफड़ों में शीत का प्रभाव हो जाता है और खाँसी आने लगती है।

(२) मुँह से साँस लेनेवालों के वक्षस्थल की रचना में भेद पड़ जाता है। नाक से साँस लेने की आदत न होने से वह जब नथुनों से साँस लेते हैं तब साँस रुकती है और वक्षस्थल में पर्याप्त वायु नहीं पहुँचती। इसलिए वक्ष की बनावट में अन्तर पड़ जाता है। अल्पायु बच्चों पर इसका अधिक प्रभाव पड़ता है। उनकी पसलियाँ कोमल होती हैं और सुगमता से मुड़कर टेढ़ी हो जाती हैं।

(३) बहुधा वक्ष की बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। इसमें कफ क्षय, राज-यक्ष्मा अत्यन्त सांघातिक रोग है। मुँह से साँस लेने का स्वभाव अधि-कांश ऐसे लोगों को हो जाता है जिनको जुकाम अधिक हुआ करता है। जुकाम में नथुने भर जाते हैं और मुँह से साँस लेना पड़ता है जो लोग वक्ष और कटि पर बहुत कसा कपड़ा पहिनते हैं उन्हें भी क्षय हो

सकता है, क्योंकि साँस लेते समय छाती और पसुलियों को फैलने में कष्ट होता है।

(४) मुँह से साँस लेनेवालों के नाक में बहुधा दुष्ट मांस पैदा हो जाता है, जिससे नाक से साँस लेना कठिन हो जाता है। यह दुष्ट मांस बढ़ते-बढ़ते गले की नली तक पहुँच जाता है और कान के भीतरी छेदों को बन्द कर देता है। मनुष्य ऊँचा सुनने लगता है, गले की गिल्टियाँ बढ़ी हो जाती हैं और कण्ठमाला रोग हो जाता है।

शुद्ध वायु और श्वास की हवा—खुले मैदान की हवा जब हमारे शरीर में प्रवेश करती है तो यह अंश इसी भाव से होते हैं। यदि बाहर निकलनेवाली साँस की जाँच की जावे तो ज्ञात होगा, तद्र्वजन की मात्रा उतने ही परिमाण में रहती है लेकिन ओषजन अथवा आंगारिकाम्ल की मात्रा में अन्तर पड जाता है। ओषजन की मात्रा लगभग ४ प्रतिशत घट जाती है और आंगारिकाम्ल का मिश्रण ·०४ के ठौर ४·३ प्रतिशत हो जाता है।

अस्तु, ज्ञात हुआ कि हमारे प्रत्येक साँस में जो ताज़ी हवा पेट में जाती है, इसके ओषजन का कुछ अंश भीतर रह जाता है और जब वह हवा बाहर आती है तो ओषजन की जगह आंगारिकाम्ल का अंश इसमें अधिक हो जाता है। परिणाम यह निकला कि प्रकृति की ओर से साँस लेनेवाले प्राणीमात्र को बाहर की ओषजन की हर समय आवश्यकता रहती है। इनकी देह के भीतर आंगारिकाम्ल निरन्तर उत्पन्न होती रहती है जिसे वे पूर्ण रूप से निकाला करते हैं। साँस लेने का प्रबन्ध प्रकृति ने केवल इस प्रयोजन से रक्खा है कि ओषजन देह के भीतर पहुँचती रहे और आंगारिकाम्ल बाहर निकलती रहे।

इसीलिए हमारी नसों में दो रंग का रक्त दौड़ता है—एक लाल दूसरा श्याम। लाल रुधिर वह है जिसे ताज़ी हवा शुद्ध कर चुकी है। उसमें वायु की ओषजन भरी हुई है। श्याम रक्त वह है, जो शरीर में

चक्कर लगाने के पश्चात् दूषित हो चली है। इसमें ओषजन की जगह आगारिकाम्ल के विषैले द्रव्य भरे हुए हैं। इसी का नाम "रक्त सञ्चार" है, जो अहर्निशि, सोते-जागते सर्वदा देह में प्रचलित रहता है।

शुद्ध वायु की जीवों और वनस्पतियों को आवश्यकता—खोज से जान पड़ेगा कि ओषजन और आगारिकाम्ल की आवश्यकता केवल जीवधारियों ही को नहीं, किन्तु वनस्पति-वर्ग को भी है। जिस प्रकार जीव-जन्तु ओषजन को ग्रहण करते हैं और आगारिकाम्ल को पैदा करते और निकालते हैं, उसी प्रकार वनस्पति भी। भेद इतना है कि पशु-प्राणी तो छिन-छिन पर श्वास के द्वारा यह काम करते हैं, और वृक्षवर्ग दिन के समय आगारिकाम्ल को शोषण करते हैं और ओषजन को निकाला करते हैं तथा रात को उसका उलटा अर्थात् ओषजन को शोषण करते है और आगारिकाम्ल निकाल देते हैं। इसकी साक्षात् परीक्षा यह है कि गरमी में दिन के समय खुले मैदानों में सरदी होती है और वृक्षों में गरमी। तुम पढ़ चुके हो कि वायु में जब आगारिकाम्ल का अंश अधिक होता है तब वह उष्ण हो जाती है। पेड़ों के नीचे और आस-पास की वायु के उष्ण होने का यही कारण है कि रात के समय पेड आगारिकाम्ल देते है।

अग्नि और पवन—तुम जानते हो कि आग में ईंधन इस हेतु डाला जाता है कि आग जलती रहे और आग में ताप बना रहे। आग जब जलेगी तो ताप और उष्णता उत्पन्न होगी। जब ईंधन झोंका जायेगा तो आगारिकाम्ल की उत्पत्ति होगी; परन्तु स्मरण रहे कि आग के जलने के लिए वायु का होना आवश्यक है। यही नहीं किन्तु वायु का अपने प्राकृतिक मिश्रण के साथ होना भी आवश्यक है, क्योंकि किसी अंश की अधिकता होने पर दशा बदल जायेगी।

आग जलने के लिए वायु में ओषजन या अक्सीजन की आवश्यकता है। यदि ओषजन न हो तो आग ठंडी हो जायेगी। दृष्टान्त—यदि

किसी अन्ध कूप में जो अधिक गहरा हो, जलता हुआ दीपक उतारा जाये, तो दीपक भीतर पहुँचकर बुझ जायगा। कारण यह है कि भीतर आगारिकाम्ल का अंश अधिक मात्रा में है और ऊपर से ओपजन पहुँचने नहीं पाता। फल यह होता है कि दीप बुझ जाता है। इसी प्रकार यदि जलते हुए दीपक को ढक दिया जाये और इसी में बाहरी वायु स्पर्श न करने पाये तो वह बुझ जायगा।

यह दशाएँ तो वह हैं जो आगारिकाम्ल की अधिकता या ओपजन न होने से होती हैं, दूसरी ओर यदि ओपजन की अधिकता हो तो आग भड़क उठेगी, ओपजन को किसी बर्तन में बन्द करके, यदि आगारिकाम्ल को उसमें डाला जाये, तो परिणाम यह होगा कि वह बर्तन उड़ जायगा, ओपजन उसे तोड़कर निकल आवेगी।

अग्नि और ताप—अस्तु ज्ञात हुआ कि उष्णता का आधार अग्नि है। जितनी तेज आग होगी उतनी ही प्रचण्ड उष्णता होगी और आग तथा उसकी उष्णता बनाये रखने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि ओपजन का अंश एक विशेष मिश्रण के साथ उससे सम्मिलित होता रहे। तुम जानते हो कि प्रत्येक प्राणधारी की देह में उष्णता होती है। इससे प्रकट होता है कि देह में भी आग के जलने और उष्णता उत्पन्न होने का प्रबन्ध है। हम अभी बता चुके हैं कि आग को कायम रखने और उष्णता स्थापित करने के लिए इसकी आवश्यकता है कि आग में ईंधन पड़ता रहे और ओपजन पहुँचती रहे, अत यह दोनों दशाएँ देह की उष्णता के सम्बन्ध में भी अवश्य होंगी।

देह की उष्णता—ध्यान देने से ज्ञात होगा कि देह की भट्टी हमारा आमाशय है कि देह को उष्ण रखनेवाली आग इसी अँगीठी में दहका करती है, इसी आग का ईंधन प्रकृति ने भोजन को बनाया है, जो सब प्राणी सायं-प्रात खाते हैं। आहार के वे अंश जो चर्बी, तेल, शक्कर व निशास्ता इत्यादि की भाँति होती है, मेदे में पहुँच ईंधन का

भाँति सुलगने लगती है। वायु की ओषजन जो साँस के द्वारा आमाशय में पहुँचती है, इस ईंधन को जलाने और जठराग्नि तथा देह को उष्णता बनाये रखने में सहायता देती है।

जीवन और मृत्यु—यदि कोई व्यक्ति कुछ काल तक खाना न खाये तो शनैः शनै उसी के शरीर की उष्णता कम होने लगेगी और कम होते होते एक दिन बिलकुल समाप्त हो जायगी। देह की उष्णता का नष्ट हो जाना और देह का ठडा हो जाना ही मृत्यु है। वैसे ही होता है, जैसे आग में ईंधन न डालना। यह तो ईंधन की बात हुई अब वायु की अवस्था पर विचारो। ईंधन के अभाव में तो आग घुल घुलकर ठण्डी होती है और बुझने-बुझाने में कुछ देर लगती है। किन्तु यदि साँस बन्द कर दी जाये और बाहर की शुद्ध वायु शरीर में न पहुँचने पाये तो मनुष्य तुरन्त ही मर जायगा। इसका कारण, जैसा कि हमने अभी बताया है, केवल यही है कि आग को जलाने के लिए ओषजन आवश्यक है, जब ओषजन देह में न पहुँचने पाई और केवल आंगारिकाम्ल ही शेष रही तब आग बुझ जायगी। याद करो कुएँ में छोड़े गये जलते दीपक की दशा को। यही दशा प्राण-धारियों की है, उनका गला घोंटने पर एक तो बाहर की ओषजन नहीं आ पाती। दूसरे आंगारिकाम्ल भर जाती है, जो जठराग्नि को ठण्डा कर देती है और मनुष्य मर जाता है।

उत्तम गृहों की विशेषताएँ—इसी लिए स्वास्थ्य रक्षा विधान वेत्ता इस बात पर बल देते है कि मनुष्य को ऐसे स्थान पर रहना चाहिए जहाँ की वायु दूषित न हो और जहाँ शुद्ध वायु भरपेट मिल सके। घरों का रूप ऐसा हो, जिसमें प्रकाश और वायु प्रचुर परिमाण में आ सकें। शुद्ध वायु और प्रकाश के आने के लिए खिड़कियाँ और झरोखे होने चाहिए और दूषित वायु निकलने लिए छतों में धुआँरा या चिमनी होनी चाहिए।

घरों में वायु के गमनागमन के मार्ग—दूषित वायु उष्ण होती है, अत सर्वदा ऊपर को उठती है और ठंडी वायु में मिलने की चेष्टा करती है। स्वच्छ हवा ऊपर से नीचे आने की चेष्टा करती है। इस बात का विचार तुम स्वय कर सकते हो। किसी कोठरी में धुआँ भर दिया जाये और मनुष्य उसमें जाकर खड़ा हो जाये तो आगारिकाम्ल की प्रबलता से उसका दम घुटने लगेगा, क्योंकि फेफड़े शुद्ध वायु चाहते हैं और वहाँ उन्हें आगारिकाम्ल से मिली दूषित वायु मिलती है। यदि तुम बजाय खड़े रहने के कोठारी में बैठ जाओ तो दम घुटना कम हो जाता है और साँस लेने में किंचित् सुगमता होती है। इस भेद का यह कारण है कि आगारिकाम्ल से व्याप्त मलिन वायु कोठरी के ऊपरी खण्ड में मँडराती है और नीचे खण्ड में किंचित् कम है। शुद्ध वायु जो द्वार से आ रही है, वह नीचे के खण्ड ही में है।

धुएँ में दम क्यों घुटता है—तुमने कभी इस बात पर भी विचार किया है कि धुएँ में हमारा स्वाँस या दम क्यों घुटने लगता है? आओ हम तुम इस पर विचार करें। बात यह है कि ख़राब वायु में ओषजन का अंश कम होता है और आगारिकाम्ल का अंश स्वाभाविक मात्रा से अधिक। तुम जानते हो कि हमारे शरीर को सर्वदा ओपजन की आवश्यकता होती है। साथ ही जो कार्बन द्विओषद् हमारे रुधिर में निरन्तर उपजती है उसको निकालना भी आवश्यक है। जब हम धुएँ में साँस लेते हैं तो ओपजन की जगह आगारिकाम्ल की भरी वायु हमारे फेफड़ों में पहुँचती है और कार्बन द्विओषद् निकलने की जगह आगारिकाम्ल की मात्रा उससे कहीं अधिक देह के भीतर पहुँच जाती है। परिणाम यह होता है कि रक्त की पवित्रता और गति बिगड़ जाती है और दम घुटने लगता है।

वायु की दूषणता के कारण—शुद्ध वायु के दूषित और स्वास्थ्य-क हो जाने के अनेक कारण हैं—[क] जीव वर्ग—(१) मनुष्यों

और पशुओं के श्वास-प्रश्वास लेने से जो विषयम वायु निर्गत होती है। (२) घाँस, कूड़ा-करकट इत्यादि के रज-कण। (३) मूत्र, पुरीष, नाक, थूक, लीद, गोबर इत्यदि के रज-कण। (४) किसी स्थान पर जीव-जन्तु या मनुष्य-समूह। (५) बधिकों (कसाइयों), मोचियों, चर्मकारों, रँगरेज़ों इत्यादि की दूकानें, मिलें और कार्यालय, स्मशान, मरघट अथवा बूचडखाने इत्यादि। (६) नगरों की घनी बस्ती। (७) रोगों और दुर्गन्धिपूर्ण मलिनताओं के कीटाणु। [ख] **बनस्पति वर्ग**—(१) फूल पत्तियों के रज-कण। (२) रात्रि के समय खेतों, जंगलों वाटिकाओं, वृक्षों के नीचे का वायु मण्डल जब कि ये आगारिकाम्ल उत्क्षेपण कर रहे हों। [ग] **अन्य कारण**—(१) धुआँ। (२) धुल-धुलेंडी या गर्द। (३) आग।

दूषित वायु का स्वास्थ्य पर प्रभाव—दूषित और स्वास्थ्य-नाशक वातावरण में रहने से बहुत से दोष पैदा होते हैं—(१) शरीर निर्बल और क्षीण हो जाता है। (२) पाचन-क्रिया बिगड़ जाती है और पाक-स्थली अपना काम नहीं करती। (३) आहार घट जाता है, भूख खुलकर नहीं लगती। (४) निद्रा नहीं आती, मस्तिष्क भ्रान्त हो जाता है। (५) चित्त खिन्न और अधमरा रहता है। (६) सिर में पीडा रहती है। (७) काम-काज में जी नहीं लगता और मनुष्य आलसी, अप्रमादी रहता हे। (८) बच्चों की वृद्धि रुक जाती है। (९) भाँति-भाँति की बीमारियाँ उठ खड़ी होती हैं, यथा—क्षय, जाडा-बुखार, विशूचिका, महामारी (प्लेग), चेचक, गँठिया इत्यादि।

शुद्ध वायु के लिए सावधानी—शुद्ध और पवित्र वायु के लिए कुछ बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए :—(१) कमरा बन्द करके न सोना। (२) गन्दे मुहल्लों और सघन बस्तियों में न रहना। (३) निवास-स्थान के भीतर पशुओं का न बाँधना। (४) किसी बन्द कमरे में आग या कोयला न सुलगाना। (५) बन्द कमरे में पत्थर का

कोयला, लैम्प या मिट्टी के तेल की ढेबरी जलाकर न सोना। (६) घरों के गच या दीवारों पर न थूकना। (७) घर का कोना-कोना खूब ही स्वच्छ रखना। (८) घर ऐसे हों जिनमें धूप और शुद्ध वायु भली भाँति आ सके। (६) शयन-कक्ष की खिड़कियाँ दिन रात खुली रक्खो। (१०) दुर्गन्धित स्थानों पर न बैठो। (११) घर के भीतर या आस-पास कूड़ा-कतवार न बटोरो। (१२) ऐसे स्थानों की वायु दूषित होती है, जैसे मिल, फैक्टरी, मरघट इत्यादि।

वायु शुद्ध करने के उपाय—घरों और गली-कूचों की स्वच्छता के लिए निम्नलिखित तीनों उपाय या तीन में से कोई एक किया जा सकता है जिससे वायु शुद्ध हो जाये। (१) चूना या कार्बोनिक पौडर भूमि पर बिछा दिया जाय। (२) गन्धक या नीम की पत्ती सुलगाई जाये। (३) फिनाइल या काइडिज़ लोशन से भूमि को धोया जाय। पाख़ानों और नालियों को स्वच्छ करने के लिए फिनाइल का उपयोग किया जाये।

वायु से फैलनेवाले रोग—वायु के सम्बन्ध में कहा जा चुका है कि जहाँ बहुत से लोग एकत्र होते हैं, वहाँ की वायु में उन सब मनुष्यों के स्वास से निकली हुई कार्बन-डाइ आक्साइड जमा हो जाती है, जिससे वहाँ पर उपस्थित लोगों को बेचैनी मालूम होने लगती है। जाड़ों के दिनों में भी कमरे को बन्द करके अँगीठी में कोयले या लकड़ी जलाकर बहुत से लोग एक साथ बैठकर बात-चीत करते हैं अथवा सोते हैं। इससे भी कार्बन-डाइ-आक्साइड उत्पन्न होकर कमरे में एकत्र हो जाती है। थोड़े स्थान में अधिक मनुष्यों के साथ रहने से स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है, जिसका मुख्य कारण शुद्ध वायु की कमी और अशुद्ध वायु की अधिकता होता है। साथ में यदि किसी मनुष्य को तपेदिक़, निमोनिया, इन्फ्लुयेंज़ा इत्यादि कोई रोग होते हैं तो वह दूसरों को भी हो जाते हैं। फोड़े, फुन्सी, खाज इत्यादि रोग भी

सदा एक मनुष्य से दूसरे को सम्पर्क के कारण होते हैं। साथ में रहनेवालो की अधिक संख्या के कारण स्थान स्वच्छ भी नहीं रह सकता। कुछ समय के पश्चात् मन्दाग्नि, भोजन का न पचना, भूक न लगना, कमज़ोरी, सिर-दर्द इत्यादि भी उत्पन्न हो जाते है।

सभा, थियेटर, वाइस्कोप इत्यादि जिन कमरों में होते हैं, उनमें अधिक समय तक रहने से स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। मेले-तमाशों मे भी इतनी धूल उडती है कि वह साँस के साथ फेफड़ों में जाकर रोग उत्पन्न कर सकते है।

कमरे में उपस्थित लोगों को यदि बेचैनी मालुम होने लगे तो कमरे के सब दरवाज़े तुरन्त खोल देने चाहिए यदि कोई बेहोश हो जाये तो उसको तुरन्त कमरे से बाहर शुद्ध हवा में ले जाना आवश्यक है।

प्रकाश का महत्त्व—हमारे जीवन के लिए प्रकाश बहुत आवश्यक है। हमको सूर्य से प्रकाश मिलता है। इस पर न केवल हमारा ही किन्तु वृक्षों तक का जीवन निर्भर करता है। जिन वृक्षों को पूर्ण प्रकाश नहीं मिलता वह नहीं बढते और पोले हो जाते हैं। उनमें उत्तम फल-फूल भी नहीं लगते।

४ **प्रकाश से लाभ**—सूर्य के प्रकाश से हमारा स्वास्थ्य उत्तम होता है और आयु बढ़ती है। सूय के प्रकाश में रोगों के कीड़े मारने की बहुत शक्ति है। जो कीड़े पानी में उबालने पर भी नष्ट नहीं होते वह सूर्य के प्रकाश से आधे घण्टे में मर जाते हैं। इस कारण ऐसे कमरे या मकान जिनके प्रत्येक भाग में सूर्य का प्रकाश आता है, रहने के लिए अत्युत्तम होते हैं। उनसे स्वास्थ्य बढ़ता है और शरीर निरोग होता है। इस कारण कमरे ऐसे होने चाहिए कि उनमें प्रकाश पूर्णतया आवे। खिडकियाँ, दरवाजे या रोशनदान इसी लिए बनाये जाते हैं। पहिनने

के वस्त्रों को भी धूप में समय समय पर सुखाना उचित है। यदि रोगी के वस्त्र उबाले न जा सकें तो धूप में अवश्य सुखाए जाने चाहिए।

यद्यपि सूर्य का प्रकाश या धूप स्वास्थ्य के लिए हितकर है, तो भी धूप में रखकर पुस्तक को पढ़ने से नेत्रों को हानि पहुँचती है। पुस्तक को पढ़ते समय धूप से हट जाना चाहिए। अथवा सूर्य की ओर पीठ कर लेनी चाहिए जिससे पुस्तक पर धूप न पड़े।

भिन्न-भिन्न प्रकाश के प्रकार—सूर्य के अस्त हो जाने के पश्चात् रात्रि को भी हमें काम करना पड़ता है किन्तु बिना किसी प्रकार के प्रकाश की सहायता के हमारे नेत्र नहीं देख सकते। इस कारण हमको लैम्प, मोमबत्ती, बिजली इत्यादि के प्रकाश से सहायता लेनी पड़ती है। इन सब प्रकाशों में हमको यह देखना आवश्यक है कि हमारे स्वास्थ्य और नेत्रों के लिए सबसे उत्तम प्रकाश कौन सा है।

) चिराग—मिट्टी या किसी धातु के दीयों में रेंडी या सरसों का तेल जलाने की रीति पहले बहुत प्रचलित थी और अब भी गाँवों में इसका प्रचार है। इसकी ज्वाला से धूँआ बहुत निकलता है और कार्बन-डाइ आक्साइड तथा अन्य दूषित गैसें निकलकर कमरे के वायु-मण्डल को अशुद्ध कर देती हैं। प्रकाश भी एक समान नहीं होता। हवा के झोंके से वह कम या अधिक होता रहता है। इस कारण दीपक का प्रकाश पढ़ने या मकान को प्रकाशित करने के लिए बिलकुल अनुपयुक्त है।

लैम्प या लालटेन—इन लैम्प या लालटेनों में, जिनका प्रयोग बहुत होता है, मिट्टी का तेल जलाया जाता है जिससे कार्बन-डाइ-आक्साइड उत्पन्न होकर वायु मण्डल को दूषित करता है। किन्तु तो भी

कार्बन-डाइ-आक्साइड की उत्पत्ति दीपक की अपेक्षा बहुत कम होती है। यदि लैम्प की बत्ती ठीक प्रकार से कटी हो और चिमनी भी लगी हो तो कार्बन-डाइ-आक्साइड की उत्पत्ति और भी कम हो जाती है। लैम्पों या बत्ती के बिगड़ जाने से उनसे जो धूँआ निकलता है वह कमरे की वायु को गन्दी कर देता है।(७)

पढ़ने के लिए अधिकतर फर्शी लैम्प का, जो मेज पर रखा जा सके, उपयोग किया जाता है। डीज़ या डिटमार्क के लेम्पो में चीनी का बना हुआ एक ग्लोब चढ़ा रहता है जिससे नेत्रों पर प्रकाश नहीं पड़ने पाता। इन लैम्पों की रोशनी भी पुस्तक पढ़ने के लिए बहुत काफी होती है। किन्तु उनको स्वच्छ रखना आवश्यक है। समय-समय पर बत्ती के जले हुए भाग को काट देना चाहिए। पढ़ते समय लैम्प की रोशनी इतनी रहे कि उससे आँखों पर कोई भार न पड़ने पावे। उसको ज्यादा तेज़ या मन्द रखने से नेत्रों को हानि पहुँचती है। चिमनी उतारकर लैम्प के प्रकाश में कभी न पढना चाहिए। जलते हुए लैम्प को बन्द कमरे में रखना भी उचित नहीं। उस समय कमरे की खिड़कियों को खोल देना चाहिए।

बिजली का प्रकाश—आजकल दिनों-दिन बिजली का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। इसमें सबसे उत्तम बात यह है कि वायु-मण्डल तनिक भी दूषित नहीं होता न वायु से आक्सीजन का नाश होता है और न कार्बन डाइ-आक्साइड की उत्पत्ति ही होती है। प्रकाश एक समान और स्थिर रहता है। उसमें घटा-बढ़ी नहीं होती। कमरे के बन्द कर लेने पर भी बिजली के प्रकाश से किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचती।(७)

कुछ लोग कहते हैं कि बिजली के प्रकाश से नेत्र ख़राब हो जाते हैं, क्योंकि बिजली के प्रकाश में थोड़े दिन तक पढ़ने के पश्चात्, लैम्प के

प्रकाश में पढ़ने का अभ्यास जाता रहता है। यह बात असत्य है। यह बिजली के प्रकाश में पढ़ने का परिणाम नहीं है, किन्तु आवश्यकता से अधिक तीव्र प्रकाशवाले लैम्प को प्रयोग करने का है। साधारणतया पढ़ने के लिए २५ बत्ती का बिजली का लैम्प पर्याप्त है।

पढ़ते समय जहाँ तक हो सके बिजली के लैम्प को भी इस प्रकार रखें कि उसका प्रकाश नेत्रों पर न पड़े। इस प्रकार के बने हुए लैम्प आते हैं जिनके ऊपर ग्लोब चढ़ा रहता है और जिनको मेज पर रखकर सहज में पढ़ सकते हैं।

प्रश्न

(१) वायु किन वस्तुओं से मिलकर बनती है?

(२) आक्सीजन, नाइट्रोजन और कार्बन-डाइ आक्साइड के गुण तथा अवगुण बताओ।

(३) हमारे जीवन के लिए शुद्ध वायु क्यों आवश्यक है और उससे हमको क्या लाभ पहुँचते हैं?

(४) कमरा तथा मुँह को बन्द करके सोने में क्या दोष हैं?

(५) सूर्य प्रकाश से हमको क्या लाभ है?

(६) अँधेरे स्थानों में रहने से स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है?

(७) चिराग़, लैम्प और मोमबत्ती में क्या दोष हैं? इनमें से तुम किसका उपयोग करोगे? कारण बताओ।

(८) लैम्प के विषय में किन विशेष बातों का ध्यान रखना चाहिए?

(९) पढ़ने के समय मिट्टी के तेल या बिजली के लैम्प को किस प्रकार रखना चाहिए?

अध्याय ३

स्वास्थ्य में जल की उपयोगिता

जल का महत्त्व—जल मनुष्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। स्वास्थ्य के लिए तो शुद्ध जल अनिवार्य है। बिना शुद्ध जल मिले मनुष्य का जीवन नीरोग रहना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। भारतवर्ष के अधिकाश बड़े शहर नदियों के किनारे बसे हुए हैं। इसका कारण भी यही है कि ऐसे स्थानों पर जल आसानी से मिलता है।

हमारे शरीर में आधे से अधिक भाग जल का है। शुद्ध जल शरीर की प्रायः सब क्रियाओं के लिए आवश्यक है। गन्दे जल से सैकड़ों रोग फैलते हैं। अनेक रोगों के कीटाणु जल द्वारा ही हमारे शरीर के अन्दर जाकर भाँति-भाँति की हानि पहुँचाते हैं। हैज़ा, पेचिश, नहरुवा, मोती-झरा और बहुत से अन्य रोग अशुद्ध जल के द्वारा होते हैं। इसलिए अच्छा जल सदा प्रयोग करना उचित है।

जल की विशेषताएँ—जल अपने असली रूप में एक तरल (बहने वाली) वस्तु है। यह ओषजन या आक्सीजन और अम्बुजन या हाइड्रोजन से मिलकर बनी है। जीवन के लिए जल अतीव आवश्यक और उपयोगी वस्तु है। जीवन की उत्पत्ति जल से हुई है। इसकी स्थिति भी जल पर ही है। यदि भूमि पर जल की तरी न रहे, तो न तो इसमें कोई बीज उगे और न कोई पेड़ हरा-भरा रह सके। यदि मनुष्य और पशु को जल न मिले, तो उसका जीना बन्द हो जाय।

जल का रूप—संसार के जिस खंड में पशु-वर्ग तथा वनस्पति-वर्ग हैं, वहाँ जल का होना आवश्यक है। जल के तीन स्वरूप हो सकते हैं। यह

शीत की प्रबलता से जमकर हिम हो जाता है, मध्यम दशा में तरल और द्रव रहता है और उष्ण होने पर भाप बनकर वायु में विलीन हो जाता है, परन्तु तीन अवस्थाओं में ओषजन और अम्बुजन आदि का सम्मिश्रण रहता है। जीवन के लिए जल का तरल होना आवश्यक है और यही इसका असली रूप है। तुमने भूगोल की पुस्तकों में पढ़ा होगा कि हिम प्रदेश में न तो हरियाली होती है, न वृक्ष होते हैं और न वहाँ जीवन के चिन्ह हैं। यही दशा उस समय थी, जब पृथ्वी आग का एक गोला थी और उस पर समुद्र, नदी, झीलें, जलाशय आदि न थे, परन्तु यदि सच पूछो तो जल उस समय भी था, यद्यपि भूमि पर रहता न था। यह सुनकर तुम्हें आश्चर्य होगा। परन्तु ध्यानपूर्वक देखने से समझ जाओगे कि उस समय यह जल वाष्प या गैस के रूप में पृथ्वी के चारों ओर लिपटा था। ज्यों ज्यों युग बीतते गये, पृथ्वी ने मध्यम दशा ग्रहण की, ताप घटा और जल ने पृथ्वी की जाति पर अपना डेरा डाला। जब जल ने पृथ्वी पर अपने निज तरल रूप में पदार्पण किया तो जीवन की उत्पत्ति हुई, प्राणी-वर्ग व वनस्पति-वर्ग पैदा होने लगे। निदान पता चला कि जीवन का रहस्य जल में है।

जल-प्राप्ति के साधन—जल दो प्रकार से आता है, या तो हिम के पिघलने से जो पहाड़ों पर जमी रहती है और पिघल-पिघलकर नदी-नालों के रूप में बहती है और या वर्षा से। वृष्टि-जल कुछ तो भूमि के ऊपर से बहता है और वह नदी की सृष्टि करता है और कुछ भूमि में सोख जाता है, उससे स्रोत और नाले प्रकट होते हैं। कूप खोदने पर जो भूमि से जल के स्रोत निकलते हैं, वह बरसाती जल है, जो भूमि के गर्भ तक पहुँच गया है। पृथ्वी में सूक्ष्म छिद्र हैं, जिनमें से जल उसके भीतर चला जाता है। वहाँ से ऐसे भूमि-स्तर पर पहुँचता है, जिसकी मिट्टी इसे और आगे नहीं बढ़ते देती। यहाँ पहुँचकर वह बटुरता है और नाला या स्रोत बन जाता है। इससे प्रकट है कि कुआँ जितना

अधिक गहरा होगा, उतना ही उसका जल साफ होगा। दूर तक भूमि के भीतर जाने से जल के बहुतेरे कीटाणु मार्ग में रह जाते हैं, परन्तु जिन कुओं का जल ऊपर होता है, उनका जल पीने योग्य नहीं होता; क्योंकि भूमि के ऊपर की गन्दगी इसमें मिल जाती है। इसी कारण कुएँ के पास मोरी, पत्तनाली, चहबच्चा आदि न बनाना चाहिए। स्मरण रखो कि बहुत से कीटाणु और कृमि जल में जीवित ही नहीं रहते, अण्डे बच्चे भी देते हैं। कई देशों में, जहाँ जल का अभाव है, घर की छतों पर जल संचय करने का रिवाज है और उसी को व्यवहार में लाते हैं।

जल के मिश्रण अंश और उनकी क्रिया—जल में ओषजन और अम्बुजन के सिवा कुछ लवण और क्षार के अंश भी होते है और उनकी अधिकता तथा न्यूनता होने पर जल को हलका अथवा भारी कहा जाता है। जल उबाल देने से उसकी जाँच हो जाती है। उबालने से यह नमक पतीली की तह में बैठ जाता है। खारे जल में खनिज नमकों का अंश अधिक होता है, मीठे जल में कम, जिस नाले के जल में चूने आदि के अंश घुले होते हैं उसका जल पीने से पथरी, घेघा, पीलपाँव इत्यादि रोग हो जाते हैं। खारे जल के साबुन में सिर धोने पर झाग नहीं उठती और बाल चिमट जाते हैं। इसके विरुद्ध यदि मीठे जल से सिर धोया जाय तो केश कोमल और साफ हो जाते हैं और झाग खूब उठती है।

२१२ मान के तापमापक यन्त्र अर्थात् थर्मामीटर से यदि देखा जाय तो ज्ञात होगा कि ३२ तापमान पर जल जम जाता है और २१२ तापमान पर खौलने लगता है।

विमल जल के सद्गुण—शुद्ध और स्वच्छ जल में निम्नलिखित बातें होनी चाहिए—

(१) किसी प्रकार की गन्ध न हो।

(२) वह रंगरहित हो। कहीं कहीं जल बहुत गहरा होता है। वहाँ उसका रंग नीला दृष्टि पड़ता है, परन्तु वह उसका वास्तविक रंग नहीं है।

(३) वह सुस्वादु हो, कड़ुवा अथवा नमकीन न हो।

(४) वह विमल, पारदर्शक तथा चमकीला हो।

(५) उसके तल पर चिकनाई या परमाणु तैरते न दृष्टि पड़ें, और यदि उसको किसी काँच के गिलास में भरकर रख दिया जाय, तो जब तक चाहे रखा रहे कोई वस्तु उस पर जमने न पाये।

(६) वह भारी न हो, ताकि आहार को सुगमता से पचा सके और कोई रोग जैसे घेघा या पथरी इत्यादि न उपजे। भारी जल वह है, जिसमें चूना मैगनेशियम इत्यादि का अंश घुला होता है।

शरीर में जल के काम—अनुभव से ज्ञात होगा कि हमारे शरीर में जल की मात्रा ७० प्रतिशत् होती है। ३० प्रतिशत् की मात्रा में अन्य वस्तुएँ। रक्त में उसकी मात्रा ८० प्रतिशत् होती है।

(१) जल पक्वाहार को पचा करके उसे शरीर में लय हो जाने के योग्य बनाता है।

(२) पचे हुए आहार को शरीर में लय होने में सहायता मिलती है।

(३) यह रक्त को पतला करता है।

(४) शरीर के विषमय पदार्थों को श्वास, मल, मूत्र और पसीने के रूप में निकाल देता है। तुम देखोगे कि जो साँस हमारे फेफड़ों में प्रवेश करती है, उसमें इतना जल नहीं होता, जितना भीतर से बाहर आनेवाले श्वास में होता है। उसके परीक्षण के लिए शीशे पर मुँह की भाप डालो तो शीशे पर जल की महीन-महीन बूँदें जम जायँगी और शीशा धुँधला हो जायगा।

(५) यह प्रायः नाडियों और पुट्ठों को कोमल और लचकीला बनाता है।

स्वास्थ्य-नाशक जल—जल यद्यपि प्राण के लिए बड़ी ही आवश्यक वस्तु है, परन्तु लेशमात्र असावधानी से यह भीषण स्वास्थ्य-नाशक हो जाता है, कुछेक मुख्य-मुख्य बातें जो कि जल को आरोग्य-नाशक बना देती हैं, नीचे लिखी जाती हैं :—

(१) मलिन जल। (२) दुर्गन्धित जल। (३) गड्ढों और पोखरों का जल। (४) ऐसे तालावों का जल, जिसमें लोग नहाते-धोते हों या पशु पानी पीते हों, या सन्निकट ही कूड़ा कतवार की राशि हों। (५) कच्चे कुओं का जल जो बहुत समीप होते हैं। (६) बरसाती जल, जो भूमि पर एकत्र हो जाता है। (७) बस्ती के पास का नदी-नालों का जल। (८) ऐसे कुओं का जल जिनके निकट लोग नहाते-धोते हों अथवा कूड़ा-कतवार पड़ा हो अथवा मोहरी या नाबदान हो। (९) जिस जल पर चिकनाई तैरती हो। (१०) नमकीन या खारी जल। (११) बर्फ का जल। (१२) मैले और खुले हुए घड़ों, बरतनों और गन्दी मश्कों का जल।

जल शीतल करने का उपाय—ग्रीष्म-ऋतु में ठंडे जल बहुत अच्छा लगता है। उसके लिए लोग कृत्रिम हिम का व्यवहार करते हैं, परन्तु बर्फ से प्यास नहीं बुझती और स्वस्थ्य पर कुप्रभाव पड़ता है। इसलिए जल को यदि अन्य उपायों से शीतल कर लिया जाये या झाल लिया जाये तो यह दोनों दूषण दूर हो जायें :—

(१) यदि जल को एक कोरे घड़े में भर दिया जाये और उस पर तर किया हुआ फलालैन या तीन चार पर्त्त किया हुआ कोई दूसरा कपड़ा लपेटकर घडे को किसी ऊँचे स्थान पर लटका दिया जाये तो थोड़ी देर में जल ठंडा हो जायेगा।

(२) एक नाँद में जल भरो फिर उसमें कलमीदार शोरा, नमक तथा नौसादर जल के तोल के $\frac{1}{16}$ अनुपात से छोड़ दो।

जल प्राप्त करने के विविध उपाय—पीने और नहाने-धोने के लिए बहती नदी का जल, नाले का जल पक्के कुओं का मीठा-जल, नल व बन्द नल के कुओं का जल साधारणतया अच्छा होता है। नदी, नाले, और मीठे कुओं का जल सबसे उत्तम होता है। बरसात में नदियों के जल मिट्टी, कूड़ा करकट बह आने से गँदला हो जाता है और पीने के योग्य नहीं रहता। हिम, ओले और वृष्टि का जल आहार भी पचाता है। बहुधा औषधियों में इसका प्रयोग किया जाता है।

भारतवर्ष में जल मिलने के अनेक तरीके हैं। कहीं चश्मे, तालाब या नदियाँ हैं तो कहीं कुओं से जल निकाला जाता है। कहीं वर्षा का जल बड़े-बड़े हौजों में इकट्ठा कर लेते हैं और कहीं ज़मीन में नल लगे हैं। समुद्र-यात्रियों को कभी-कभी समुद्र-जल से मीठा जल निकालना पड़ता है, परन्तु ऐसा तभी होता है, जब जहाज का पीने का जल समाप्त हो जाता है। समुद्र का जल पीने के योग्य नहीं होता। हमें जो कुछ भी जल मिलता है, वास्तव में वर्षा-जल ही है। समुद्र और तालाबों इत्यादि का जल नित्य भाप बनकर ऊपर को उड़ता है। उससे बादल बनते और जल बरसाते हैं। यही जल इकट्ठा होकर नदी, नाले और तालाब बनाता है। इसके ही सोख जाने से पृथ्वी के अन्दर अनेक सोते बनते हैं। सोतों का जल कुओं और चश्मों के रूप में मिलता है। वर्षा-जल का कुछ भाग पौधों के उपजाने, धातु पदार्थों के बनाने और प्राणियों के सड़ने में भी ख़र्च होता है।

जल की गन्दगी के कारण—वर्षा का जल बहुत अच्छा होता है। परन्तु हवा में से उसमें गन्दगी आ जाती है। साधारण तौर पर हवा में मिट्टी, धूल, धुआँ बहुत तरह के कीटाणु आदि होते हैं। पहले कुछ मिनटों तक जो बारिश होती है, उसका जल इन चीजों के मिल जाने

से अशुद्ध हो जाता है। कुछ समय बाद, बारिश से वायु-मण्डल धुल-सा जाता है और इसीलिए जो बारिश बाद में होती है, उसका जल बहुत कुछ साफ़ होता है। वर्षा-जल के गिरने पर उसमें अनेक प्रकार की मैल पृथ्वी में से भी आ मिलती है। इसलिए पृथ्वी पर गिरा हुआ वर्षा जल बहुत अशुद्ध हो जाता है। भारतवर्ष में अधिकांश मनुष्य साफ़ और अच्छे जल की महिमा नहीं जानते। इसीलिए वे अनेक भाँति से जल को गन्दा कर देते हैं और फल-स्वरूप अनेक व्याधि भोगते हैं। जल गन्दा होने की मुख्य रीतियाँ नीचे लिखी जाती हैं :—

(१) कुओं का जल—यदि कुआँ बहुत कम गहरा हो, तो उसमें आस-पास की मिट्टी द्वारा सोखा हुआ इधर-उधर का गन्दा जल पहुँच सकता है। अनेक कुओं का ऊपरी हिस्सा चारों ओर की जमीन से ऊँचा नहीं होता—कहीं-कहीं तो नीचा होता है। इसलिए बाहर का गन्दा जल उसमें चला जाता है। कुएँ के पास गन्दी नाली, पाख़ाने, चौबच्चे, अस्तबल या जानवर बाँधने के स्थान होने बहुत बुरे हैं। इनसे जल गन्दा होने की सम्भावना रहती है। खुले रहने के कारण, बहुत से कुओं में मिट्टी, धूल, पत्ते, घास, फूस आदि आ गिरते हैं और जल को मैला कर देते हैं। कहीं-कहीं कुओं के ऊपर या अन्दर चिड़ियाँ घोंसले बना लेती हैं। उनकी बीट, पर, पंख आदि कुएँ में गिरते रहते हैं। अनेक लोग कुओं के ऊपर बैठकर नहाते और गन्दे कपड़े धोते हैं। गन्दी रस्सियाँ और गन्दे डोल कुएँ के अन्दर लटकाना भी साधारण बात है।

यह बात होते हुए भी, बहुत से कुएँ बरसों तक साफ़ नहीं किये जाते। उनके अन्दर मिट्टी, राख, रस्सियों के टुकड़े और अनेक प्रकार के मैल इकट्ठे हो जाते हैं। इस कारण स्रोत से साफ़ जल का आना बन्द हो जाता है और पहला जल सड़ने लगता है।

(२) तालाबों का जल—साधारण तौर पर कुओं के जल से भी

अधिक गन्दा होता है। गाँवों में बहुत से लोग तालाब के किनारे पाखाने जाते हैं और उसमें आबदस्त लेते हैं। वर्षा होने पर चारों ओर से पाखाना तालाब में आ इकट्ठा होता है। अनेक जगह बस्ती की नालियाँ तालाबों में आकर गिरती हैं। धोबी उनमें गन्दे कपड़े कूटते हैं और सब तरह लोग—चाहे वे रोगी हों या नीरोगी—उनके अन्दर घुसकर नहाते और कुल्ला आदि करते हैं।

(३) नदियों का जल—तालाबों के जल की तरह ही गन्दा किया जाता है। विशेषता यह है कि नदियों में मरे हुए आदमियों के शरीर या उनकी राख और जानवरों की लाशें भी डाल दी जाती हैं। अनेक जगह कारखानों का गन्दा जल और कस्बों की नालियाँ नदियों से आ मिलती हैं। मल्लाह भी जल को गन्दा करते हैं। अनेक गाँवों में मैला इकट्ठा करके नदियों में उलटने की प्रथा है।

जल का प्रयोग—हम अपनी दैनिक आवश्यकताओं के लिए जल का साधारण रूप में तीन प्रकार से प्रयोग करते हैं—पीने तथा भोजन बनाने के लिए, स्नान के लिए और वस्त्र या बर्तन आदि धोने के लिए। पानी के प्रयोग में सबसे बड़ी बात जो ध्यान रखने योग्य है, वह है उसकी स्वच्छता। गन्दा जल सब दशा में गन्दगी फैलाता है।

खान में पीने का विशेष ध्यान रखना चाहिए। जल खुले बर्तनों में न रक्खा जाये। धूल कतवार पड़ने से जल में मैल के अतिरिक्त कीटाणु भी पहुँच जाते हैं और उसे स्वास्थ्य-नाशक बना देते हैं। दस्त आने लगते हैं, संग्रहणी, ज्वर, हैज़ा इत्यादि के भयकर रोग हो जाते हैं। पेट में केंचुए पड़ जाते हैं। इसलिए जल की गगरियाँ और सुराहियाँ ढक्कनों से बन्द रखनी चाहिए। इन बर्तनों का पानी फेंक कर उन्हें प्रतिदिन भरना चाहिए। घड़ों को तिपाइयों या ——— पर रखना चाहिए।

पीने और नहाने-धोने का जल—यह कहने की ज़रूरत नहीं कि बिना जल के मनुष्य का जीना नहीं हो सकता। जल हमारे बहुत काम आता है। यही कारण है कि जहाँ जल सरलता से मिलता है वहाँ आदमियों की अच्छी आबादी होती है। रेगिस्तानों में नहीं, क्योंकि वहाँ जल नहीं मिलता। यहाँ हम तुमको केवल यह बताएँगे कि नहाने धोने तथा पीने का जल कैसा होना चाहिए और वह कहाँ से लेना चाहिए।

यह तो तुम जानते ही हो कि हमारे काम में आनेवाला जल हमको नदियों, तालाबों, पोखरों, कुओं और पहाड़ी प्रदेशों में, झरनों से प्राप्त होता है। इन सब जगहों में बरसात का ही जल पहुँचता है। परन्तु इन सबका जल एक सा नहीं होता; क्योंकि बरसात का जल तरह-तरह की मिट्टी में बहकर जाता है जिससे उसमें कई प्रकार के पदार्थ घुल जाते हैं, कहीं अच्छा जल मिलता है तो कहीं गन्दा और बदबूदार। हमको अपने स्वास्थ्य के लिए अच्छा और साफ़ जल मिलना चाहिए।

साफ़ जल की पहचान यह है कि उसमें न तो किसी तरह की बू होती है और न उसका कोई रंग होता है। मामूली मीठेपन को छोड़कर उसमें कोई स्वाद भी नहीं होता। किसी बरतन में रख देने से या उसमें फिटकिरी डाल देने से जल में नीचे अगर कुछ बैठ जाय तो समझ लो कि जल साफ़ नहीं है। मामूली तरीक़े से यही पहचान काफ़ी है। खुर्दबीन से तथा रसायन द्वारा भी पानी की जाँच की जाती है।

कुएँ का जल—अच्छे कुएँ का जल मीठा तथा शीतल होता है। पीने का जल हमेशा गहरे कुएँ से लेना चाहिए, उथले कुएँ से नहीं। कुएँ के आस-पास ख़ूब सफ़ाई रखनी चाहिए। अगर पास में कोई गढ़ा या नाला हो तो उसे साफ़ करके पटवा देना चाहिए। नहीं तो कुआँ

अधिक गन्दा होता है। गाँवों में बहुत से लोग तालाब के किनारे पाखाने जाते हैं और उसमें आबदस्त लेते हैं। वर्षा होने पर चारों ओर से पाखाना तालाब में आ इकट्ठा होता है। अनेक जगह बस्ती की नालियाँ तालाबों में आकर गिरती हैं। धोबी उनमें गन्दे कपड़े कूटते हैं और सब तरह लोग—चाहे वे रोगी हों या नीरोगी—उनके अन्दर घुसकर नहाते और कुल्ला आदि करते हैं।

(३) नदियों का जल—तालाबों के जल की तरह ही गन्दा किया जाता है। विशेषता यह है कि नदियों में मरे हुए आदमियों के शरीर या उनकी राख और जानवरों की लाशें भी डाल दी जाती हैं। अनेक जगह कारखानों का गन्दा जल और कस्बों की नालियाँ नदियों में आ मिलती हैं। मल्लाह भी जल को गन्दा करते हैं। अनेक गाँवों में मैला इकट्ठा करके नदियों में उलटने की प्रथा है।

जल का प्रयोग—हम अपनी दैनिक आवश्यकताओं के लिए जल का साधारण रूप में तीन प्रकार से प्रयोग करते हैं—पीने तथा भोजन बनाने के लिए, स्नान के लिए और वस्त्र या बर्तन आदि धोने के लिए। पानी के प्रयोग में सबसे बड़ी बात जो ध्यान रखने योग्य है, वह है उसकी स्वच्छता। गन्दा जल सब दशा में गन्दगी फैलाता है।

खान में पीने का विशेष ध्यान रखना चाहिए। जल खुले बर्तनों में न रक्खा जावे। धूल कतवार पड़ने से जल में मैल के अतिरिक्त कीटाणु भी पहुँच जाते हैं और उसे स्वास्थ्य-नाशक बना देते हैं। दस्त आने लगते हैं, संग्रहणी, ज्वर, हैजा इत्यादि के भयंकर रोग हो जाते हैं। पेट में केंचुए पड़ जाते हैं। इसलिए जल की गगरियाँ और सुराहियाँ ढक्कनों से बन्द रखनी चाहिए। इन बर्तनों का पानी फेंक कर उन्हें प्रतिदिन भरना चाहिए। घड़ों को तिपाइयों या घड़ौंची पर रखना चाहिए।

रहता है। बरसात में नदियों में बहुत सा कूड़ा बहकर आता है। उस समय इनका जल पीने लायक़ नहीं होता। लेकिन वह पीना ही पड़े तो उसे साफ़ करके पीना चाहिए। साफ़ करने का ढंग आगे बताया गया है।

वर्षा का जल—यदि वर्षा का जल खुली हुई साफ़ छतों पर बर्तनों में इक्ट्ठा कर लिया जाय तो पीने के काम में लाया जा सकता है। पहली बारिश का जल इक्ट्ठा नहीं करना चाहिए। इस जल से छतों को या बर्तनो को ख़ूब साफ़ कर लेना चाहिए। इसके बाद जब वर्षा हो तो उसका जल किसी साफ़ बर्तन में इक्ट्ठा करना चाहिए। मेह का जल ख़ूब साफ़ और हलका होता है।

पोखरों, तालाबों और झीलों का जल—पोखरों का जल पीने के काम में हरगिज न लाना चाहिए। गाँवों में अधिकतर इन पोखरों के अन्दर भैंसें और सूअर दिन-रात पड़े रहते हैं। इस जल में नहाने से बीमारी फैलने तथा खाज-फुन्सी इत्यादि रोग हो जाने का डर रहता है। यदि पक्का तालाब हो और उसका जल दो-तीन दिन बाद निकाल दिया जाता हो तो उसे साफ़ करके पीने में कोई डर नहीं। झीलों का जल पीने के लिए बहुत अच्छा होता है। पहाड़ी सोतों तथा चश्मों का जल भी बहुत मीठा और साफ़ होता है। कहीं-कहीं कुछ चश्मों के जल में एक विशेष प्रकार के रोग दूर करने तथा भोजन को पचाने का गुण होता है। ऐसे चश्मों में गन्धक तथा और कई तरह के नमकीन पदार्थ जो कि उन रोगों के लिए विशेष लाभदायक होते हैं, बहुतायत से रहते हैं। इन सोतों के जल के सेवन से मनुष्य कभी-कभी बडे रोगों से छुटकारा पा जाते हैं।

बहुत से तालाब अकसर किसी महात्मा की यादगार में बनाये जाते हैं और वहाँ ख़ास दिनों पर बड़ा मेला लगता है। उनका जल

पीकर लोग अपने को धन्य मानते हैं। बहुधा हैजा आदि रोग ऐसी ही जगहों से फैलते हैं। हमें चाहिए कि हम इन अन्धविश्वास की बातों से अपने प्राण नाहक न गँवायें।

नल का जल—बड़े-बड़े शहरों में म्युनिसिपैलिटी द्वारा जल को साफ़ कर नलों द्वारा घरों में जल पहुँचाने का प्रबन्ध रहता है। बड़े बड़े कुओं अथवा नदी से पम्प द्वारा पानी खींचकर वह बड़े-बड़े तालाबों में इकट्ठा किया जाता है। इन तालाबों के नीचे कंकड, चूना और रेत रक्खा रहता है। इनमें यह पानी साफ़ किया जाता है। यहाँ से छनकर साफ़ हो जाने पर यह जल दूसरे साफ़ बन्द तालाबों में इकट्ठा किया जाता है और वहाँ से नलों द्वारा यह मकानों में पहुँचाया जाता है। इस जल की हमेशा जाँच होती रहती है और केवल साफ़ निर्दोष जल ही नलों में दिया जाता है। यह जल मीठा होता है और किसी भी प्रकार की हानिकारक चीजें या कीड़े इसमें नहीं रहते। इसलिए जिस स्थान में नल लगे हों वहाँ केवल नल का ही जल पीना चाहिए।

जल साफ़ करने की विधि—ऊपर हम कह आये हैं कि हमको जल साफ़ करके पीना चाहिए। इससे यह लाभ है कि हम बीमारियों से बच सकते हैं। जल को साफ़ करने का सबसे अच्छा ढंग उबालना है। उबालने में गर्मी के कारण रोग के सब कीड़े मर जाते हैं और पानी दोष-रहित हो जाता है। उबाला हुआ जल थोड़ा बेस्वाद हो जाता है। लेकिन इसको यदि हम सुराही अथवा घड़े में भरकर ठण्डा कर लें तो यह पीने में स्वादिष्ट हो जायगा।

जल को साफ़ करने के लिए परमैंगनेट आफ़ पोटाश भी काम में लाते हैं। यह एक लाल दवा होती है जो कि हैज़े के दिनों में कुओं में डाली जाती है। इससे जल का रंग लाल हो जाता है और कई रोगों के कीड़े जो जल में रहते हैं, मर जाते हैं और जल निर्दोष हो जाता है।

यदि जल गॅदला हो तो यह ऊपर बताये हुए ढगों से साफ़ नहीं हो सकता। उसको साफ़ करने के लिए थोडी-सी फिटकरी डाल देनी चाहिए। इससे जल का सब मैल छूटकर नीचे बैठ जायगा और ऊपर साफ़ जल रह जायगा। इसी तरह निर्मली तथा तूतिया से भी जल साफ़ किया जा सकता है।

प्राय: लोग पानी को घड़ों में कोयले, रेत और कंकड़ रखकर साफ़ करते है। एक टिकटी पर तीन या चार घड़े रख दिये जाते हैं। ऊपर के घड़ों की पेंदी में एक छेद करके उसमें साफ़ रुई या कपडा लगा देते हैं। पहले घड़े में जल रक्खा जाता है, दूसरे में कोयला, तीसरे में कङ्कड और बालू। पहले घड़े से जल दूसरे में जाता है। यहाँ कोयला उसको साफ़ करता हे। फिर यह ककड से साफ़ होता हुआ बालू में होकर आता है और बिलकुल साफ़ होकर नीचेवाले घड़े में इकट्ठा हो जाता है। यह जल पीने के काम में लाया जाता है। लेकिन इस ढग से जल केवल साफ़ हो जाता है। उसमें घुले हुए पदार्थ तथा रोग के कीड़े अब भी मौजूद रहते हैं। वे इस ढङ्ग से अलग नहीं किये जा सकते। इसलिए पानी को उबालकर पीना ही उत्तम उपाय है।

आजकल हमारे देश में बड़े-बड़े शहरों मे बर्फ़ के कारख़ाने खुल गये हैं और गर्मियों में बर्फ़ डालकर जल पीने का रिवाज सा हो गया है। कभी-कमी बर्फ़ का ठण्डा जल पी लेना अधिक हानि-कारक नहीं होता, परन्तु रोज़ाना इसका इस्तेमाल पाचनशक्ति को क्षीण करता है। इसलिए बर्फ़ के जल की आदत न डालनी चाहिए। बदहजमी में गुनगुना जल सदैव लाभ-प्रद है। यद्यपि यह जल स्वादिष्ट नहीं होता है।

प्रश्न

(१) साफ़ जल की पहचान बताओ।

(२) जल साफ़ करने का तरीक़ा बताओ।

(३) जल से बीमारी के कीड़ों को किस तरह निकाल सकते हैं?

(४) कुएँ को किस प्रकार साफ़ रख सकते हैं?

(५) नल का जल औरों से क्यों अधिक अच्छा होता है?

(६) पोखरे के जल से क्या हानि होती है? इससे किस प्रकार बचना चाहिए?

(७) नहाने-धोने का जल कैसा होना चाहिए?

(८) गन्दे जल से फैलनेवाले कुछ रोग बताओ।

(९) कुओं का जल किस प्रकार गन्दा हो जाता है?

(१०) तुम्हें जल कहाँ से मिलता है? क्या वह जल शुद्ध है?

(११) जल छानने की कोई विधि बताओ।

अध्याय ४

स्वास्थ्य में भोजन की उपयोगिता

हमारे शरीर का यन्त्र—तुमने स्टेशन पर देखा होगा कि रेल के छोटे इंजन माल से लदे हुए सैकड़ों डब्बों को जिनका बोझ लाखों मन होता है, सुगमता और तीव्र वेग से सहस्त्रों मील धडल्ले से खींच ले जाते है। यदि ध्यानपूर्वक देखो तो तुम्हारी समझ में आ जायेगा कि यह राक्षसी शक्ति केवल उस इजन की नहीं है, जो लोहे की चद्दरों से बनाया गया है, वरन् यह विस्मयकारी आसुरी बल कोयला, आग और जल का है जो इस इजन में भरा रहता है। यदि वह वस्तुएँ निकाल दी जायें तो इजन एक निष्क्रिय पदार्थ रह जायगा। ठीक यही दशा शरीर के यन्त्रों की है। इसके लिए भी कोयला, आग और जल की आवश्यकता है। यदि यह वस्तुएँ हमारे शरीर को न मिलें तो शरीर का यन्त्र रुक जायेगा।

भोज क्या है?—तुमको इस बात का विश्वास न होगा कि कोयला हमारे शरीर में जलता है, किन्तु विचार करने से ज्ञात होगा कि हमारे शरीर की मास-पेशियाँ भट्टी सरीखी हैं, जिनमें प्रकृति की प्रेरणा से शरीर की उष्णता स्थापित रखने के लिए ताप का प्रबन्ध है। ताप अग्नि से उत्पन्न होता है। अग्नि के लिए ईंधन की आवश्यकता है। ईंधन उत्तमतर प्रकार का काष्ठ और कोयला है, परन्तु यह शरीर की उष्णता में जलने के योग्य नहीं है, अतएव, प्रकृति ने तीन प्रकार के ईंधन इस अग्नि में जलने के लिए उत्पन्न किये हैं। एक तो कोयला का विशेष मिश्रण जो शकर और निशास्ता कहलाता है और वनस्पतियों के

की पूर्ति होती रहती है। यदि ऐसा न हो तो मनुष्य कुछ ही दिवस में जर्जर और दुर्बल हो जाये और हाथ पाँव निरुत्तर हो जायें। शरीर-पोषण के अतिरिक्त आहार से दूसरा लाभ यह है कि वह शरीर की उष्णता स्थापित रखता है। भोजन के मुख्य कार्य ये हैं :—

(१) शरीर के कामो के लिए शक्ति उत्पन्न करना—हमारा शरीर लगातार कुछ न कुछ करता रहता है। जब हम सो जाते हैं, तब भी हमारे कुछ अङ्ग, जैसे हृदय, फेफड़े, नाड़ी-मण्डल आदि अपने-अपने काम में लगे ही रहते हैं। शरीर के अन्दर जो अनेक क्रियाएँ होती हैं, प्राय. उनका हमें पता नहीं चलता। परन्तु यदि ये सब क्रियाएँ थोडी सी देर के लिए भी बिलकुल बन्द हो जायँ, तो हमारे जीवन का अन्त हो जाय। इन आन्तरिक कार्यों के अतिरिक्त, हजारों काम—जैसे खड़े रहना, चलना, दौडना, बोलना, हँसना आदि हम जागते हुए करते रहते है। काम चाहे आन्तरिक हो चाहे बाह्य, बिना शक्ति के नहीं हो सकता। कामों के लिए शरीर को शक्ति खाने से मिलती है।

(२) शरीर को गर्म रखना—पत्थर, मिट्टी आदि बेजान चीज़ें बाहर की ताप सम्बन्धी अवस्थाओं के अनुसार कभी तो खूब गर्म हो जाती हैं और कभी बिलकुल ठण्डी, परन्तु मनुष्य का शरीर—गर्मी हो या जाडा—लगभग एक-सा ही गर्म रहता है। गर्मी के नापने के लिए काँच का एक आला (यन्त्र) आता है, जिसे थर्मामीटर कहते हैं। उसमें "डिग्रियों" के निशान बने रहते हैं और उसके अन्दर पारा भरा रहता है। इस यन्त्र के द्वारा डाक्टर शरीर की गर्मी जाँचते हैं। जब थर्मामीटर को किसी मनुष्य की बग़ल में लगाते हैं, तब पारा गर्म होकर फैलता और ऊपर को उठता है। जिस डिग्री के निशान तक पारा पहुँचता है, उसी डिग्री की गर्मी मनुष्य में समझी जाती है। स्वस्थ मनुष्य की गर्मी साधारण तौर पर ९६ और ९८½ डिग्री के बीच की होती है। बुखार की दशा में शरीर की गर्मी बढ़ जाती है। रोगी को

१०७ डिग्री या इससे कुछ अधिक गर्मी हो सकती है जो अत्यन्त भय की बात है। आम तौर पर १०३ से अधिक डिग्री के बुख़ार को चिन्ताजनक समझते हैं। शरीर की गर्मी भोजन के द्वारा ही उत्पन्न होती है।

(३) शरीर के नष्ट-भ्रष्ट भागों को फिर ठीक करना—कामों के कारण शरीर का कुछ अंश टूट फूटकर कम हो जाता है। जिस प्रकार मशीन चलते रहने से घिसती है, उसी प्रकार शरीर के अङ्गों में भी नित्य-प्रति कमी होती रहती है। मनुष्य को यदि कुछ समय तक खाना न मिले तो उसका बोझ घट जाता है। बोझ घटने का कारण यही है कि शरीर के अङ्ग काम करने से—यों कहिये कि—घिसते रहते हैं। भोजन का एक कार्य यह भी है कि वह इस कमी को पूरा करे।

(४) शरीर को बढ़ाना—भोजन के द्वारा ही शरीर की वृद्धि होती है। यदि काफ़ी ठीक खाना न मिलेगा तो शरीर की बढ़ती असम्भव होगी। इस कारण बच्चों के लिए और उन लोगों के लिए, जिन्हें अपने शरीर की वृद्धि आवश्यक है, भोजन का विशेष ध्यान रखना उचित है।

भोजन के अंश—हमारे भोजन में प्राय ६ प्रकार के अंश होते हैं। जीवन और स्वास्थ्य के लिए इन सब अंशों का भोजन में होना आवश्यक है। इस कारण हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि ये सब अंश हमारे खाने में काफी मात्रा में मौजूद रहें।

(१) प्रोटीन पदार्थ—यह अंश विशेषकर अंडे की सफ़ेदी, मांस, मछली, दूध, दही, मटर, लोबिये और बहुत सी दालों में खूब होता है। प्रोटीन-अंश मांस बनानेवाला होता है। यह शरीर को गर्म रखने में भी सहायता करता है। उन लोगों को, जो अंडे मांस आदि से परहेज करते हैं, दूध, दही, मट्ठा आदि खूब खाना चाहिए। ऐसा

न करने से उनके भोजन में मांस बनानेवाले पदार्थों की कमी रहती है और उनके शरीर को हानि पहुँचती है।

(२) **फ़ैट्स पदार्थ** (अर्थात् विविध प्रकार की चिकनाइयाँ)—ये अंश विशेषकर घी, मक्खन, चर्बी और तरह तरह के तेलों में होते हैं। इनका काम शरीर में शक्ति और गर्मी उत्पन्न करना है। साधारण नियम यह है कि शारीरिक परिश्रम करनेवाले लोगों को ऐसा भोजन करना चाहिए, जिसमें "फ़ैट्स पदार्थ" अधिक हों।

(३) **कार्बोहाइड्रेट पदार्थ**—यह अंश विशेषकर गेहूँ, चावल, मक्का, जई और शक्कर आदि में होते हैं। हिन्दुओं का भोजन बहुधा इन्हीं पदार्थों का होता है। भोजन के इस अंश का काम "फ़ैट्स" के काम जैसा ही है, अर्थात् यह शक्ति और गर्मी उत्पन्न करता है।

(४) **"साल्ट्स"**—यह पदार्थ हरी तरकारियों, फलों, गेहूँ आदि में होते हैं। यद्यपि शरीर को इनकी आवश्यकता बहुत कम मात्रा में होती है, परन्तु यदि इनका मिलना बिलकुल बन्द हो जाय तो अनेक रोग उत्पन्न हो जायँ। बिना "साल्ट्स" की ठीक मात्रा मिले शरीर अपना काम नहीं कर सकता, इस कारण प्रतिदिन हमें कुछ न कुछ फल, तरकारी आदि अवश्य खानी चाहिए। उदाहरण के तौर पर यह कहना उचित है कि एक साल्ट हड्डी बनाने के काम आता है और एक साल्ट खून का प्रधान भाग है। इनके अतिरिक्त शरीर में अनेक अन्य साल्ट मिलते हैं।

(५) **जल**—तुम्हारे शरीर में जितना बोझ है, उसका दो तिहाई हिस्सा जल का बना है। बिना जल के जीवन असम्भव है। जल शरीर में बहुत से काम करता है। इसके द्वारा ही खाना पचता, घुलता और विविध भागों में पहुँचता है। जल से ही रक्त का पतलापन बना रहता है और रक्त आसानी से बारीक से बारीक नलिकाओं में चल फिर सकता है। जल ही सब अंगों के मल पदार्थों को घुलाकर निकाल देता

है। बिना जल के शरीर की कोई क्रिया ठीक तौर पर नहीं हो सकती।

एक साधारण मनुष्य के शरीर से प्रतिदिन ५ पाव से ७½ पाव तक जल का अंश पसीने, पेशाब, साँस आदि रूपों में निकल जाता है। इसमें से प्राय: एक तिहाई भाग भोजन के द्वारा प्राप्त होता है। इसलिए कम से कम ३ पाव जल तो प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन पीना अत्यन्त आवश्यक है। खूब जल पीने से शरीर के आन्तरिक भाग एक प्रकार से धुल से जाते हैं। स्वास्थ्य के लिए काफ़ी जल पीने की आदत डालना जरूरी है।

(६) विटैमिन पदार्थ—यदि मनुष्य को ऊपर के केवल पाँच अंशों पर ही रक्खा जाये और इनके अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ न मिलने दिया जाय, तो उसका स्वस्थ रहना असम्भव हो जाय। कारण, कुछ अज्ञात पदार्थ, जिन्हें "विटमिन्स" कहते हैं ऐसे हैं कि जीवन के लिए उनकी विशेष आवश्यकता रहती है। ये पदार्थ काडलिवर आइल्, मक्खन, अंडे, हरे पत्तों, फल, तरकारियों आदि में होते हैं। ये अधिक गर्म करने से नष्ट हो जाते हैं। इस कारण प्रतिदिन ऊपर लिखी कुछ चीज़ें बिना पकाये जरूर खाना चाहिए।

शरीर और आहार के रासायनिक अंशों में सादृश्यता—नियम है कि प्रत्येक वस्तु का जोड़ उसकी अनुरूपता के विचार से उसमें लगा दिया जाता है। यह नहीं होता कि लोहे के टुकड़ों को जोड़ने के लिए चूने का पलस्तर लगा दिया जाय या कपड़ा सीने में राँगे का टाँका दिया जाये। तुम जानते हो कि उपयोग के कारण शरीरांगों में टूट-फूट छीज और कमी निरन्तर हुआ करती है, अतएव, आवश्यकता इस बात की है कि हमारे आहारों में भी वही अंश उपस्थित हों, जो हमारे शरीर में पाये जाते हैं। जिससे जिस अंश की त्रुटि हो वह पूर्ण हो जाये।

शरीर के रासायनिक द्रव्य १४ हैं—यह दो प्रकार के होते है—समीर-तत्त्व और क्षिति-तत्त्व। समीर-तत्त्व (वायवीय) ५ है और क्षिति तत्त्व (पृथ्वीय) ६ हैं।

समीर-तत्त्व ये है :—(१) ओषजन या आक्सिजन। (२) अम्बुजन या हाइड्रोजन। (३) तद्‌र्यजन या नाइट्रोजन। (४) शाद्वलीन (क्लोरीन)। (५) प्लावीन (या फ्लोरीन)।

क्षिति-तत्त्व ये हैं —(१) आगारजन या कार्बन। (२) स्फुलिंग-जन या प्रस्फुर (फासफोरस)। (३) गन्धक। (४) अवस (गिरी-सार) या लोहा। (५) खटिकाश्म या कैलसियम। (६) सुधाक्षार या सुधाश्म या सोडियम। (७) पुटक्षार या पुटाश्म या पोटाशियम। (८) मंगनीस या मैगनीशियम (९) शैलिका (सिलीका)।

आहार के रासायनिक द्रव्य—शारीरिक रासायनिक अंशों के विचार से प्रकृति ने हमारे आहारो में भी वही अंश रक्खे हैं जो सब खाद्य पदार्थों में अधिक या न्यून मात्रा में पाये जाते है—चाहे वह शाक-वर्ग हो या अन्न-मांस की कोई भाँति हो।

(१) हमारे शरीर में ओषजन और अम्बुजन की मात्रा और मिश्रणांशों की अपेक्षा अधिक है। अतएव हमारे भोजनों में भी जल की मात्रा दो-तिहाई से अधिक होती है, क्योंकि जल ओषजन और अम्बुजन के सयोग से बनता है।

(२) चूँकि तद्‌र्यजन दूसरे अंशों के साथ मिलकर हमारे शरीर की अस्थियाँ, मांस, रक्त, नसें और नाड़ियाँ बनाती है, अत. हमारे आहारों में भी तद्‌र्य के यौगिक अंश होते हैं, यथा—मांस, अण्डे, मछली, दूध, दही, गेहूँ, चने, मटर, मूँग, माष इत्यादि। ऐसे आहारों को "पलोत्पादक" अर्थात् मांस-वर्द्धक भोजन कहते है जो तद्‌र्यजन की त्रुटि को पूरा करते रहते हैं।

(३) ओषजन और कार्बन के पारस्परिक सम्मिश्रण से ताप और

उष्णता उत्पन्न होती है, अतएव हमारे आहारों में मेद या वसा (चरबी) घृत और तेल इस आवश्यकता को सम्पूर्ण करते हैं और अस्थि सन्धियों में चिकनाई उत्पन्न करते हैं। ऐसे आहार "स्नेहात्मक उष्ण भोजन" कहलाते हैं।

(४) स्नेहात्मक भोजन से कम उष्णता तथा वसा (चिकनाई) उत्पन्न करनेवाली वस्तुएँ निशास्ता तथा शकर हैं, जो कार्बन तथा ऋम्बु-जन और ओपजन के सम्मेलन से बनती हैं। इनको "कार्बोजनय शर्करीमय भोजन" कहते हैं। यथा—निशास्ता, चावल, शकर, अरारोट और आलू इत्यादि।

(५) हमारे शरीर के अंगों में अन्य अंशों की अपेक्षा अनेक प्रकार के लवण, चूना और लोहा-सम्बन्धी अंश भी पाये जाते हैं।

आयस (लोहे के) अंशों से रक्त की रंगत लाल हो जाती है, चूने से हड्डी बनती है, शलिका से दाँतों में कठोरता और चमक उत्पन्न होती है और दूसरे शरीर के नमकीन अंश कफ, वात, रक्त, पसीना, मांस इत्यादि में पाये जाते हैं। अतः इनकी त्रुटि को भोजन का नमक, मांस और भाजी तरकारी के नमक पूरा करते हैं।

भोजन के प्रकार—भोजन या आहार तीन प्रकार का होता है। फलाहार, अन्नाहार और मांसाहार। इन तीनों प्रकार के आहारों में फलाहार उत्तम, अन्नाहार मध्यम और मांसाहार निकृष्ट है।

फलाहार सबसे उत्तम है, फिर भी संसार में बहुत ही कम लोग हैं—एक फ़ीसदी भी नहीं—जो केवल फलाहार करते हैं। लोग सब दिन ऐसा कर भी नहीं सकते, क्योंकि फलाहार करने में व्यय अधिक होता है। ऐसे लोगों की संख्या अधिक है, जो फल भी खाते हैं और अन्न भी। इसी प्रकार मांसाहारी भी—फल और अन्न भी खाते हैं। इसलिए यहाँ हम फलाहार, अन्नाहार या मांसाहार के सम्बन्ध में अलग-अलग अधिक न बताकर केवल भोजन के सम्बन्ध में, इतना ही बतायेंगे कि

भोजन कैसा होना चाहिए, कितना करना चाहिए, कैसे करना चाहिए और कब करना चाहिए ?

भोज्य पदार्थों में अव्यवों का प्रतिशत् अनुपात—नीचे कुछ मुख्य भोजन के पदार्थों के लिए यह बताया गया है कि उनमें से प्रति-सैकड़ा कौन कौन से पदार्थ मिलते हैं।

भोजन-पदार्थ के नाम	प्रोटीन	कार्बोहाइड्रेट		चर्बी	लवण	जल
		मांड	चीनी			
अंडा	१४ ८	—	—	१०·५	१	७३ ७
मछली	१९	—	—	१	१	७९
मांस बकरा	१८	—	—	५	३	७४
मुरगी	२१	—	—	३ ८	१·२	७४
मटर (कुछ सूखा)	२३	५५	२	२	२	१५
आटा गेहूँ	९·५	७४·३	१	·८	७	१३
चना	२१·६७	६ २	१·१८	३ ६	२ २०	११·३५
चावल उबला	५	४१ ६	—	१	१·३	४०
दाल	२३·६	५१		१ ४	२ ५	१६·५
आलू	१ २	१७·५	१ ५	·५	·६	७६
गोभी	१·१	५·८		—	१ ३	९०
केला	१ ५	२२ ७		—	६	७४
गाजर	१·१	५ ८		—	१ ३	९०
बादाम	२०	१७		५७	१	५
मक्खन (पानी अलग किया हुआ)	१	—	१	८२	६	१०
मलाई	२·७	२·८		२६ ७	७	६६
दूध	४·५	५		४	५	८६

दूध के बारे में कुछ विशेष जानने की आवश्यकता है। बच्चों के लिए

दूध से बढ़कर और कोई लाभदायक भोजन नहीं है। इसमें बहुत से गुणप्रद पदार्थ हैं और इसके पचने में बहुत कम समय लगता है। कहा जाता है कि मनुष्य को अगर केवल एक ही भोजन का पदार्थ दिया जाय तो वह दूध हो सकता है। दूध में पानी बहुत अधिक होने से अगर केवल दूध ही पर रहना हो तो बहुत सा दूध पीना पड़ेगा जिससे सब आवश्यक पदार्थ उचित मात्रा मे मिल सकें।

ऊपर दिये हुए भोजन पदार्थों की सूची देखने से जान पड़ेगा कि मास बनाने के लिए—अंडा, मास, मछली, चना, दाल, मटर यही अधिक काम आते हैं। मक्खन, घी, आलू इत्यादि से गर्मी और शक्ति उत्पन्न होती है। ऊपर दी हुई मात्राओं में सब भाग बिना पके हुए भोजन में पाये जाते हैं। पकने से भोजन में कुछ अन्तर हो जाता है। जल बहुत कुछ भाप बनकर उड़ जाता है। चर्बी कुछ बह जाती है। कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं, जैसे दाल, चना, मटर जिनमें जल और बढ़ जाता है। इसलिए खाते समय भोजन के पदार्थों में प्रत्येक वस्तु की मात्रा कुछ घट बढ़ जाती है।

एक बात भोजन के पदार्थों के बारे में सोचने योग्य यह और है कि आमाशय में पहुँचने के उपरान्त हर एक भाग पूरा पाचन होकर शरीर में नहीं लग जाता। बहुत-सा भाग ऐसा रहता है जिसका समीकरण नहीं होने पाता, बल्कि वह वृथा निकल जाता है। मास और अंडा में प्रोटीन बहुत होता है और दाल, मटर में इससे भी अधिक होता है। शरीर के बनने में साधारण रीति से यही समझ में आता है कि मास की अपेक्षा मटर और दाल खाने से अधिक शरीर की वृद्धि होगी, परन्तु ऐसा नहीं है। मास और अंडा के प्रोटीन का क़रीब क़रीब सारा भाग समीकरण हो जाता है, परन्तु दाल का बहुत कुछ भाग शरीर में समीकरण नहीं होता। दूध ऐसा भोजन है कि उसका विशेष भाग समीकरण हो जाता है।

हमारा भोजन—भोजन में क्या-क्या वस्तुएँ होनी चाहिए यह तुमको जानना चाहिए, परन्तु किसको क्या भोजन ठीक पड़ता है यह बताना कठिन है, क्योंकि यह प्रश्न बहुत-सी बातों पर निर्भर है। एक नीरोग युवा के लिए प्रतिदिन लगभग १½ सेर भोजन करना चाहिए जिसमें से २½ छटाँक प्रोटीनवाली वस्तुएँ मास, मछली, अंडा, दूध, दाल, गेहूँ आदि (जहाँ से मिल सके) होनी चाहिए, ७½ छटाँक कार्बोहाइड्रेट (आलू, आटा, चीनी, इत्यादि से), १½ छटाँक चर्बी (घी, दूध, मक्खन इत्यादि से), ½ छटाँक लवण (तरकारी इत्यादि से) और ¾ सेर जल होना चाहिए। अधिक शारीरिक परिश्रम करनेवाले को और अधिक भोजन करना चाहिए।

बालकों को अधिक भोजन की आवश्यकता है, क्योंकि उनके शरीर की वृद्धि बहुत शीघ्र होती रहती है और उसके लिए सामग्री मिलनी चाहिए। फिर खेल कूद इत्यादि में बालकों की शारीरिक शक्ति का व्यय भी बहुत होता है, इसलिए वह भी पूरा होना चाहिए। उन्हें प्रोटीन देनेवाली वस्तुओं की अधिक आवश्यकता पड़ती है। चर्बी भी चाहिए जिससे अग्नि उत्पन्न हो। लवण भी चाहिए जिससे हड्डी ठीक-ठीक बनती रहे। पाँच वर्ष का बालक पूरे युवा की अपेक्षा उसका आधा भोजन कर सकता है। बालकों के भोजन में यह देखना आवश्यक है कि खाद्य पदार्थ का समीकरण शीघ्र हो और इस समीकरण में शारीरिक शक्ति का अधिक व्यय न हो। दूध और अण्डा बालकों के लिए बहुत उपयोगी होता है। फल और दूध बहुत आवश्यक हैं।

भोजन की मात्रा—दैनिक कामों को देखते हुए प्रत्येक मनुष्य के भोजन की सामग्री की आवश्यकता भिन्न भिन्न होती है। शारीरिक श्रम करनेवाले के शरीर में ऐसी वस्तुओं की कमी अधिकतर हुआ करती है, जिनका सम्बन्ध शरीर से है। इसके विपरीत, मस्तिष्क का श्रम करने-वालों के भीतर मस्तिष्क के अंशों का व्यय अधिक होता है, क्योंकि जिस

शरीरांग की प्रक्रिया अधिक वेगवती होगी, उसी अंग का मिश्रणांश अधिक पचेगा। इस बात को ध्यान में रखते हुए हम देखेंगे कि मांसोत्पादक भोजनों की आवश्यकता बचपन में सबसे अधिक होती है और जवानी में साधारण गुणकारी और वृद्धिकारी वस्तुओं की। एक युवा मनुष्य को साधारण रीति से लगभग आध पाव मांसोत्पादक भोजन का दैनिक व्यवहार रखना चाहिए और कठिन शारीरिक या मास्तिष्क परिश्रम करनेवाले को ३ छटाँक। इससे अधिक व्यवहार करने से रुधिर का प्रकोप होगा और नाना प्रकार के रक्त-रोग उत्पन्न होंगे।

इस प्रकार स्नेहात्मक आहार में एक छटाँक से डेढ़ छटाँक तक की नित्य की मात्रा होनी चाहिए। वसा की अधिकता से या तो आहार भली भाँति नहीं पचता और दस्त आने लगते हैं, या मेद की बहुतायत से शरीर स्थूल हो जाता है। अधिक मोटापा भी एक बीमारी है।

श्वेतज और शर्करयुक्त भोजनों से भी शरीर में उष्णता और चरबी उत्पन्न होती है और बल प्राप्त होता है। अतएव एक युवा मनुष्य के लिए रात दिन में तीन पाव भोजन इसी प्रकार का होना चाहिए, परन्तु इसकी अधिकता भी स्वास्थ्य-घातक है। पाचन क्रिया में गड़बड़ी हो जाती है और दस्त आने लगते हैं। अधिक काल तक शक्कर का व्यवहार रहने पर मधुमेह हो जाता है।

लवणयुक्त भोजन हमारे स्वास्थ्य के लिए अतीव आवश्यक है। इससे एक तो आहार के पचने में सहायता मिलती है, दूसरे रक्त, मांस, हड्डी और शरीर के अन्य अंशों के लिए इसकी आवश्यकता होती है। एक तोला से लेकर ढाई तोला तक नमकीन अंश भी अहर्निश हमारे भोजन के साथ शरीर में पहुँचना आवश्यक है। नमक के सिवा शाक-

भाजी तरकारी और ताजे फलों का भी व्यवहार रखना चाहिए, जिससे लवण अंशों की आवश्यकता पूर्ण हो जाय। आलू, बथुवा, गोभी, गाजर, मूली, शलजम उत्तम तरकारियाँ है।

जल का प्रयोग भी आहार पचने और मलोत्सर्जन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। जल की मात्रा भी दो-ढाई सेर होनी चाहिए। जल की अधिकता से, अधिक ठंडे जल से जठराग्नि पर प्रभाव पडता है, पाकस्थली निर्बल हो जाती है और पाचन-क्रिया ठीक नही हो पाती। उत्तम तो यह है कि आहार के बीच में थोडा-थोड़ा जल पिया जाय और आहार के पश्चात् दो-तीन घंटे इच्छानुसार जल पिया जाय।

आहारों में सर्वोत्तम आहार दूध है, इसमें अनेक अंश पाये जाते है। बचपन और किशोरावस्था में जब कि शरीर वृद्धि पर हो, इसका प्रयोग विशेषतया होना चाहिए।

भोजन का समय—आहार के लिए नियम-निष्ठा आवश्यक है। जब तक भूख न लगे, खाना न खाना चाहिए। बच्चों को तीन तीन घंटे के अन्तर पर और जवानों को साढ़े चार या पाँच घंटे पश्चात् खाना लाभदायक है। इससे कम समय में खाने से आमाशय बलहीन हो जाता है और अन्न ठीक नहीं पचता। निर्बल तथा रोगी मनुष्यों को तीन-तीन या चार-चार घंटे पश्चात् थोडी-थोडी मात्रा मे सूक्ष्म आहार करना चाहिए, जिससे भोजन सुगमता से पच जाय। बिना भूख लगे कदापि न खाना चाहिए। मानसिक और शारीरिक परिश्रम करने के उपरान्त अथवा चिन्ता या भय की दशा में भोजन न करना चाहिए, क्योंकि ऐसी दशाओं में रक्त मे आरोग्यनाशक अंश उत्पन्न हो जाते है और हृदय उसको दूर करने के प्रयत्न मे व्यस्त रहने के कारण आमाशय को आहार की ओर प्रवृत्त नहीं करता और भूख खुलकर नहीं लगती।

भोजन में ऋतु-चर्य्या—शीत-काल में ऐसा भोजन करना चाहिए जिससे शरीर में उष्णता और बल का संचार हो। मिठाई, कर्बोजवाले पदार्थ, अण्डे, मछली, घी मक्खन और मास अधिक खाने चाहिए। ग्रीष्म में इन वस्तुओं का प्रयोग अल्प मात्रा में होना चाहिए। ग्रीष्म में स्वभावत भूख कम लगती है, इसी कारण उष्ण वायु में शरीर की उष्णता कम निकलती है, अत देह की शारीरिक उष्णता स्थापित रखने के लिए कम ईंधन की आवश्यकता होती है। अतएव हम ऋतु में रसीली और ठडी वस्तुएँ खानी चाहिए। अधिक ठंडे जल से सदा बचाव रखना चाहिए, क्योंकि उसका प्रभाव आमाशय के लिए अच्छा नहीं होता।

वर्षा-ऋतु में और मुख्यत उस काल में जब जल वायु प्रतिकूल हो अथवा, विशूचिका का प्रकोप हो, दोनों समय भोजन में प्याज और सिरके का व्यवहार करना चाहिए। "गन्धकाम्ल" (सुलफ्यूरिक ऐसिड) अर्थात गन्धक के तेजाब के तीन-चार बूँद पानी में मिलाकर पी लेने से हैजे के कीटाणु मर जाते हैं और भोजन पच जाता है।

पाचन क्रिया—पाकाशय में भोजन न्यूनाधिक स्थूल रूप में पहुँचता है। इसलिए उसमें से शरीर के नष्ट हुए अशों की पूर्ति ऐसी दशा में नहीं हो सकती, अर्थात् भोजन के अश इस दशा में रुधिर से जाकर नहीं मिल सकते। पहले भोजन के लाभदायक तथा बलवर्द्धक अश व्यर्थ अशों से अलग होते हैं, तत्पश्चात् लाभदायक अश द्रवरूप में परिवर्तित किये जाते हैं। इससे रुधिर उनको पाकाशय के भीतरी बाल के सदृश सूक्ष्म नलियों के द्वारा खींच लेता है। इसी को हम प्राय भोजन का पचना कहते है। आगे चलकर हम बतायेंगे कि यह सब कार्य किस प्रकार सम्पादन होता है। कल्पना करो कि हम चावल अथवा रोटी, मास अथवा दाल के साथ जो घी से छौंकी हुई है, खा रहे हैं पचने का काम मुँह ही से आरम्भ हो जाता है। मुँह, जीभ और दाँत मिलकर एक छोटी-सी चक्की का काम

देते है। दांत भोजन को पीसकर थूक की सहायता से एक प्रकार का चिपचिपा तथा पतला द्रव पदार्थ बना देते हे। थूक जैसा कि सब जानते हैं मुंह में सदैव आर्द्रता पहुँचाता रहता है। छोटी-छोटी गिलटियों के तीन जोड़े हैं जिनसे बहुत सी पतली-पतली नलियों के द्वारा थूक मुँह में गिरता रहता है। जीभ का यह काम है कि वह भोजन के प्रत्येक अंश को दांतों के नीचे लाये। तत्पश्चात् मुँह के पीछे की ओर ले जाय जहाँ से वह पाकाशय में जाता है।

भोजन मुँह में दांत और जीभ की सहायता से भली भाँति चबाया जाता है तो थूक के साथ भली भाँति मिल जाता है और यह थूक भोजन के कुछ अंशों को द्रवरूप में बदल देता है। चावल और रोटी पर तो थूक अपना काम अच्छे प्रकार से करता है, किन्तु मास, दाल, घी तथा मक्खन पर बहुत ही कम प्रभाव डाल सकता है। चावल तथा रोटी के अधिकांश को द्रवरूप में होने के कारण रुधिर जो मुँह की सूक्ष्म नलियों में बहता है, तत्काल ही खींच लेता है।

भोजन के शेष भाग जैसे मास और दाल तथा चावल और रोटी के वे भाग जो अभी द्रवरूप में नहीं हुए है, जीभ के द्वारा गले में उतार दिये जाते है। फिर यह एक नली के द्वारा जो ९ इञ्च लम्बी होती है पाकाशय में जाता है। इसलिए यह नली भोजन की नली कहलाती है।

भोजन की नली जो पाकाशय तक चली गई है, साँस की नली के ठीक पीछे स्थित है। इसका क्या कारण है कि ये दोनों नलियां इतनी पास पास हैं तो भी भोजन सदैव भोजनवाली ही नली में से जाता है और साँस की नली में से होकर नहीं जाता?

साँस की नली के ऊपरी भाग पर एक वस्तु छोटे ढक्कने के सदृश होती है। जब भोजन मुँह के पीछे पहुँचता है और भोजन की नली में उतरने लगता है तब यह ढकना गिर पडता है और साँस की

नली का मुँह बन्द कर देता है और इस प्रकार भोजन को साँस की नली में जाने नहीं देता। जैसे ही भोजन भोजनवाली नली में उत जाता है वैसे ही तुरन्त यह ढकना अपने स्थान पर आ जाता है। इसलिए हमको चाहिए कि भोजन करते समय बातचीत कदापि न करें, क्योंकि सम्भव है कि भोजन का कुछ भाग साँस की नली में चला जाय और दुख दे।

कदाचित् कोई यह विचार करे कि भोजन भोजनवाली नली में से इस प्रकार नीचे जाता है जैसे खड़ी नली में से जल बह जाता है, परन्तु ऐसा नहीं होता, क्योंकि यदि ऐसा होता तो लेटकर या झुककर कोई वस्तु निगली न जा सकती। भोजनवाली नली की मोटी दीवारों में गोल-गोल पेशियाँ होती हैं। जब भोजनवाली नली में भोजन जाता है तब सबसे ऊपरवाली पेशियाँ चारों ओर से सिकुड़ जाती हैं और भोजन को दबाकर नीचे उतार देती हैं। इसी प्रकार क्रमश नीचे की पेशियाँ और नीचे उतार देती हैं और अन्तवाली पेशियाँ उसको पाकाशय में पहुँचा देती हैं।

पाकाशय एक बड़ा थैला है जिसमें लगभग दो सेर जल समा सकता है। यह अधिकतर बाईं ओर फेफड़ों के ठीक नीचे स्थित है।

पाकाशय का थैला बहुत-सी पेशियों से बना है। ये पेशियाँ दिल की पेशियों की भाँति स्वय सिकुड़ती तथा फैलती रहती है अर्थात् इन पेशियों का काम हमारी इच्छा के अनुसार नहीं होता और हमारा इन पर कोई अधिकार नहीं है। पाकाशय की भीतरी दीवारों पर बहुत-सी छोटी-छोटी गिलटियाँ होती हैं। जब भोजन पाकाशय में पहुँचता है तब इन गिलटियों में से एक प्रकार का रस निकलता है जो मुँह के भीतर की गिलटियों के थूक के सदृश होता है।

पाकाशय में भोजन के आते ही उसकी पेशियाँ सिकुड़ने और फैलने लगती हैं और इस प्रकार भोजन को पाकाशय के एक भाग से ...

भाग में ढकेलती है और इस प्रकार भोजन पाकाशय के रसों के साथ मिलकर एक गाढ़ी पीले रंग की चिपचिपी पतली लेई के सदृश बन जाता है।

इससे पहले यह बता दिया गया है कि थूक जो चावल, रोटी और तरकारियों को द्रवरूप में परिवर्तित कर देता है, मांस, अंडे, दाल तथा घी पर कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकता। इनको केवल पाकाशय का रस ही द्रवरूप में परिवर्तित कर देता है, किन्तु घी और चर्बी इससे भी नहीं पचते। अब भोजन के अधिकतर भाग को जो इस प्रकार द्रवरूप में परिवर्तित हो जाता है, रुधिर अपनी बाल के सदृश सूक्ष्म नलियों द्वारा जो पाकाशय के सम्पूर्ण भीतरी दीवारों पर फैली हुई हैं, खींच लेता है।

वह गाढ़ा द्रव भाग जो अब पाकाशय में शेष रह जाता है, अधिकतर चर्बी और घी अथवा चावल, रोटी, तरकारी, मांस तथा दाल का अनपचा हुआ भाग होता है। इनमें से रुधिर अपने हेतु कुछ नहीं ले सकता इसलिए यह आँतों में चला जाता है। आँत एक बड़ी नली है जो पाकाशय के दाहिनी ओर से आरम्भ होती है। यह लम्बाई में शरीर की लम्बाई का पाँच गुना अर्थात् लगभग २६ फुट होती है। यह दो भागों में विभाजित होती है। ऊपर का भाग लगभग २० फुट लम्बा और डेढ़ इञ्च व्यास का होता है और नीचे का भाग लगभग ६ फुट लम्बा और व्यास में तीन इञ्च होता है। ऊपर का भाग, जिसको **छोटी आँत** कहते हैं, पाकाशय के नीचे इस प्रकार लिपटा हुआ होता है कि जहाँ तक हो सके बहुत ही कम स्थान रोके। किन्तु इसके नीचे का चौड़ा भाग जो कि **बड़ी आँत** कहलाता है, पहले दाईं ओर से पाकाशय के ऊपर चला जाता है, फिर उसके नीचे होकर बाईं ओर को जाता है और फिर अन्त में नीचे की ओर उतर जाता है। इन आँतों की दीवारें पाकाशय की नली की दीवारों की भाँति पेशियों से बनी हुई हैं जो

स्वयं सिकुड़ती और फैलती रहती हैं। आँतों के भीतर की ओर अगणित छोटी-छोटी गिलटियाँ भी हैं।

पाकाशय के ऊपर और इसके कुछ दाईं ओर जो एक बड़ी गिलटी दिखाई देती है, वही पित्ताशय है। यह आँतों में एक प्रकार का रस डालता रहता है जिसको पित्त कहते हैं। यह भोजन के चिकने अंशों अर्थात् घी, तेल तथा चर्बी इत्यादि पर अपना प्रभाव डालता है और इनके छोटे-छोटे कणों को और भी छोटे कणों में तोड़ डालता है। जब पित्त की आवश्यकता नहीं होती तब यह पित्ताशय में एकत्र होता रहता है और समय पर आवश्यकतानुसार आँत में टपकता है।

पाकाशय के पीछे एक गिलटी होती है। यह आँत में एक विशेष रस डालती रहती है जो रोटी, चावल, तरकारी, मांस, दाल, चर्बी तथा घी के अनपचे अंशों पर अपना प्रभाव डालती है और इस प्रकार पचने की अन्तिम क्रिया को पूर्ण करती है। इन दोनों गिलटियों के रस से भोजन बहुत ही पतला और दूध के सदृश सफ़ेद हो जाता है।

आँत की पेशियों के सिकुड़ जाने से यह दूध के सदृश भोजन क्रमशः आगे बढ़ता है। मार्ग में रुधिर की छोटी-छोटी धमनियाँ जो आँतों के भीतर जाल-सा बनाये हुए हैं, इसमें से बलदायक अंश ले लेती है और इस प्रकार रुधिर में भोजन का बलदायक अंश आ जाता है। आँतों की भीतरी दीवारों से भी इसी प्रकार रस निकलता है जिस प्रकार कि पाकाशय की भीतरी दीवारों से निकलता है। यह भोजन के उन अंशों को पतला कर देता है जो अब तक किसी दूसरे रस से पतले नहीं हुए। इस प्रकार भोजन का कोई अंश जो बलदायक हो रुधिर में जाने से नहीं बचता। जब तक यह दूध के सदृश भोजन छोटी आँतों के अन्त तक पहुँचता है उस समय तक रुधिर उसमें से बलदायक अंश ले चुकता है। आगे चलकर भोजन दृढ़ रूप में हो जाता है और अब इसमें केवल ऐसे

अंश शेष रह जाते हैं जो किसी काम के नहीं होते। यह प्राय दिन में एक या दो बार पाख़ाने के रूप में बाहर निकल जाता है।

इस प्रकार रुधिर उस भोजन से जो हम खाते हैं वह बलदायक अंश ले लेता है जो शरीर के नष्ट हुए भागों की हानि की पूर्त्ति करता है। भोजन के पचने के विषय में जो कुछ ऊपर वर्णन हुआ है उससे स्पष्ट विदित होता है कि यदि भोजन दाँतों से यथोचित रीति से न चबाया जाय तो उसे थूक भली भाँति नहीं मिलेगा और इससे वह पतला नहीं बन सकेगा। ऐसी दशा में पाकाशय और आँतों को दाँतों का काम करना पड़ेगा जिसके कारण उनको बहुत कुछ कष्ट और परिश्रम उठाना पड़ेगा, जिसका परिणाम यह होगा कि पाकाशय तथा आँतों में रोग उत्पन्न हो जायँगे और बिना पचा हुआ बहुत-सा भोजन शरीर को बिना लाभ पहुँचाये हुए निकल जायगा। साराश यह है कि यदि हम हृष्ट-पुष्ट रहना चाहे तो भोजन को भली भाँति चबाकर खायें जिससे वह मुँह में पतला होकर पचने के योग्य हो जाय और पाकाशय और आँतों को पचाने का काम बहुत न करना पडे अर्थात् उनका काम सुगम और न्यून हो जाय।

भोजन के नियम—शरीर के अधिकाश रोगों का कारण पाचन-यन्त्र का ठीक काम न करना है। जिस मनुष्य का हाज़्मा ठीक नहीं रहता, वह आसानी से रोगों का शिकार बन जाता है। रक्त ही जीवन का सार है। अच्छा रक्त स्वास्थ्य, बल और कार्य-शक्ति का आधार होता है। इस कारण प्रत्येक मनुष्य को जहाँ तक हो सके अपनी पाचन-शक्ति ठीक रखनी चाहिए।

भोजन ठीक न पचने या अपच, क़ब्ज़ आदि शिकायत रहने का मुख्य कारण यही है कि हम भोजन सम्बन्धी नियमों का पालन नहीं करते। जो मनुष्य अपने पाचन-यन्त्र का अपमान करता है, वह अपने

पैरों में स्वयं कुल्हाड़ी मारता है। स्वस्थ रहने के लिए अपना हाज़्मा ठीक रखना अत्यन्त आवश्यक है।

हाज़्मा ठीक रखने के लिए नीचे लिखे नियम पालन करना उचित है :—

(१) खाना धीरे-धीरे खूब चबाकर खाओ। जल्दी-जल्दी खाना ठूँसने से पाचन शक्ति बिगड़ जाती है। बिना चबाए न तो भोजन में काफ़ी थूक (लार) मिल पाता है, न भोजन चबकर बारीक ही हो सकता है। खूब चबाकर खाने से भोजन ऐसा पतला हो जाता है कि उसमें पाचन रस सुगमता से मिल सकते हैं। इस कारण भोजन शीघ्र पच जाता है। प्रत्येक कौर को इतना चबाना चाहिए कि वह आसानी से आप गले के नीचे उतर जाये। जल की सहायता से भोजन को निगलना तो महा मूर्खता है। इस प्रकार न तो भोजन ठीक चब पाता है, न उसका हमें काफ़ी स्वाद ही मिलता है। खाने के साथ अधिक जल के मेदे में जाने से पाचन रस पतले पड़ जाते हैं और अपना काम भली भाँति नहीं कर सकते।

वह लोग जो जल्दी-जल्दी भोजन को निगल जाते हैं, अकसर आवश्यकता से अधिक खा लेते हैं। थोड़े, खूब चबाए हुए भोजन से हमें इतना लाभ हो सकता है कि बहुत से बिना चाबे हुए भोजन से नहीं हो सकता। याद रक्खो, पाचन शक्ति पर आवश्यकता से अधिक बोझ डालना उसे निर्बल करने का ढंग है। इतना अधिक खाना कभी न खाओ कि पेट भारी हो जाये। कम और नियमित खानेवाले लोग अधिकतर दीर्घजीवी होते हैं।

(२) खाना नियमित समय पर खाओ। जो लोग खाने का समय नियमित नहीं रखते, दिन में किसी भी समय खाना खा लेते हैं, उनकी पाचन क्रिया बिगड़ जाती है। प्रतिदिन नियत समय पर भोजन करना चाहिए। दिन में तीन-चार बार से अधिक खाना ठीक नहीं।

खाना खाने के पश्चात बहुत से लोग, समय-असमय, मिठाई, नमकीन, चाट आदि खाया करते हैं। जो कुछ खाना हो, समय पर ही खाना उचित है। बीच-बीच में, बिना भूख, कुछ भी खा लेना पाचन-शक्ति के लिए बड़ा हानिकर है। ऐसी चटोरेपन की आदत कभी न डालना चाहिए।

खाना खाने के बाद पाचन-यन्त्र में अनेक क्रियाएँ होती हैं, जिनके द्वारा भोजन पचता है। साधारण तौर पर इन क्रियाओं के समाप्त होने में ५ या ६ घण्टे लगते हैं। अर्थात साधारण खाना हज़म होने के लिए ५ या ६ घण्टे आवश्यक हैं। बीच-बीच में खाना फिर ठूँस लेने से इन क्रियाओं में बाधा पड़ती है और इस कारण भोजन ठीक पच नहीं सकता।

(३) पाचन-यन्त्र को थोड़ा बहुत आराम देना आवश्यक है। यदि कोई तुमसे लगातार परिश्रम कराता रहे, न बैठकर साँस लेने दे, न कभी सोने या आराम करने दे, तो तुम्हारी क्या दशा होगी। बहुत से मूर्ख पुरुष पाचन-यन्त्र को पल भर भी छुट्टी नहीं देते। पहला खाया हुआ हज़म हो भी नहीं पाता कि ऊपर से और खाना खा लेते हैं। बेचारा मेदा काम करते-करते थक जाता है और निर्बल हो जाता है। अँतड़ियाँ भोजन पचाने की शक्ति बिलकुल खो बैठती हैं। इस मूर्खता के कारण ऐसे लोगों को सदा बदहज़मी रहती है।

बिना आवश्यकता के कोई चीज भी खाना मेदे और अँतड़ियों पर व्यर्थ बोझ डालना है। इस कारण जहाँ तक हो सके, खूब भूख लगने पर ही भोजन करना चाहिए। यदि भूख न लगी हो तो यह उचित है कि एक समय का खाना टाल दिया जाय।

(४) रात को देर से खाना कभी न खाओ। यदि रात को देर से खाना खाया जायगा, तो पाचन-यन्त्र को तुम्हारे सोने की

दशा में भी, कार्य करते रहना पड़ेगा। इससे न तो तुम्हें गहरी नींद आ सकेगी, न पाचन यन्त्र को ही आराम मिल पायेगा।

(५) खाना खाने के बाद कुछ देर तक मानसिक या शारीरिक परिश्रम न करो। जब हम खाना खाते हैं तब अधिकांश रक्त पाचन यन्त्र की ओर जाने लगता है। खाना खाने के बाद यदि परिश्रम किया जायगा, तो काफी रक्त पाचन यन्त्र की ओर न जाकर और अंगों की ओर जाने लगेगा। इससे पाचन क्रिया में विघ्न पड़ेगा।

(६) खाना साफ़ होना चाहिए। खाने की चीज़ों पर मक्खियाँ बैठी हों, या उस पर धूल आदि गन्दगी गिर पड़ी हो, तो उस खाने को कभी न खाना चाहिए। अनेक रोगों के कीटाणु मक्खियों द्वारा खाने पर आ पहुँचते हैं और मनुष्य को रोगी बना देते हैं। इसलिए साफ़ खाना ही सदा खाना चाहिए। बहुत से घरों में स्त्रियाँ खाना पकाने के बाद उसे खुला छोड़ देती हैं जिससे उस पर या तो मक्खियाँ आ बैठती हैं या धूल के परमाणु आ गिरते हैं। खाने को हमेशा ढककर रखना चाहिए। यदि हो सके तो घर में बारीक तारों की एक अलमारी ऐसी होनी चाहिए कि उसमें खाने की चीज़ें रक्खी जा सकें। इसके अतिरिक्त यथासम्भव खाने को हाथ से न छूना चाहिए। साफ़ चम्मच कलछी आदि से परसना चाहिए और खूब अच्छी तरह हाथ धोकर खाना पकाना और खाना चाहिए।

(७) बासी चीज़ों और बाज़ार की पकाई चीज़ों से जहाँ तक हो बचो। ये चीज़ें अक्सर रोग का कारण होती हैं।

(८) खाना प्रसन्न-चित्त से साफ़ जगह बैठकर खाओ। चिन्ता ग्रस्त होकर खाना खाने से पाचन शक्ति ठीक काम नहीं कर सकती। इसका कारण यह है कि शरीर में काफ़ी पाचन-रस नहीं बनता और इसलिए भोजन पच नहीं पाता।

भोजन की रक्षा—भोजन के विषय में हमें यह याद रखना चाहिए

कि हमारा भोजन अच्छे अन्न से बना हो। भोजन की सामग्री लेते समय उसे अच्छी तरह देख लेना चाहिए। अन्न सडा न हो, तरकारियाँ सूखी या बासी न हों। यदि हम मास खाते हो तो यह और भी अच्छी तरह देख लेना चाहिए कि मास सडा, गला या बदबूदार तो नहीं है। खाने के फल और मक्खन इत्यादि का भी ताज़ा होना आवश्यक है।

भोजन को पकाते समय सब चीजो को अच्छी तरह शुद्ध जल से धोकर पकाना चाहिए। घी से बननेवाली चीजों को अच्छे शुद्ध घी में पकाना चाहिए। उनके पकाने में कोई कसर न रखनी चाहिए। अच्छी तरह पका हुआ होने पर भोजन स्वादिष्ट तथा जल्दी पचनेवाला हो जाता है। अच्छे भोजन की सुगन्धि से ही मन प्रफुल्लित हो जाता है और भोजन को पचानेवाले रस पहले ही से तैयार हो जाते है।

भोजन रखने के बर्तन साफ़ और मँजे हुए होने चाहिए। वह ऐसी धातु के हों जिनमें भोजन 'कसेला' न हो जाय। बहुत से बर्तन ऐसे होते हैं कि भोजन रखने पर उनमें से हरे रग की चीज़ निकलकर भोजन को विषैला कर देती है। फूल के बर्तनों में यह बात नहीं होती। भोजन रखने के लिए फूल के बर्तनों को इस्तेमाल करना चाहिए। चीनी के बर्तन भी इस काम के लिए अच्छे होते है। तुमने अकसर देखा होगा कि कभी कभी दूध किसी बर्तन में फट जाता है। इसका कारण यह है कि वह बर्तन अच्छी तरह साफ़ नहीं होता। अलुमिनियम, कसकुट तथा पीतल के बर्तन कुछ तो साफ़ न होने और कुछ ख़राब धातु के होने के कारण, खाना रखने के लिए उपयुक्त नहीं होते।

भोजन के विषय में हमें कुछ बातें याद रखनी चाहिए :—

१. भोजन इस तरह रक्खा जाय कि उसमें गर्द या धूल न पड सके।

२. मक्खियों, चूहों या और जानवरों से उसकी रक्षा हो सके।

यह तभी हो सकता है जब हम उसे अच्छी तरह से बन्द करके किसी ऊँचे स्थान पर रक्खें जहाँ चूहे, झींगुर, मक्खी तथा चींटे इत्यादि न पहुँच सकें। तुमने अकसर देखा होगा कि लोग खाने की चीजें जाली लगी हुई अलमारियों में रखते हैं। शायद तुमने यह भी देखा होगा कि इन अलमारियों के पाये रात के समय जल की थाली के अन्दर डुबा दिये जाते हैं। ऐसा करने से चींटे ऊपर नहीं चढ़ सकते। रस्सियों के बनाये हुए सिकहरे या लोहे के तार की बनी हुई छोटी झोलियों में भी लोग खाने की चीजें रखते हैं और उन्हें बाहर हवा में किसी ऊँची जगह पर लटका देते हैं। ऐसा करना बहुत अच्छा है।

सफाई और मक्खियों से बचाव—मक्खियाँ मैले स्थानों पर अधिक बैठती हैं। उनकी टाँगों में और मुँह में छोटे छोटे रोएँ होते हैं। जब मक्खी किसी गन्दी जगह पर बैठती है तब उसके पैरों के रोओं में, थोड़ी-सी गन्दगी लग जाती है। यही गन्दगी, भोजन में मक्खी के द्वारा मिल जाती है। इसलिए भोजन के पदार्थों को मक्खियों से जरूर बचाना चाहिए। भोजन बनाने की जगह यदि खूब साफ नहीं रक्खी जाती तो मक्खियाँ ज्यादा आती हैं। इसलिए रसोईघर खूब साफ सुथरा होना चाहिए। खाने की चीजें हमेशा साफ बर्तन में तथा पत्तों से ढकी हुई रखकर ऊपर से जाली की बनी हुई टोकनी रख देनी चाहिए। इससे एक तो भोजन में हवा लगती रहती है, दूसरे वहाँ तक मक्खियाँ नहीं पहुँच सकतीं।

बासी भोजन—दूसरी बात जो भोजन के विषय में हमें याद रखनी चाहिए वह यह है कि हम कभी बासा भोजन न करें। बासी भोजन करने से पाचन शक्ति खराब हो जाती है। इसके अतिरिक्त बासी भोजन करने से शरीर तथा मन उतना प्रसन्न नहीं होता जितना कि ताजा तथा गर्म भोजन करने से होता है। इसका कारण यह है कि बासी भोजन खासकर वह भोजन जो घी से नहीं बनाया जाता—सड़ने लगता है। यह

सडा हुआ भोजन शरीर और मन के लिए बहुत हानिकारक होता है। बासी भोजन से बडी सुस्ती आती है और किसी काम के करने में उत्साह नहीं होता।

बाजार की मिठाई—बाजार की मिठाइयाँ हर समय ताजी नहीं होतीं और न वे शीशे की अलमारियो मे ही रक्खी जाती है। इससे उन पर मक्खियाँ बैठा करती है और धूल भी इकट्ठी हो जाती है। ये मिठाइयाँ सफाई से नहीं बनाई जातीं और न इनके बनाने मे अच्छा घी और अच्छा सामान ही लगाया जाता है। इनको खाने से अकसर दस्त, पेचिश तथा हैजे के कीडे शरीर के अन्दर पहुँच जाते है जो कि अन्त में बहुत दुखदायी होते है। इसलिए जहा तक हो सके हमें बाजार की बनी हुई चीजो का इस्तेमाल न करना चाहिए।

भोजन के बर्तन—भोजन बर्तनों में पकाया जाता है और उन्हीं में खाने के लिए रक्खा भी जाता है। साधारणत ये बर्तन किसी धातु के बने होते है। जैसे पीतल, ताबा, कासा, फूल इत्यादि। धनवान् लोग चाँदी के बर्तनो का भी प्रयोग करते है। लोग चीनी और काँच के बर्तन भी काम मे लाते हैं। कुछ लोग, विशेष रूप से ग्रामीण, मिट्टी के बर्तनों का भी उपयोग करते है।

यदि बर्तन स्वच्छ न होंगे तो उनमे जो भोजन रक्खा जायगा, वह दूपित हो जायगा और उसके खाने से शरीर को हानि पहुँचेगी। कुछ खाद्य पदार्थ ऐसे होते है, जिनका प्रभाव धातु के बर्तनो पर पडता है। खाद्य पदार्थ के कुछ हलके तेजाब इत्यादि धातु को गलाकर उनमे मिल जाते है और शरीर को नुकसान पहुँचाते है। ऐसे पदार्थों के रखने के लिए बर्तनो में राँगे की कलई करा दी जाती है, परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि खाने की कोई वस्तु अधिक समय तक बर्तन में न पडी रहे।

बर्तनों की सफाई बराबर होती रहनी चाहिए। बर्तनों में धूल, मिट्टी,

घी, तेल की चिकनई आदि, लगी न रहने देना चाहिए। नहीं तो ये वस्तुएँ भोजन में मिल जाती हैं। गन्दे बर्तनों में भोजन रखने से उसमें दुर्गन्धि आने लगती है। भोजन करने के बर्तनों को बहुत देर तक गन्दे न पड़े रहने देना चाहिए। नहीं तो उनका साफ़ करना कठिन हो जाता है।

रोगियों का भोजन—दूध प्राय जल या कोई अन्य वस्तु मिलाकर देना चाहिए, क्योंकि तीव्र रोगों में, विशेषकर अँतड़ियों के दोषों में अकेला दूध आसानी से नहीं पचता। जितना दूध लो, उतना ही साधारण जल या जौ का जल, चावलों का जल या फटे हुए दूध का जल या अण्डे की सफ़ेदी या रोटी की जैली उसमें मिला लो, फिर रोगी को दो। बहुत से लोग दूध को पेप्टोनाइज्ड भी कर लेते हैं।

जौ का जल—बहुत लाभदायक वस्तु है। उत्तम भाँति के अँगरेज़ी जौ चमचा भर लेकर एक सेर जल में आधा घंटा भिगो रक्खो, फिर बीस मिनट तक औटाओ और छान लो।

चावलों का जल—एक सेर जल में दो चमचे चावल डालकर आध घण्टे तक उबालो और छान लो। नींबू या बूरा डालकर स्वाद बना लो।

फटे हुए दूध का जल—रेनट या शेरी शराब से बनता है। एक सेर दूध में एक चमचा रेनट डाल दो, बीस मिनट के बाद औटाओ और फिर दही सा अलग और जल अलग कर लो। यह जल चाहे अकेला दो, चाहे दूध के साथ। यह बहुत लाभदायक भोजन है और दस्तों में अत्यन्त उपयोगी है।

अण्डे की सफ़ेदी—अल्ब्युमन—आधा सेर शीतल जल में दो अण्डों की सफ़ेदी दस मिनट तक भली भाँति फेंटो। दस्तों और अँतड़ियों के रोगों में यह बहुत लाभदायक है।

रोटी की जैली—डबलरोटी का एक टुकड़ा शीतल जल में भिगो

दो। छः घंटे बाद यह जल निचोड लो और एक सेर जल इसमें मिला दो और दो घण्टे तक उबालो। फिर मसलकर मलमल से छान लो और दूध, जौ का जल, चावलों का जल, फटे हुए दूध का जल या अण्डे की सफेदी, इनमें से किसी वस्तु के साथ मिला दो।

पेप्टोनाइज्ड दूध—दो प्याले ठण्डे दूध में एक प्याला शीतल जल मिलाओ और पेप्टोनाइजिङ्ग पाउडर की एक पुडिया या बैंजर के पेप्टीकस के दो चमचे और बीस ग्रेन बाईकार्बोनेट आफ़ सोडा उसमें डालकर भली भाँति हिलाओ और गर्म जल की देगची में लगभग पन्द्रह मिनट तक बर्तन को रक्खा रहने दो। यह दूध मानो पहले ही आधा पच जाता है और तीव्र रोगों तथा उल्टी आदि में लाभदायक होता है।

मुर्ग और भेड का शोरबा—बिना चर्बी के मास के छोटे-छोटे टुकड़े करो और एक छोटे मुँह के पात्र में रखकर आध सेर ठण्डा जल उसमें डालो। गूँधे हुए आटे से पात्र का मुँह बन्द कर दो, कम से कम दो घंटे तक खौलते हुए जल की देगची में रक्खा रहने दो, फिर मलमल से छानकर रोगी को दो।

सागूदाना या कार्न फ्लौर—यदि जल में उबाला हुआ हो, तो उन रोगियों को जिन्हें बलदायक भोजन की आवश्यकता है, शोर्वे, चावलों और दूध के साथ मिलाकर देना चाहिए।

दही का जकट—दूध जमाकर बनाया हुआ दही सहज में पच जाता है और अँतडियों के रोग के बाद लाभदायक होता है, परन्तु गाय का शुद्ध ताज़ा दूध लेकर घर पर ही जमाना चाहिए। इसके सिवा और हल्के भोजन ये हैं —दाल का पानी, फिर्नी, एगफ्लिप जो अंडे, ब्रांडी, दूध और बूरे को मिलाने से बनता है और दूध में उबाला हुआ अडा।

प्रश्न

(१) भोजन क्यों किया जाता है उससे क्या लाभ होता है ?

(२) दूषित भोजन का स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

(३) भोजन की सफ़ाई में क्या क्या सावधानी करनी चाहिए ?

(४) मिट्टी से बरतन मांजना क्यों बुरा है ?

(५) खाने पीने के बर्तनों में क्या सावधानी रखनी चाहिए और क्यों ?

(६) मक्खियों से कौन सी हानियाँ पहुँचती हैं और कैसे ?

(७) बाज़ार की मिठाइयाँ खाना क्यों बुरा है ?

(८) बाज़ार की मिठाई में क्या दोष होते हैं ?

(९) भोजन करने के क्या नियम हैं ?

(१०) अलहदा अलहदा बर्तनों में क्यों खाना चाहिए ।

(११) अनियमित भोजन से क्या हानि होती है ?

(१२) कैसे स्थानों में खाना बुरा है ?

(१३) खाते समय कौन कौन सी बातें बुरी समझी जाती हैं ?

(१४) ग्रास क्यों चबाना चाहिए ?

(१५) जो मनुष्य शीघ्र भोजन करता है वह धीरे धीरे क्रम खोदता है ? इसे सिद्ध करो ।

(१६) रोगियों का भोजन क्या होना चाहिए ?

अध्याय ९

हमारे वस्त्र

हमारे पूर्वज—भारतवर्ष में जो जातियाँ सबसे पूर्व आबाद थी वह बिलकुल जंगली और असभ्य थी। लोग कच्चा मांस खाते थे और नंगे फिरते थे।

कुछ समय पश्चात् इन मनुष्यों की आवश्यकताओं ने उन्हें उन्नति करने पर बाध्य किया। सर्वप्रथम वे पशुओं की खालों और पत्तियों से अपने शरीर को ढकने लगे। फिर होते-होते पत्तियों को बुनना सीखा और उससे अपना वेष बनाया। फिर वृक्षों की छालों के कपड़े बनाये। कई सहस्र वर्षों के बाद मनुष्यों ने इतनी उन्नति की कि अब अच्छे से अच्छे कपड़े बनने लगे हैं।

वस्त्रों की आवश्यकता—कपड़ा पहनने की बहुत सी आवश्यकताएँ हो सकती हैं। जिस समय मनुष्य जंगलों में निवास करते थे और नंगे फिरते थे उस समय उन्हें अपने शरीर को काँटों तथा जानवरों के पंजों से बचाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इस प्रकार पोशाक की यथार्थ आवश्यकता शरीर की रक्षा थी। रक्षा की आवश्यकता दो प्रकार से उत्पन्न हुई होगी। एक तो वह जो मैंने अभी बताई है। दूसरी यह कि सर्दी के दिनों में जब उनको जाड़ा लगता था तब वे आग जलाकर ताप लेते थे, किन्तु काम-काज के समय आग लिये लिये कहाँ फिरते? इसलिए उनको ऐसी वस्तु की आवश्यकता प्रतीत हुई जो प्रत्येक दशा में उनके शरीर को सर्दी से बचा सके। तीसरी आवश्यकता यह हो सकती है कि बरसात के समय शरीर पानी में भीगने से बच जाय। चौथे गर्म–

कि भारतवर्ष ऐसा देश है जहाँ गर्मी के समय में तीक्ष्ण लू चलती है, धूप तेज होती है और कहीं-कहीं ऐसी कड़ी गर्मी पड़ती है कि मनुष्य का रंग तक काला पड़ जाता है। ऐसी दशा में ऐसी वस्तुओं की आवश्यकता हो सकती है जो हमारे शरीर को गर्मी और हवाओं के प्रभाव से रक्षा सके। यह तो वे आवश्यकताएँ हुईं जिनसे मनुष्य को अपनी शरीर-रक्षा की भिन्न-भिन्न प्रणालियाँ सोचनी पड़ीं। किन्तु हम आजकल देखते हैं कि सभ्य मनुष्यों की आवश्यकताएँ साधारण मनुष्य की आवश्यकताओं से अधिक है। वह सौंदर्य प्रिय है। उसके लिए फैशन की वस्तुएँ बनीं। उदाहरणार्थ, आवश्यकता के कारण हमने तख्त बनाया, सभ्यता ने उस पर फर्श बिछाया और सौन्दर्य ने मखमली कालीनों, रेशमी गद्दों, मखमली तकियों और गंगा जमुनी चादरों को जन्म दिया, यहाँ तक कि होते होते मामूली तख्त से तख्त ताऊस बन गया। यही हाल हमारी पोशाक का भी है।

पता चला कि पोशाक तैयार करने में दो आवश्यकताएँ हुईं—एक तो प्राकृतिक आवश्यकता जिसमें शीत, गर्मी, आँधी और पानी इत्यादि से शरीर को बचाना दृष्टि में रहा। दूसरी कृत्रिम आवश्यकताएँ जिनमें फैशन, तथा सौन्दर्य आदि के विचार उत्पन्न हुए। सभ्य मनुष्य के लिए आवश्यक है कि वह अपनी पोशाक में दोनों बातों का विचार रखे।

सर्दी और गर्मी—पहली बात ध्यान देने योग्य यह है कि सर्दी या गर्मी लगना यथार्थ में क्या बात है? ऐसा क्या होता है? तुम जानते हो कि प्राणिमात्र के शरीर में प्राकृतिक गर्मी होती है। इस गर्मी का सम्बन्ध बहुत कुछ रुधिर के दौरे और मेदे तथा जिगर के स्वास्थ्य पर निर्भर है। जब हमारा मन रुक जाता है तब रुधिर का दौरा बन्द हो जाता है और जिगर तथा मेदा दोनों निरर्थक हो जाते हैं। ऐसी दशा में शरीर की गर्मी बिलकुल निकल जाती है, शरीर ठंडा पड़ जाता है और मनुष्य मर जाता

है। यदि शरीर की गर्मी साधारण दशा से अधिक बढ गई तो हम कहते है मनुष्य को ज्वर आ गया। इससे ज्ञात हुआ कि शरीर की प्राकृतिक गर्मी बड़ी आवश्यक वस्तु है, परन्तु उसको मध्यम दशा में रखना चाहिए। नियम है कि सर्दी गर्मी को अपनी ओर खींचती है और उसे ग्रहण करती है। इसलिए जब देह की गर्मी कम होने लगती है और बाहर की सर्दी हमारे शरीर की गर्मी को सोखने लगती है तब हम कहते है कि हमें सर्दी लगती है। यदि बाहर की गर्मी अधिक हुई और शरीर ने उसे अपनी ओर खींचा, तब हम कहते हैं कि हमें गर्मी लगती है। जिन वस्तुओं के कपडे हम पहनते है उनमें अधिकतर वस्तुएं ऐसी हैं जो शरीर के अन्दर की गर्मी को बाहर निकलने में सहायता करती हैं या बाहर की गर्मी को अन्दर पहुँचाती हैं। ऐसी वस्तुओं के कपड़े ठंडे कपडे कहलाते हैं। इसके विरुद्ध जो कपड़े शरीर की गर्मी को बाहर निकलने से रोकते हैं और बाहर की गर्मी को अन्दर नहीं आने देते वे गर्म कपड़े कहलाते है।

वस्त्र बनाने की वस्तुएँ—१ रुई—कपडे बनाने की वस्तुओं मे पहली वस्तु रुई है। रुई वास्तव में कपास के पेड का पुष्प है। इन पुष्पों को तोड़कर चरखी में ओट लेते है और बीजों को निकाल-कर रुई बनाते है। रुई काती जाती है और काते हुए तागों से कपडे बनाये जाते है। रुई के कपडे और कपडों की अपेक्षा अधिक सस्ते और मजबूत होते हैं। यह धोने में सिकुड़ते भी कम हैं। इनकी विशेषता यह है कि ये शरीर की गर्मी को बाहर की वायु तक सुगमता से पहुँचा देते हैं और शेष को बहुत कम सोखते है। धूप में सूती कपड़ा शीघ्र गर्म हो जाता है और गर्मी लगने लगती है। कारण यह है कि इस कपड़े में बाहर की गर्मी बहुत शीघ्र असर कर जाती है और शरीर तक सुगमता से पहुँच जाती है। यही दशा सर्दी में होती है। बाहर की ठंड हमारी शारीरिक गर्मी पर प्रबल हो जाती है और कपडा ठंडा पड जाता है।

निकालकर कूट डालते है। इस प्रकार रेशे पृथक् हो जाते हैं और मशीन के द्वारा रेशम के तारों जैसे साफ़ और चमकदार निकल आते है।

सन का कपड़ा मज़बूत और सुन्दर होता है। यह रुई की अपेक्षा अधिक ठंडा होता है। यह पसीने को शीघ्र सोखता है और शीघ्र ही उड़ा भी देता है। तुमने देखा होगा कि जब जल गर्मी से वाष्प बनकर उड़ता है तब वाष्पीय स्थान पर ठंड हो जाती है। इस कारण इसके कपड़े तरी को बनाये रखते है। न तो वे तरी को सोखते है न गर्मी को दूर करते है, प्रत्युत बहुत शीघ्र गर्म हो जाते हैं। सन के कपड़े की पलँग की चादरे बहुत मुलायम और ठण्डी होती हैं।

४ रबर—रबर भी कपड़े के लिए बरती जाती है। रबर एक वृक्ष का गोंद है। मशीन के द्वारा उसे पिघला और साफ़ करके उससे सहस्रों प्रकार की वस्तुएँ बनाई जाती है। गन्धक का पुट मिलाने से रबर सख्त हो जाता है। रबर से बरसातियाँ, बिस्तरबन्द और तिरपाल इत्यादि बनती है। रबर पानी के रोकने के लिए बहुत अच्छी वस्तु है, किन्तु उसके अन्दर हवा प्रवेश नहीं कर सकती, इसलिए रबर शरीर की गर्मी को सोखता है। बाहर की हवा शरीर तक नहीं पहुँचने पाती, इसलिए बहुत शीघ्र पसीना निकल आता है और गर्मी ज्ञात होने लगती है। इसी कारण अन्दर पहनने के कपड़े रबर के नहीं बनवाये जाते।

५. चमड़ा—जानवरों की खाले भी पोशाक के काम में आती हैं। चमड़े को साफ करके उसकी पोस्तीन बनाते है। जिस जगह बर्फ़ गिरती है वहाँ पोस्तीने बहुत काम देती है और वहाँ के मनुष्य उनका प्रयोग भी करते है, क्योंकि यह शरीर को तीक्ष्ण तथा ठण्डी वायु से बचाती है और सर्दी नहीं लगने देती। चमड़े का प्रयोग रबर की भाँति होता है। रबर पानी को रोकता है और

चमड़ा बर्फ की सर्दी को। नीचे पहननेवाली पोशाक के लिए दोनों बेकार हैं, क्योंकि इनमें छिद्र नहीं होते और वायु उनके अन्दर नहीं आ जा सकती।

६ ऊन—ऊन ऊपर की सब वस्तुओं से अधिक लाभदायक है। जानवरों के बालों को ऊन कहते हैं। ऊन अधिकतर भेड़ों, तथा ऊँट इत्यादि से ली जाती है। प्रकृति ने प्रत्येक देश के जानवरों को उसी देश की जल वायु के विचार से पोशाक भी दी है। ठंडे देशों की बकरियों, बिल्लियों और कुत्ते इत्यादि को देखो उनके बाल कितने बड़े होते हैं, किन्तु इन्हीं जानवरों के बाल हमारे देश में इतने बड़े नहीं होते। कारण यह है कि यहाँ ऐसी ठंड नहीं होती जिससे ऐसे बालों की आवश्यकता हो। ऊन बहुत गर्म होता है। इसकी विशेषता यह है कि यह गर्मी को रोकता है और तरी को नहीं सोखता। इसलिए ऊनी कपड़े पहनने से शरीर खूब गर्म रहता है और बाहर की सर्दी रुक जाती है। ऊनी कपड़े पहनने पर न तो शरीर की गर्मी बाहर निकलने पाती है और न बाहर की ठंडी हवा का प्रभाव अन्दर जाने पाता है। गर्मियों में सूर्य की गर्मी अन्दर नहीं पहुँचने पाती। इन विशेषताओं के विचार से कपड़ों के नीचे ऊनी बनियाइन पहनना हर मौसम में लाभदायक है। व्यायाम कर चुकने के पश्चात् या ऐसे समय में जब पसीना निकल रहा हो, ऊनी कपड़ा पहनना लाभदायक है, क्योंकि ऊन भीतर की गर्मी को बाहर निकलने से और बाहर की सर्दी को भीतर आने से रोकता है। नीचे पहनने के ऊनी कपड़े बहुत मुलायम होने चाहिए। ऊनी कपड़ा धुलने से ख़राब हो जाता है। भीगने से ऊन सिकुड़ता है, कठोर हो जाता है और उसमें तरी को सोखने की शक्ति कम हो जाती है। इसलिए ऊनी कपड़े को केवल साबुन तथा गुनगुने पानी से धीरे-धीरे धोकर धूप में सुखा लेना चाहिए। मरोड़कर निचोड़ने से कपड़ा ख़राब हो जाता है। दर्जी कपड़ा काटने से पहले उसे पानी में डाल देते हैं जिससे

वह फिर न सिकुड जाय। शाल, मलीना, अलपाका, कश्मीरा, सरद फलालैन इत्यादि कपडे ऊन से बनाये जाते है।

कपड़ों का रग—जब हम कपड़ा लेने के लिए बजाज की दुकान पर जाते है तब वह हमें रंग रग के कपडे दिखाता है। यथा हरे, लाल, नीले, पीले, काले, सफ़ेद इत्यादि। कपडे पसन्द करने में जहाँ कपड़े की किस्म का विचार करना चाहिए वहाँ उसके रग का भी विचार रखना चाहिए। याद रखो काले और नीले रग में गर्मी को सोखने और सूर्य की किरणों को अपनी ओर खींचने का विशेष गुण हैं। इसलिए यदि ऐसे कपडे गर्मी में पहने जायँ और उनको पहनकर धूप में निकला जाय तो लू लग जायगी। इसके विरुद्ध सफ़ेद खाकी या हरी धूप छाँ के कपडे ठण्डे होते है। यह रग धूप के प्रभाव को नहीं स्वीकार करते और सूर्य की किरणों को रोकते हैं। गर्मी में इन रगों के कपडे पहनने से अधिक गर्मी नहीं मालूम होती। काला रग सक्रामक महामारियों के कीटाणु तथा प्रत्येक भाँति की गन्ध को जज्ब करता है। इसलिए महामारी के दिनों में काले कपडे नहीं पहनने चाहिए, विशेषतया उन लोगों को जो महामारी के रोगियों की सेवा-शुश्रूषा करते हों। नीचे पहनने के कपड़े, जैसे बण्डी इत्यादि कभी रगीन न होने चाहिए। कारण यह कि जितने भी गहरे और तेज़ रग होते हैं सब में सखिया का अश मिला रहता है। सखिया बडा तीव्र विष है। यदि थोडा-सा खा लिया जाय, तत्क्षण मृत्यु हो जाती है। जब हम रगीन कपडे पहनते हैं और पसीना निकलता है तब कपडों का जहर छूटकर हमारे रोमों में पहुँच जाता है। इससे खुजली होने लगती है और घाव हो जाता है। वहाँ से चलकर विष हमारे शरीर में पहुँच जाता है और नाना प्रकार के कष्ट देता है। इसलिए भडकीले रगों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

हमारे वस्त्र—हमको कपडे बनाने में कुछ बातों का विचार रखना आवश्यक है। बात यह है कि कपडा केवल बाहरी तडक भडक का न

ो, वह लाभदायक भी होना चाहिए। वस्त्र ऐसा हो जो हमारे शरीर की उष्णता को, गर्मी और जाड़े, दोनों ऋतुओं में सुरक्षित रखे, न जाड़ों में हम पर सर्दी असर करे और न गर्मियों में धूप। दूसरी बात यह है कि कपड़े ढीले होने चाहिए जिससे शरीर को कष्ट न हो। तंग और चुस्त पोशाक पहनने से कपड़ा फट जाता है और हम अपने शरीर को सुगमता से घुमा फिरा नहीं सकते। तंग कपड़े से नसें दबती हैं और रुधिर का दौरा रुक जाता है। इससे स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। गरदन, सीना, पेट और कमर पर कपड़े चुस्त न होने चाहिए। तीसरी बात यह है कि कपड़ा बुना हुआ होना चाहिए। वह जमा हुआ रबट और चमड़े का न हो। उसके अन्दर हवा का प्रवेश आवश्यक है। सबसे बड़ी बात यह है कि कपड़े बनाने में अपनी हैसियत का विचार रखना चाहिए और मितव्ययिता से काम लेना चाहिए। न फटे कपड़े पहनो जिससे दूसरों को घृणा हो और न ऐसे मूल्यवान कपड़े बनाओ कि एक अचकन में ही एक मास की कमाई चली जाय। रंग और भेद इत्यादि के सम्बन्ध में विचार रखना चाहिए।

वस्त्र मौसम के उपयुक्त न बहुत ढीले और न बहुत कसे होने चाहिए। तंग वस्त्रों से शरीर को बहुत हानि पहुँचती है। उनके तंग होने के कारण रक्त संचालन बन्द हो जाता है। यह साधारण सी बात है कि तंग कालर की कमीज पहनने से गले की नसें फूल जाती हैं और मुँह और सिर में भारीपन मालूम होने लगता है। इसी प्रकार धोती को बहुत कसकर बाँधने से भी नीचे के अंगों में रक्त का जाना कम हो जाता है।

कसे हुए वस्त्रों से एक और हानि होती है। वस्त्र और शरीर के चर्म के बीच में जो वायु रहती है उसका ताप शरीर के ताप ही के बराबर हो जाता है। इस कारण यह वायु एक गर्म वस्त्र की भाँति काम करती है। वस्त्रों के तंग होने से यह वायु गर्म नहीं रहने पाती

साथ में इस वायु के चर्म को जो आक्सीजन मिलती रहती है, वह भी उसे नहीं मिलती। इसी कारण ढीले वस्त्र तंग वस्त्रों से उत्तम होते हैं। बच्चों को तंग वस्त्र भूलकर भी न पहनाना चाहिए।

वस्त्र न बहुत पतले होने चाहिए और न मोटे। शरीर पर कमीज के नीचे बनियायन या गंजी ऐसे वस्त्र की होनी चाहिए जिसमें पसीना सोखने का गुण हो। जाड़ों के मौसम में चर्म पर रहनेवाला वस्त्र ऊन का होना चाहिए। उसके ऊपर सूती कमीज या कुर्ता पहन सकते हैं।

सिर का वस्त्र—भारत गरम देश है। यहाँ की जल-वायु तथा ऋतु का विचार रखते हुए सिर का पहनावा ऐसा होना चाहिए जो धूप में हमारे सिर की भली प्रकार रक्षा कर सके। सूर्य की किरणों का तीव्र प्रभाव हमारे सिर तथा मस्तक को हानि पहुँचाता है। जाड़े के दिनों में सर्दी से बचना चाहिए। दोनों उद्देश्यों को पगड़ी सबसे अधिक पूरा करती है। पगड़ी गर्मियों में सिर को धूप तथा लू से बचाती है, जाड़े में सर्दी से और बरसात में पानी से। गर्मियों के समय जब हम घर में हों और समय ठंडा हो, टोपी पहनी जा सकती है। फैल्ट टोपियों में हवा के जाने के लिए छिद्र होने चाहिए। पगड़ी का रंग, जैसा मैंने अभी बताया है, हरा, सफेद या ख़ाकी होना चाहिए। जो लोग अँगरेज़ी टोपी पहनते हैं, उनके लिए बाहर जाते समय ख़ाकी कपड़े की सोलरहैट, जो काक के गूदे की बनी होती है, पहननी उचित है क्योंकि यह भी साफे की भाँति सिर को सूर्य की गर्मी से बचाती है।

जूता और मोजा—पैर की पोशाक में दो वस्तुएँ होती हैं—एक जूता दूसरा मोजा। जूते बहुत प्रकार के होते हैं। जूतों के विषय में ध्यान देने योग्य बात यह है कि वह कोमल, मजबूत तथा ढीले हों। जूते का पंजा पतला न हो। नर्म चमड़े और चौड़े पंजे के जूतों में पैर को आराम मिलता है। पैर के आराम तथा सौंदर्य का विचार रखते हुए

छोटे बच्चों को जूता पहनने की अधिक पाबन्दी न करानी चाहिए, परन्तु जहाँ वह दौड़ें फिरें, वह जगह साफ़ सुथरी होनी चाहिए। स्वतन्त्रता में बच्चों के पाँव यथेष्ट बढ़ते हैं और जूते के काटने तथा अन्य प्रकार के कष्टों से बचे रहते हैं। मोजे यदि पहने जाएँ तो ऊनी पहनने चाहिए। ऊन, रेशम और सूत के मिले मोजे भी पहने जा सकते हैं। मोजे प्रतिदिन धो डालने चाहिए और शीघ्र बदलने चाहिए। मोजे बाँधने के लिए लोग रबर की गैटिस लगाते हैं, किन्तु यह हानिकारक है। इससे पैरों की रगें दबती हैं और खून रुकता है। मोजों को अटकाने के लिए रबड़ के इलैस्टिक लगाने चाहिए। ये मोजों को थाम लेते हैं और रगें भी कष्ट से बच जाती हैं।

स्त्रियों के वस्त्र—स्त्रियों के लिए साड़ी या धोती सबसे अच्छी पोशाक है। हमारे देश में अब साड़ी का पहनावा बढ़ता जाता है और सभी सभ्य समाज इसको पसन्द करते हैं। यहाँ तक कि बहुत-सी मुस्लिम बहनें भी साड़ी पहनने लगी हैं। दूसरे देशवाले भी साड़ी की पोशाक की प्रशंसा करते हैं। वहाँ की कुछ महिलाओं ने उसे अपना भी लिया है।

साड़ी के साथ नीचे पेटीकोट या साया पहनना अच्छा है। पहनने के अन्य कपड़ों में जम्फ़र, कमीज या कुर्ता उत्तम है। साड़ी के साथ जम्फ़र का जोड़ा भी है। पहनने के और भी अनेक वस्त्र हैं। वे सब अपनी रुचि के अनुसार पहने जा सकते हैं। वस्त्रों के बारे में तुम्हें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वह अपने देश के हों। देशी वस्त्र पहनने से अपने देश का धन अपने देश में रहता है।

पोशाक के सम्बन्ध में तुम्हें पर्याप्त ज्ञान हो गया। अब कपड़ों की सफ़ाई, सावधानी तथा मरम्मत के सम्बन्ध में कुछ बातें सीख लो।

ओढ़ने और बिछाने के वस्त्र—ओढ़ने और बिछाने के वस्त्रों की स्वच्छता की ओर भी विशेष ध्यान देना आवश्यक है। साफ़ न रखने

से विशेष कर जाड़ों में, उनमें जूँ इत्यादि कृमि पड़ जाते हैं। सबसे उत्तम यह है कि लिहाफ़ और गद्दे दोनों पर मलमल या लट्ठे के गिलाफ़ चढ़ा दिये जायँ और उनको मैला होते ही धुलवा दिया जाय। इसी प्रकार तकिये के गिलाफ़ को भी, कम से कम, सप्ताह में एक बार अवश्य धुलवा देना चाहिए।

गर्मियों में अधिक वस्त्रों की आवश्यकता नहीं होती। ओढ़ने के लिए एक साधारण चादर और बिछाने के लिए एक दरी और उस पर चादर पर्याप्त होती है। इनको भी मैला होते ही धुलवाना आवश्यक है।

वस्त्रों की सफाई—वस्त्रों को स्वच्छ रखना भी उतना ही आवश्यक है, जितना कि शरीर को। यदि स्वच्छ शरीर पर गन्दे वस्त्र पहने जायँ तो शरीर को स्वच्छ करना न करना एक समान है। शरीर को मैले वस्त्रों से वैसी ही हानि पहुँचती है, जैसी कि गन्दे चर्म से। वस्त्रों से मैल चर्म में पहुँचता है और वहाँ से शरीर में जिससे रोग उत्पन्न होते हैं।

वस्त्रों को स्वच्छ रखना बहुत सरल है। इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि बहुत से वस्त्र बनवाये जायँ, या उन पर अधिक व्यय किया जाय। सबसे प्रथम यह आवश्यक है कि वस्त्रों के रखने या टाँगने का एक विशेष स्थान होना चाहिए। पहनने के वस्त्र सदा खूँटी पर टँगे रहें और दूसरे वस्त्र सन्दूक़ में रक्खे रहें। कमरे में जहाँ-तहाँ वस्त्रों को डाल देने से वह साफ़ नहीं रह सकते। जिस समय किसी वस्त्र के पहनने की आवश्यकता हो उस समय उसको खूँटी से उतारकर पहन लो और जब उसको शरीर से उतारो तब फिर खूँटी पर टाँग दो। जब स्कूल से आओ अथवा टहलकर लौटो, तब कोट को उतारकर उसको बुरुश से साफ़ करके खूँटी पर टाँग दो। इसी प्रकार क़मीज़, टोपी इत्यादि को भी साफ़ करके टाँगो। जो वस्त्र तुम सबसे नीचे पहनते हो, जैसे बनियायन या गञ्जी, उसको नित्य-प्रति धोना चाहिए। दूसरे

सब वस्त्र सप्ताह में एक बार धोबी से धुलाना चाहिए। धोती को स्नान करने के पश्चात् स्वयं धो डालो और एक सप्ताह के पश्चात् उसको धोबी से धुलवाओ। मुँह, नाक इत्यादि को पोंछने के लिए जेब में रूमाल रक्खो, इन कामों के लिए धोती या कमीज का कभी प्रयोग न करो। रूमाल को प्रत्येक दो दिवस पर स्वयं धो डालो और मैला हो जाने पर धोबी को धुलने को दे दो।

जाड़े के दिनों में लोग प्रायः वस्त्रों को कम धुलवाते हैं। कोट के कालर पर चारों ओर मैल की एक रेखा बन जाती है। इसी प्रकार रुई की रुडी या मिरजई जाड़े भर साफ नहीं होने पाती। यदि कमीज गर्म कपड़े की बनी हो तो उसकी भी यही दशा होती है। मैले वस्त्रों को पहनना बहुत बुरा है। उनको मैले होते ही तुरन्त धुलवाना चाहिए।

लोगों का विचार है कि कपड़ा बार बार धुलने से फट जाता है, किन्तु बात ऐसी नहीं है। वास्तव में मैले कपड़े जल्दी गलते हैं और यदि ऐसा होता भी तो क्या था? कपड़े से स्वास्थ्य कहीं अधिक प्यारा है। जितना रुपया हम रोगी होकर दवा-इलाज में खर्च करते हैं उससे धुलाई के दाम या वस्त्र का मूल्य कहीं कम होता है। मैले कपड़ों में मैल के अतिरिक्त दूसरी बुराई, जिससे स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है, यह होती है कि धूल मिट्टी के कणों के साथ बहुत से कृमि उड़कर उनके छिद्रों में जम जाते हैं। तुम पूछोगे तन्तुओं में कृमि कहाँ से आये। किन्तु तनिक विचार करने पर ज्ञात हो जायगा कि ये कृमि नाक, थूक, मूत्र इत्यादि शरीर की भिन्न-भिन्न गन्दगियों के साथ मिट्टी में मिल जाते हैं और जब हवा के साथ गर्द उड़ती है तब उड़कर बारीक तन्तुओं में लिपट जाते हैं।

गन्दे लोगों के कपड़ों में मैल के कारण जुएँ और चीलरें पड़ जाती है, जो दिन रात इन लोगों का खून चूसा करती हैं। ये बेचारे अपना

शरीर नाखूनों से खुजलाया और नोचा करते हैं। यह कष्ट मैले मनुष्यों तक ही परिमित नहीं, वे मनुष्य भी जो गन्दे मनुष्यों के साथ उठते बैठते है या उनसे सम्बन्ध रखते है इसमें जकड़े जाते हैं। जिन बच्चों की दाइयाँ मैली कुचैली रहती हैं अथवा जिन मनुष्यों के नौकर गन्दे होते है उनके वस्त्रों में जुएँ पड़ जाती है। यद्यपि ऐसे बच्चों के माता-पिता स्वय साफ रहते है और उनके बच्चे भी बहुत साफ-सुथरे रखे जाते हैं, किन्तु गन्दे सेवकों के मेल-जोल से इन्हें भी कष्ट में फँसना पडता है। इसलिए आवश्यक है कि मनुष्य स्वय साफ-सुथरा रहे और अपने नौकर-चाकरों को स्वच्छ रक्खे। किसी का उतरा हुआ कपडा—जब तक उसे खूब धो न लिया जाए—न पहनना चाहिए, इससे संक्रामक रोगों का डर रहता है।

बम्बई, गुजरात आदि प्रान्तों में औरते प्राय नित्य अपने और अपने बाल-बच्चों के कपडे घर ही में साफ कर लेती है। यह बहुत अच्छा रिवाज है। इससे उनको सदा साफ कपड़े पहनने को मिलते हैं। रोज कपड़े धो लेने से वे मैले भी कम होते है। कम से कम धोती और नीचे की कुर्ती वगैरह तो रोज ही साफ कर लेनी चाहिए।

रात्रि के पहनने के कपड़े भी दिन में पहनने के कपडों से अलग होने चाहिए। रात्रि को ढीले कपड़े पहनने चाहिए और दिन में उन्हें धूप में डाल देना चाहिए। ये कपडे भी साफ रखने चाहिए। वस्त्रों में पहनने ओढ़ने के कपड़ों का साफ रखना ही ज़रूरी नहीं है, तुम्हें अपना बिस्तर भी साफ रखना चाहिए, क्योंकि उसके गन्दा रहने से भी स्वास्थ्य पर बुरा असर पडता है। बिस्तर को दूसरे-तीसरे दिन धूप में डाल देना चाहिए और उसकी बिछाने तथा ओढ़ने की चादरों और तकिया के गिलाफ को मैला होने पर बदल देना चाहिए।

वस्त्रों की रक्षा—सफाई के साथ वस्त्रों की सावधानी भी आवश्यक है। कुछ बच्चे ऐसे गन्दे होते हैं कि वे नाक, थूक, मैल-कुचैल सब

कुछ; आस्तीनों में पोंछते हैं। उनके कपड़ों में जगह जगह स्याही के धब्बे पड़े होते हैं। ऐसे बच्चों से हर मनुष्य घृणा करता है। नाक और मुँह पोंछने के लिए एक रूमाल जेब में रखना चाहिए। पल्ला या बाँह नाक मुँह पोंछने के लिए नहीं है। लिखने-पढ़ने में स्याही का धब्बा कपड़ों पर न पड़ना चाहिए। रोशनाई कागज पर लिखने के लिए है, न कि हाथ मुँह, कपड़े, यहाँ तक कि दीवारें और जमीन का फ़र्श तक साफ़ करने के लिए। क़लम में इतनी स्याही क्यों ली जाय जो छिड़कने की नौबत आये और चीजें खराब हों।

कपड़ों को ऐसी जगह न रखना चाहिए जहाँ मिट्टी और धुआँ हो। ऐसी जगह रखने से कपड़े शीघ्र मैले हो जाते हैं और उनमें दुर्गन्ध आने लगती है। धुएँ से वस्त्र पर मैल ही नहीं जमती, उसका रंग भी खराब हो जाता है।

ऊनी कपड़ों तथा मोटे सूती कपड़ों को प्रतिदिन ब्रुश से साफ़ करना चाहिए, जिससे उनपर धूल मिट्टी न जमे। साधारण मनुष्य वस्त्रों को बुरी तरह रखते हैं। कपड़े उतारकर चारपाई या कुर्सी इत्यादि पर डाल देते हैं जिससे एक तो उनकी तह खराब हो जाती है और दूसरे उनमें मोड़-तोड़ पड़ जाते हैं। सदा वस्त्रों को तह करके रखना चाहिए। प्रतिदिन पहनने के कपड़ों को खूँटी पर टाँग देना चाहिए जिससे वे खराब न हों और उन्हें हवा लगती रहे। शयन के वस्त्रों और बिस्तरों को प्रतिदिन धूप में डाल देना चाहिए। इससे धूप और वायु जो प्रकृति की ओर से शुद्धि के यन्त्र है, उनके कीटाणुओं को नष्ट कर देते हैं। जिस प्रकार शरीर की सावधानी आवश्यक है उसी प्रकार वस्त्र की सावधानी भी आवश्यक है। ऊनी वस्त्रों की तहों में नीम की पत्ती रख देने से कीड़े नहीं लगते। कुछ लोग सर्प की केंचुली भी रखते हैं। आजकल फनैल की गोलियाँ भी इस काम के लिए बरती जाती हैं, किन्तु गोलियाँ बहुत-सी होनी चाहिए। छठे महीने कपड़ों को

खोलकर देख लेना चाहिए। यदि ऊनी वस्त्रों की सावधानी न रखी जाय तो उनमें कीडा लग जाता है और वे पहनने योग्य नहीं रहते।

वस्त्रों की मरम्मत—कभी-कभी कपडे में जरा सा सूराख़ हो जाता है या वह किसी स्थान से मसक जाते हैं। यदि तत्क्षण मरम्मत न की गई तो दोष बढ़ जायगा। इसलिए जहाँ सूराख़ हो गया हो या जहाँ से कपड़ा मसक गया हो वहाँ तुरन्त ठीक कर देना चाहिए। अच्छा तो यह हो कि जब कपड़े धोबी के यहाँ से धुलकर आयें उसी समय देख लिये जायँ और फटे हुए वस्त्रों की जगह नये वस्त्र रख दिये जायँ। जहाँ कपडा फटा हो या उसमें खोंच लग गई हो वहाँ सी देना चाहिए। फटे वस्त्र पुकार-पुकार कर कहते हैं कि उनके पहननेवाला जाहिल और बदतमीज आदमी है। मनुष्य उसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। यदि तुम मरम्मत का काम स्वयं नहीं जानते तो दर्जी की सहायता लो। बढिया कारीगर फटे कपड़े को बिलकुल ठीक कर देता है। यदि कपड़ा फट जाय तो उसे तत्क्षण सी लो। यदि किसी स्थान पर अधिक घिस गया हो तो पैवन्द लगा लो। याद रखो मैले कपड़े से पैवन्द लगा, परन्तु उजला कपडा कहीं अच्छा है। मैले-कुचैले आदमी को कोई मनुष्य अपने पास नहीं बिठाना चाहता, दूसरी ओर एक सफेदपोश हर मनुष्य के पास बेरोक उठता-बैठता है। किसी को यह विचार तक नहीं होता कि उसके वस्त्र कैसे है, महीन हैं या मोटे, पैबन्द लगे हैं या साबित। प्रगट में आदर वस्त्रों से है और यथार्थ मान योग्यता से। विद्या का अनुमान उस समय तक नहीं होता जब तक किसी से जान-पहचान न हो। पर वस्त्रों पर प्रत्येक मनुष्य की दृष्टि पड़ती है। यदि मूल्यवान् वस्त्र न हों तो न सही, वे स्वच्छ और सलीके के अवश्य होने चाहिए। यह बात उस समय तक नहीं हो सकती जब तक मनुष्य अपने वस्त्रों को सावधानी से न रखे।

प्रश्न

(१) वस्त्रों का क्या प्रयोजन है ? पहनने के वस्त्रों में क्या गुण होने चाहिए ?

(२) ऊन, सूत और रेशम के बने हुए वस्त्रों के भिन्न भिन्न गुण बताओ ?

(३) रङ्ग का वस्त्र पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

(४) सिर पर कैसा वस्त्र पहनना चाहिए ?

(५) जूते किस प्रकार के होने चाहिए ?

(६) वस्त्रों को स्वच्छ रखना क्यों आवश्यक है ? उनको स्वच्छ करने का उपाय बताओ। धूप में वस्त्रों को सुखाने से क्या लाभ है ?

———

अध्याय ६

हमारा घर

मकान की उपयोगिता—एक विद्वान् का कथन है कि 'मकान रहने के लिए बनाये जाते हैं न कि देखने के लिए।' इस कथन का साराश यह है कि मकान की सुन्दरता पर इतना ध्यान देना आवश्यक नहीं है जितना उसकी स्थिति, वातावरण, रहने की सुविधा आदि पर। हमारा जीवन मकान से इतना सम्बन्धित हो गया है कि हम उसके बिना रह ही नहीं सकते। 'प्यारा घर'—शायद इससे अधिक उल्लास और आशा का भण्डार दूसरे शब्दों में नहीं। जब हमारे घरों का इतना महत्त्व है, विशेष कर स्त्रियों के लिए जिनका सारा समय घर ही में व्यतीत होता है, तब उनके विषय में निम्नलिखित बाते जानना अत्यन्त आवश्यक है।

मकान की स्थिति—एक आदर्श मकान की स्थिति तो यह है कि वह किसी देहात में हो, परन्तु वह देहात शहर से दूर न हो। देहात की सुन्दरता और ताज़गी और शहर की शिक्षा, विनोद और सामाजिक जीवन की सुविधाएँ ऐसे आदर्श मकान में मिल सकेंगी। परन्तु ये सब बाते हमारे काबू में नहीं हो सकतीं, इसलिए हमें इतने से ही सन्तोष कर लेना चाहिए कि शहर या देहात जहाँ भी हमारा मकान हो, उस स्थान का पास-पडोस गन्दा न हो, उसके निकट ऐसे कारबार न होते हो जहाँ धूल अथवा धुएँ के बादल हरदम छाये रहते हों। बिना किसी रोक-टोक के खुली हवा और धूप का आना जाना बहुत आवश्यक है।

शहरों में हमें बने बनाये किराये के मकानों में रहना पड़ता है चाहे वे सुविधाजनक हों अथवा असुविधाजनक, परन्तु यदि तुम्हें कभी अपना निजी मकान बनवाने का अवसर प्राप्त हो तो निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

मकान की भूमि—जिस जमीन पर मकान बनाया जा रहा हो, उस पर ध्यान देना आवश्यक है, क्योंकि मकान का बरामदा उसकी नींव ही पर है। पक्के मकान के लिए पुख्ता नींव उसी तरह आवश्यक है जिस प्रकार आदर्श मस्तिष्क के लिए आदर्श शरीर। जिस जमीन पर मकान बन रहा है, वह यदि ककरीली है तो वहाँ का जल बहुत जल्द बह जायगा, दीवारों पर नमी नहीं आयेगी और मकान का पास-पड़ोस गन्दा भी कम होगा। बलुई जमीन भी अच्छी होती है, लेकिन वहाँ की नींव बहुत गहरी खोदनी पड़ेगी। मटियारी जमीन मकान के लिए अच्छी नहीं होती, क्योंकि मिट्टी जल को सोख लेती है और वहाँ जल बहुत देर तक बना रहता है। परन्तु यदि ऐसी जमीन में मकान बनाना ही पड़े तो मकान से जरा दूर एक खाई भी होनी चाहिए, ताकि बरसाती जल एक जगह न ठहरे और बह जाए। यह ध्यान रखना चाहिए कि खाई मच्छरों को उत्पन्न कर हमारी समस्या को बढ़ा न दे। अच्छा तो यह होगा कि खाई न खोदकर स्थान-स्थान पर जमीन में लोहे के पीपे जो काफी चौड़े हों गाड़े जायँ। वे जल को इकट्ठा कर लेंगे और वह जल वहाँ से दूर ले जाया जायगा।

मकान बनाते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि मकान के दरवाज़ा और खिड़कियों का मुँह किस दिशा की ओर हो। मकान ऐसा हो जिसमें बारहों महीने आराम से रहा जा सके। गरमी में ठंढे कमरे रहे और जाड़ों में गर्म। स्थान-विशेष के अनुसार इसमें परिवर्तन होना आवश्यक है। अधिकतर हमारे यहाँ के मैदानों में जो मकान बनने चाहिए, उनकी स्थिति उत्तर दिशा में होनी चाहिए, यद्यपि यह जरूरी

नहीं है कि उसका मुख्य द्वार उसी दिशा में हो। अपने प्रान्त में पछुवा और पुरवा हवाएँ चलती हैं, इसलिए यहाँ मकान बनाते समय इसका ध्यान रखना आवश्यक होगा कि खिड़कियों का निकास ऐसा हो कि हम दोनों हवाओं का उपयोग कर सके। समुद्र के किनारेवाले अथवा पहाडी देशों के निवासियों को इसके विपरीत अपने मकान बनाते समय हवाओं के उत्तरी अथवा दक्षिणी रुख पर भी ध्यान रखना होगा।

मकान की कुर्सी—मकान को नमी से बचाने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि उसकी नींव में मिट्टी न डालकर ईंट के टुकड़े, ककरीट और पत्थर खूब अच्छी तरह कूट दिये जायँ और उसकी कुर्सी काफी ऊँची हो। इसके बाद जब दीवालें जमीन की सतह से ऊँची आ जायँ तब फिर उनके ऊपर ककरीट, मिट्टी और पत्थर कूटे जायँ। इससे बरसात के जल से मकान में नमी न पहुँचेगी, साथ ही उस चबूतरे को कमरे के फर्श की तरह सीमेंट लगाकर इस्तेमाल कर सकते हैं। मिट्टी के फर्श बहुत जल्द खुद जाते हैं, उन्हे गोबर से बार-बार लीपना पडता है। ल डी के फर्श में दीमक लगने का डर रहता है, इससे पक्का होना आवश्यक है।

मकान के कमरे—बहुत से मकान देखने में तो बहुत सुन्दर होते हैं, परन्तु वे इस प्रकार बने होते हैं कि उनमें रहने की सुविधा नहीं होती। पहले मनुष्य का जीवन बहुत साधारण था, वह एक ही कमरे में रहकर गुज़र कर लेता था। अब भी भारतवर्ष में हज़ारों लोग इसी तरह रहते हैं, लेकिन जीवन की जरूरतें बढ़ती जा रही हैं। उस दृष्टि से और स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से यह सम्भव नहीं है कि हम जिस कमरे में रहें, वहीं खाना पकाये, वही सोयें, वहीं बैठकर अपना काम भी करें और रात को एक कोने में अपने मवेशी भी बाँध दें। गाँव में मध्यम श्रेणी के लोगो के मकानों में पहले बरामदा, फिर पैर, फिर

आँगन, इसके बाद रसोईघर, दो एक कमरे उठने बैठने और सोने के लिए अवश्य होते हैं। लेकिन उनमें अधिकतर कोई क्रम नहीं होता। हमें रोजाना काम करने के लिए स्थान चाहिए, विश्राम के लिए स्थान चाहिए, मित्रों और रिश्तेदारों के उठने-बैठने के लिए स्थान चाहिए। इसके अतिरिक्त गृहिणी को गृह प्रबन्ध के लिए स्थान चाहिए। आजकल आदर्श मकान वही है जहाँ इन सब कामों के लिए काफ़ी स्थान हो, गृहिणी को मकान का पिछला भाग दे दिया जाय, उसमें एक ओर रसोईघर और भंडारघर, एक ओर शौच और स्नान घर, एक ओर विश्राम करने और सोने के कमरे हों। घर के मालिक को सामने का हिस्सा अपना काम करने और लोगों से मिलने जुलने के लिए काफ़ी सुविधाजनक है। रसोईघर का धुआँ बाहर निकलने के लिए एक चिमनी का होना आवश्यक है।

हमारा घर कितना बड़ा हो, यह अपनी आवश्यकताओं और सुविधाओं के ऊपर निर्भर है, परन्तु इसका ध्यान रखना चाहिए कि भवन-निर्माण-कला के विशेषज्ञ ही आर्थिक स्थिति और घर के विस्तार को दृष्टिगत रखते हुए घर का उचित ढाँचा या प्लान बना सकते हैं। अनुभवशून्य धनी मकान बनवाने में रुपया तो काफ़ी ख़र्च कर डालते हैं, परन्तु उसमें न तो कोई नियमितता रहती है और न सुविधा ही। सोने के कमरे की बगल में बैठक और भंडारघर के पास स्नान गृह अनुभवशून्यता प्रकट करते हैं। इसलिए मकान बनवाते समय हमें भवन निर्माण-कला विशेषज्ञ से सलाह लेनी चाहिए।

अमरीकन और अँगरेजी ढंग से बने हुए मकान आरोग्यता के विचार से अधिक लाभदायक होते हैं। इन मकानों की विशेषता यह होती है कि उनमें धूल या गर्द जमने का कोई अवसर नहीं होता है। इन मकानों के घुमावों की जगहें गोल होती हैं। कानिस, ताक खुली हुई आलमारियों का पूर्णत अभाव होता है। बनावट सादी और सुहावनी होती है।

फूल पत्तियाँ, बेल-बूटे, कटावदार जालियाँ जिन पर आसानी से धूल जम जाती है, प्रायः इन मकानों में नहीं होतीं। सीमेन्ट और चूने से बनाई गई सुन्दरता का स्थान रङ्गों और कलाकारों की कूचियों ने ले लिया है। धूल और हवा में मिले हुए कीड़ों से पूर्णतः बचना तो नितान्त असम्भव है, फिर भी जितने रोग हम अस्वस्थ वायुवाले मकानों से ग्रहण करते हैं उतने और कहीं नहीं। अत मकान की दीवारों, दरवाजों और खिडकियों में कोई नुकीली, तिरछी और महराबदार, ऊँची-नीची बनावट न होनी चाहिए। दीवारें और दरवाजे बिलकुल सपाट हों जिससे उनमें धूल जमने का कोई अवसर न हो।

स्वच्छ वायु—हम ऊपर बतला चुके हैं कि मकान में स्वच्छ वायु और धूप का आना बहुत ज़रूरी है। तुम जानती हो हवा क्या चीज है? हवा में लगभग $\frac{1}{5}$ भाग आक्सिजन और लगभग $\frac{4}{5}$ भाग नाइट्रोजन रहता है। कार्बोनिक एसिड गैस, पानी की भाप और पडोस के वातावरण की गैसों के कण भी उसमे रहते है। अब तुम समझ गई होगी कि हमारा पास-पडोस क्यों साफ़ सुथरा होना चाहिए। यदि आस-पास सड़ी गली चीज़े या मलमा पडा रहेगा तो कमरे में आनेवाली हवा में उन चीज़ों की गैसों का अश जरूर शामिल होगा और हमारे स्वास्थ्य को नुक़सान पहुँचायेगा। इसके विपरीत यदि आस-पास कोई बाग-बगीचा होगा तो फूलों की सुगन्ध के कण वायु के साथ हमारे कमरे में पहुँचेंगे और हमारे दिमाग को ताजगी देंगे।

क्या तुम जानती हो कि प्रत्येक मनुष्य को कितनी हवा की आवश्यकता होती है? प्रत्येक स्त्री-पुरुष को एक घटे में ३,००० घन-फ़ुट हवा चाहिए। इसका आशय यह है कि हमारे सोने और उठने-बैठने के कमरे काफ़ी लम्बे-चौडे हों, उनमें दरवाजे, खिडकियाँ और रोशनदान हों, दरवाज़े और खिडकियाँ दिन में काफ़ी समय तक अवश्य खुली रहें, ताकि गन्दी हवा बाहर निकल जाय।

यही आदेश धूप के लिए है। हमारे लिए धूप भी उतनी ही आवश्यक है जितना भोजन और जल। यह बहुत से कीटाणुओं को नष्ट करती है जो हमारे स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हैं। जिन कमरों से लगे हुए बरामदे हों उनमें यदि खिड़कियाँ न भी हों तो भी ताज़ी हवा और धूप काफ़ी आती रहती है।

मकान के सम्बन्ध में हवा और धूप के साथ-साथ जल के विषय में भी काफ़ी जानकारी की आवश्यकता है। शहरों में तो अधिकतर बड़े बड़े मकानों में म्युनिसिपैलिटी की ओर से साफ़ जल का प्रबन्ध रहता है, परन्तु कस्बों और देहातों में लोगों को कुओं पर निर्भर रहना पड़ता है। यह आवश्यक है कि मकान के पास ही कुआँ हो। उसके साथ बाग या छोटा सा घरेलू उपवन जिसमें कुछ फूल पौधे शाक आदि लगा सकें लगाने में बड़ी सुविधा होती है।

मकान की सजावट—मकान बन जाने के बाद उसके सजाने का प्रश्न आता है। मनुष्य का सहज स्वभाव है अपने आसपास सुन्दर वस्तुएँ देखकर प्रसन्न होने का। फिर जिस मकान में हमें अपने जीवन का अधिक समय व्यतीत करना है उसे सुन्दर बनाना कौन पसन्द न करेगा? सम्भव है, हमारा घर ऐसे पास-पड़ोस में हो जहाँ के लोग स्वच्छता के प्रेमी न हों। सम्भव है, हमारा मकान कला की दृष्टि से सुन्दर न हो, ये बातें हमारी शक्ति के बाहर हो सकती हैं परन्तु उसका भीतरी भाग तो हम अपने शौक के अनुसार सजा सकते हैं। हमें अपने घर को न तो म्यूज़ियम बनाना है, न राजमहल, हमारा उद्देश्य केवल इतना है कि जब हम बाहर से आकर अपने कमरे में प्रवेश करें तब बैठते ही हमारी थकावट दूर होनी शुरू हो जाय और यह कब सम्भव है? तभी, जब हमारा चित्त अपने चारों ओर की वस्तुओं को देखकर प्रसन्न हो।

सजावट का अर्थ—अब यह प्रश्न उठता है कि आखिर सजावट

के क्या मानी है ? प्रकृति अपने रङ्गों से फूलों में कैसी अठखेलियाँ करती है ! कलाकार अपनी तूलिका से रेखाओं में कैसा जीवन भर देता है ! थोड़े से रङ्ग, कुछ रेखाएँ और चित्रकार की कल्पना—बस यही तो चित्र को सजीव बनाते हैं। अपने कमरों को सजाते समय हमें भी इन्हीं से काम लेना पडेगा। फर्श पर लाल दरी बिछाकर दीवारों पर काला रङ्ग पोत दिया जाय तो क्या हो ? बाहर से आते ही दिमाग पर एक हल्का-सा धक्का लगेगा, परन्तु हम अपने कमरे की दीवालों में ऐसे रङ्ग पुतवाएँ जिनसे आँखों को शीतलता मिले तो कितना अच्छा हो।

दीवालों का रंग—लाल, पीले और इन्हीं से निकलनेवाले रङ्गों से गर्मी का आभास होता है, हरे, भूरे, नीले और इनसे निकलनेवाले रङ्गों से शीतलता का। सफ़ेद रङ्ग की शोभा उसी कमरे में रहती है जहाँ प्रकाश की गुञ्जाइश कम हो। ऐसे कमरे में जिसमें ख़ूब प्रकाश आता हो, ज़रा गहरा रङ्ग होना चाहिए। परन्तु जहाँ पेड़ों की झुरमुट और बरामदे के कारण कम प्रकाश आये, उसमें हलका रंग ही शोभा देता है। निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि फलाँ रङ्ग फलाँ कमरे में होना चाहिए, क्योंकि हमारी सौन्दर्य-सम्बन्धी भावनाओं में समय के अनुसार परिवर्तन होता रहता है, परन्तु यह तय है कि अनुभव से इसका ज्ञान आ जाता है।

हमारे कमरे की खिडकियों और दरवाज़ों के रङ्ग ऐसे हों जो दीवारों के रङ्ग से मिल जुल जायँ। अगर वे काफ़ी सुन्दर लकडी के बने हों तो उन पर वार्निश कर देना ही काफ़ी होगा।

छत का रंग—दीवारों के रङ्ग के बाद कमरे की छत की रँगाई का प्रश्न आता है। छत का रङ्ग वही हो सकता है जो दीवालों का हो, परन्तु यह जरा गहरा होना चाहिए। छत के बेल-बूटे या खिड़की और दरवाज़े के ऊपर के बेल-बूटे दूसरे ही हलके रङ्ग से रँगे जा सकते है।

छत के नीचे की दीवालें कुछ इंचों तक किसी और रङ्ग से रँगी जा सकती हैं अथवा फर्श से कुछ इंचों तक दीवाल रँगने में और कोई रङ्ग प्रयोग में आ सकता है।

बड़े देशों में लोग कागज का प्रयोग कमरे की शोभा बढ़ाने के लिए करते हैं। अच्छे किस्म का कागज तीन-चार साल तक काम देता है परन्तु अपने यहाँ की जलवायु उसके अनुकूल नहीं पड़ती। हमें उसे साल में कम से कम दो बार बदलना पड़ेगा।

यह तो मकान के कमरों की सजावट हुई केवल रङ्ग से, अब हमें यह देखना है कि उन कमरों की सजावट का और क्या सामान रखा जा सकता है। इसके लिए यह विचारना आवश्यक है कि (१) हमें उन्हें यूरोपियन शैली के अनुसार सजाना है या देशी शैली पर। (२) कमरे में कौन कौन-सा फर्नीचर रहेगा। (३) जब कमरा पूरी तरह से सजाया जाय तब दर्शकों पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है।

विदेशी और देशी शैलियाँ—यूरोपियन और देशी दोनों ही शैलियाँ शीत और उष्ण जलवायु की दृष्टि से अच्छी हैं, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि देशी शैली यूरोपियन शैली की अपेक्षा कम खर्चीली है सादा है और कम भड़कीली है। एक में वायु और शीतलता और दूसरी में गर्मी और ताजगी के अंश निहित हैं। इंगलैण्ड में किसी भी कमरे में घुसते ही अँगीठी की लपक आकर्षित करती है, अपने यहाँ रहते हुए बरामदे में होकर आती हुई ताजी हवा। हम जमीन पर चटाई बिछाकर बैठ सकते हैं परन्तु यूरोप में? वहाँ का ठंडा फर्श हमारे लिए बर्फ है, मेज कुर्सी के बिना वहाँ सहूलियत से बैठना सम्भव नहीं। बहुत से लोग देशी और यूरोपियन दोनों शैलियों के अनुसार कमरे सजाते हैं, यह किसी सीमा तक ठीक भी है परन्तु निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि कमरे किसी एक ही शैली के अनु- सजाये जायँ। अधिकांश में यह अपने रहन-सहन के

है। इतने पर भी सदैव स्मरण रखना चाहिए कि हमें नक़ल की आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता है आराम और सुविधा की।

सजावट की चीजें अपने उचित स्थान पर ही शोभा देती हैं। उन्हें अनुचित स्थान पर रखने से शोभा की अपेक्षा मनुष्य के असंस्कृत सौन्दर्य ज्ञान का विज्ञापन होता है। रसोईघर में कपड़े की आलमारी और आराम करने की कुर्सी क्या शोभा देगी? और चीनी मिट्टी के बरतन क्या ड्राइंगरूम की शोभा बढ़ायेंगे? इसलिए कौन-सा फ़र्नीचर किस कमरे में रहना चाहिए, इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए।

यह सदैव स्मरण रहे कि अँगरेजी तर्ज पर बने हुए मकानों में अँगरेजी ढंग की सजावट शोभा देती है और देशी शैली के मकानों में देशी सजावट सुन्दर प्रतीत होती है। इसके विपरीत शोभा की अपेक्षा कुरूपता ही बढ़ती है।

सामान ख़रीदने में हमें गुदड़ीबाजार की शरण न लेनी चाहिए। फैशन के प्रेमी, परन्तु अनुभवशून्य लोग अँगरेजों का नीलाम किया हुआ सामान ख़रीद लेते हैं और उसका उचित स्थान और प्रयोग न जानने के कारण हास्यास्पद बनते हैं।

सजावट का आशय आँख को शान्ति और ताजगी देने का है। यदि किसी प्रकार की सजावट से चित्त प्रसन्न नहीं होता, तो उसमें कोई न कोई कमी अवश्य है। सामान चाहे जितना कम हो, उसको उचित स्थान पर रखना और उसको स्वच्छ रखना सजावट के दो प्रधान नियम हैं।

परन्तु यह तो हुआ एक धनाढ्य का गृह जिसको जीवन के सुख की सारी दरवाज़े पर उपलब्ध हैं, परन्तु जो भारत एक दलित और दरिद्र देश

बना दिया गया है, जहाँ मुट्ठी भर अन्न, शरीर ढाँकने के लिए वस्त्र और रहने के लिए मकानों का अभाव है उनके सामने यह योरोपीय आदर्श व्यर्थ है। हाँ, जिनके पास साधन हो और नए मकान का निर्माण कराना हो तो ठीक है। अब हमें यह देखना है कि मकान जैसे भी हमारे पास हैं उन्हें किस प्रकार सुन्दर बनाया जा सकता है? किस प्रकार उन्हीं मकानों में स्वस्थ होकर रहा जा सकता है?

सुन्दरता केवल आडम्बरों और सामग्रियों में ही निहित नहीं है। वास्तविक सुन्दरता स्वच्छता में है जिसका वर्णन आगेवाले पाठ में दिया जायगा। मकान छोटा हो और बहुत से कमरे न हों तो भी सामान को यथास्थान रखकर सुन्दर बनाया जा सकता है। साधारण गृहस्थीवाले व्यक्ति के पास भी भारत में दो कमरे एक बरामदा, पाखाना तथा छोटी सी छत या आँगनवाला मकान होता है। इस मकान को ही हम सुन्दरतम बना सकते हैं। व्यर्थ का सामान, अधिक मेज कुर्सियाँ तथा और फर्नीचर ऐसे मकान में रहनेवाले को अपने साथ नहीं रखना चाहिए। भारतीयता में अँगरेजियत न घुसानी चाहिए। एक कमरे को जो भीतर की ओर हो, परदा डालकर दो भागों में बाँट दीजिए। एक ओर बक्स, सन्दूकची तथा अन्य सामान रखिए। उसी भाग में वस्त्र पहनने के लिए थोड़ी सी जगह छोड़ दीजिए। एक चटाई गोल की हुई रक्खी रहे जिसे वस्त्र पहनने या कपड़े आदि पहनने के लिए बिछा लिया जाय और फिर रख दिया जाय। फर्श बिछाना हानिकारक है, क्योंकि सामान की अधिकता से ठीक से साफ न किया जायगा। सन्दूक आदि सामान ईंटों पर जमीन से ऊँचे पर रक्खा जाय जिससे न तो सामान ही खराब हो और न झाड़ू लगाने में कठिनाई हो। एक ओर शीशा हो और उसी के पास एक छोटी मेज या दीवार पर जड़े हुए तख्ते पर साबुन

है। इतने पर भी सदैव स्मरण रखना चाहिए कि हमें नक़ल की आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता है आराम और सुविधा की।

सजावट की चीजें अपने उचित स्थान पर ही शोभा देती हैं। उन्हें अनुचित स्थान पर रखने से शोभा की अपेक्षा मनुष्य के असंस्कृत सौन्दर्य ज्ञान का विज्ञापन होता है। रसोईघर में कपड़े की आलमारी और आराम करने की कुर्सी क्या शोभा देगी? और चीनी मिट्टी के बरतन क्या ड्राइंगरूम की शोभा बढ़ावेंगे? इसलिए कौन-सा फर्नीचर किस कमरे में रहना चाहिए, इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए।

यह सदैव स्मरण रहे कि अँगरेजी तर्ज पर बने हुए मकानों में अँगरेजी ढंग की सजावट शोभा देती है और देशी शैली के मकानों में देशी सजावट सुन्दर प्रतीत होती है। इसके विपरीत शोभा की अपेक्षा कुरूपता ही बढ़ती है।

सामान खरीदने में हमें गुदड़ीबाजार की शरण न लेनी चाहिए। फैशन के प्रेमी, परन्तु अनुभवशून्य लोग अँगरेजों का नीलाम किया हुआ सामान खरीद लेते हैं और उसका उचित स्थान और प्रयोग न जानने के कारण हास्यास्पद बनते हैं।

सजावट का आशय आँख को शान्ति और ताजगी देने का है। यदि किसी प्रकार की सजावट से चित्त प्रसन्न नहीं होता, तो उसमें कोई न कोई कमी अवश्य है। सामान चाहे जितना कम हो, उसको उचित स्थान पर रखना और उसको स्वच्छ रखना सजावट के दो प्रधान नियम हैं।

परन्तु यह तो हुआ एक धनाढ्य का गृह जिसको जीवन के सुख के साधन सहज ही उपलब्ध हैं, परन्तु जो भारत एक दरिद्र और

बना दिया गया है, जहाँ मुट्ठी भर अन्न, शरीर ढाँकने के लिए वस्त्र और रहने के लिए मकानों का अभाव है उसके सामने यह योरोपीय आदर्श व्यर्थ है। हाँ, जिसके पास साधन हो और नये मकान का निर्माण कराना हो तो ठीक है। अब हमें यह देखना है कि मकान जैसे भी हमारे पास हैं उन्हें किस प्रकार सुन्दर बनाया जा सकता है? किस प्रकार उन्हीं मकानों में स्वस्थ होकर रहा जा सकता है?

सुन्दरता केवल आडम्बरों और सामग्रियों में ही निहित नहीं है। वास्तविक सुन्दरता स्वच्छता में है जिसका वर्णन आगेवाले पाठ में दिया जायगा। मकान छोटा हो और बहुत से कमरे न हों तो भी सामान को यथास्थान रखकर सुन्दर बनाया जा सकता है। साधारण गृहस्थीवाले व्यक्ति के पास भी भारत में दो कमरे एक बरामदा, पाखाना तथा छोटी सी छत या आँगनवाला मकान होता है। इस मकान को ही हम सुन्दरतम बना सकते हैं। व्यर्थ का सामान, अधिक मेज़ कुर्सियाँ तथा और फर्नीचर ऐसे मकान में रहनेवाले को अपने साथ नहीं रखना चाहिए। भारतीयता में अँगरेजियत न घुसानी चाहिए। एक कमरे को जो भीतर की ओर हो, परदा डालकर दो भागों में बाँट दीजिए। एक ओर बक्स, सन्दूकची तथा अन्य सामान रखिए। उसी भाग में वस्त्र पहनने के लिए थोड़ी सी जगह छोड़ दीजिए। एक चटाई गोल की हुई रक्खी रहे जिसे वस्त्र पहनने या कपड़े आदि पहनने के लिए बिछा लिया जाय और फिर रख दिया जाय। फर्श बिछाना हानिकारक है, क्योंकि सामान की अधिकता से ठीक से साफ न किया जायगा। सन्दूक आदि सामान ईंटों पर जमीन से ऊँचे पर रक्खा जाय जिससे न तो सामान ही खराब हो और न झाड़ू लगाने में कठिनाई हो। एक ओर शीशा हो और उसी के पास एक छोटी मेज़ या दीवार पर जड़े हुए तख्ते पर साबुन,

सिन्दूर, क्रीम, कंघा जो भी शृङ्गार की चीजें हों रख दी जायं। रोज खुलनेवाले सन्दूक कभी-कभी खुलनेवाले सन्दूकों पर रक्खे जायँ जिससे रोज कठिनाई न हो। यह हो गया आपका ड्रेसिंग रूम, बाक्स रूम।

आधे कमरे में रसोई सम्बन्धी सामग्री सजाकर रख दी जाय। थोड़े से तख्ते छोटी-मोटी चीजों को रखने के लिए गाड़ लिये जायं। एक बात और ध्यान में रखने योग्य है कि जो हिस्सा दूर से दिखाई दे उसमें रसोई का सामान सामने की ओर न होना चाहिए। दोनों कमरे के बीच दरवाजे में भी परदा डाल दीजिए। परदा भी स्वच्छ होना आवश्यक है। बरामदे में एक ओर रसोई का प्रबन्ध कीजिए और उसी में एक ओर दो-तीन पीढ़ाओं पर खान का। बाहर के कमरे को दो कामों में लाइए—बैठक और सोने के लिए। सोनेवाले पलँग दिन में निकालकर बरामदे में डाल दिये जायँ। बिस्तर लपेटकर बक्स पर सुन्दरता से रख दिये जायँ। एक छोटी-सी चौकी या तख्त एक ओर डालकर उस पर स्वच्छ दरी और चादर बिछा दी जाय। दो-तीन मूढ़े या कुर्सियाँ हों, जिन पर गद्दियाँ डाल दी जायँ। दो-चार सुन्दर दृश्यों, महान् पुरुषों या घरवालों की तसवीरें दीवारों पर टँगी हों। एक मेज भी लिखने-पढने के लिए होनी आवश्यक है।

प्रश्न

(१) रहने का घर कैसा होना चाहिए ?

(२) घर बनाने की भूमि कैसी होनी चाहिए ?

(३) घर बनवाते समय किन किन बातों पर ध्यान देना चाहिए ?

(४) घर में किस प्रकार की सजावट करना चाहिए ?

———

अध्याय ७

व्यायाम

१ व्यायाम की आवश्यकता—हम जानते हैं कि हमारी प्रत्येक गति और प्रत्येक बात तथा प्रत्येक काम से जो हम करते हैं हमारे अंगों के कुछ न कुछ अंश लगातार व्यय होते रहते हैं यहाँ तक कि जब हम विचार करने तथा पुस्तकावलोकन करने के लिए किसी स्थान पर चुपचाप बैठे रहते हैं तब भी हमारा मस्तिष्क काम करता रहता है और उसके अंश व्यय होते रहते हैं। अतएव जब किसी लड़के से पाठशाला में अथवा घर पर किसी प्रकार का मानसिक काम लिया जाता है तब उसके शरीर और विशेषकर मस्तिष्क में सदैव बहुत से निकम्मे अंश उत्पन्न हो जाते हैं और जो रुधिर धमनियों के द्वारा मस्तिष्क में फिरता रहता है इन अंशों को ले लेता है और अन्त में यह निकम्मे अंश अशुद्ध वायु के रूप में बदलकर फेफड़ों के मार्ग से बाहर निकल जाते हैं।

विश्राम की अपेक्षा मानसिक काम में निकम्मे अंश अधिक उत्पन्न होते हैं और अशुद्ध वायु के रूप में इसी प्रकार बाहर निकलते रहते हैं जैसे कि विश्राम की दशा में निकलते थे। इसलिए मानसिक काम के समय में जितनी शीघ्रता से निकम्मे अंश उत्पन्न होते हैं उतनी शीघ्रता से अशुद्ध वायु में परिवर्तित होकर नहीं निकलते। परिणाम यह होता है कि शरीर में निकम्मे अंश अधिक एकत्र होते जाते हैं और रुधिर में मिलकर उसको धीरे-धीरे मैला तथा निकम्मा बनाते रहते हैं। इससे शरीर के भिन्न भिन्न अंग क्रमशः बलहीन हो जाते हैं और अपने काम को करने योग्य नहीं रह जाते। तात्पर्य यह है कि इन अंगों के पुष्ट

करने के लिए शुद्ध रुधिर पर्याप्त परिमाण मे नहीं पहुँचता। इसका फल यह होता है कि विद्यार्थी की छाती बलहीन हो जाती है, पेशियाँ नर्म तथा पिलपिली पड जाती है, भूख नहीं लगती और दिल तथा फेफड़े भी निर्बल हो जाते हैं और वह मनुष्य किसी मानसिक अथवा शारीरिक काम को देर तक करने के योग्य नहीं रहता और धीरे-धीरे मानसिक और शारीरिक निर्बलता में ग्रसित हो जाता है। इसलिए इस बात का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है कि निकम्मे अश लड़कों के शरीर में बहुत देर तक रहने न पावे। जो निकम्मे अश मानसिक काम के समय में शरीर के भीतर इकट्ठे हो जाते हैं उनको उचित व्यायाम के द्वारा शरीर के बाहर निकाल सकते हैं।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि व्यायाम से भी तो शरीर में निकम्मे अश उत्पन्न होते हैं, किन्तु इससे जितने उत्पन्न होते है उसमे अधिक निकल जाते है। व्यायाम से पसीना अधिक आता है और बहुत से निकम्मे अश इसके साथ शरीर से निकल जाते हैं। साँस भी जल्दी-जल्दी और बड़ी-बडी लेनी पडती है इससे निकृष्ट वायु का बहुत सा भाग निकल जाता है। इस प्रकार व्यायाम के द्वारा हम केवल उन निकम्मे अशों को ही नहीं निकाल देते जो इससे उत्पन्न होते हैं वरन् इसके पूर्व जितने निकम्मे अश मानसिक काम के समय एकत्र हो गये थे वे भी निकल जाते हैं।

व्यायाम के समय जब साँस परिमाण से अधिक गहरी लेनी पड़ती है और जल्दी-जल्दी लेनी पडती है तब केवल निकृष्ट वायु ही अधिक परिमाण में फेफडों से नहीं निकलती वरन् शुद्ध वायु भी उनमें पहले से कहीं अधिक परिमाण में आने लगती है और इस प्रकार रुधिर शीघ्रता से शुद्ध होने लगता है। रुधिर का सचार शीघ्रता से होने लगता है जिसका फल यह होता है कि भिन्न-भिन्न अंगों की पुष्टि तथा पालन-पोषण के लिए स्वच्छ रुधिर अधिक परिमाण में पहुँचना आरम्भ हो

जाता है, जिससे शरीर के नष्ट हुए अंशों की कमी शीघ्रता से पूर्ण हो जाती है और वे अधिक पुष्ट होकर अपने काम को भली भाँति करने के योग्य बन जाते हैं। इस प्रकार दिल, छाती और शरीर के अन्य भागों की पेशियाँ अधिक पुष्ट हो जाती हैं। मानसिक शक्तियों में बल आ जाता है, भूख तथा पाचनशक्ति बढ़ जाती है। सारांश यह है कि नित्य के व्यायाम से शरीर तथा मस्तिष्क दोनों की शक्तियाँ पुष्ट और बलवान् हो जाती हैं।

प्रत्येक भाँति के मानसिक काम तुम जानते ही हो कि बड़े मस्तिष्क के द्वारा होते हैं और व्यायाम तथा अन्य शारीरिक कार्य छोटे मस्तिष्क के आश्रय से पूर्ण होते हैं। इसलिए यदि कोई बालक किसी खेल अथवा व्यायाम में सम्मिलित होता है तो इससे उसके बड़े मस्तिष्क को, जो घर और पाठशाला में बराबर परिश्रम करने से थक जाता है, कुछ विश्राम मिलता है।

व्यायाम के लाभ—व्यायाम करने से शरीर नीरोग रहता है, इससे पुट्ठे मज़बूत होते हैं, फेफड़ों को बल मिलता है और शरीर में स्वच्छ रक्त का संचार होता है। इससे मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है, भूख खूब लगती है और खाना भी अच्छी तरह हज़म होता है। व्यायाम करनेवाले का बदन सुडौल और फुर्तीला हो जाता है। सौंदर्य-वृद्धि का भी व्यायाम अनुपम नुस्खा है। इसलिए प्रत्येक स्त्री को कुछ न कुछ व्यायाम अवश्य करना चाहिए।

व्यायाम के प्रकार—व्यायाम कई प्रकार के होते हैं। शारीरिक श्रम करना भी एक प्रकार का व्यायाम है। पहले स्त्रियाँ घर के काम काज में शारीरिक श्रम अधिक करती थीं। चक्की चलाना, चर्खा कातना और अनाज कूटना आदि सब उनके नित्य के काम थे। इससे उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता था। देहातों में जहाँ स्त्रियाँ अब भी ये काम करती हैं वहाँ उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है। परन्तु, खेद की बात है कि श

की पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ—इन कामों को हेय समझकर इनसे घृणा करने लगी हैं। यह उनकी भूल है। चक्की चलाने, चर्खा कातने और अनाज छरने से शरीर के सब अङ्गों का व्यायाम हो जाता है। इसलिए यदि अधिक न हो तो शारीरिक श्रम ही के लिए इनमें से कोई न कोई काम अवश्य करते रहना चाहिए और इनसे घृणा न करनी चाहिए।

दूसरे प्रकार के व्यायाम तैरना, नाव खेना, नाचना, घोड़े की सवारी करना, टेनिस खेलना, मुग्दर हिलाना, डम्बल फिराना आदि हैं। ये सब अच्छे व्यायाम है। खेद की बात है कि हमारे देश की अधिकतर स्त्रियों को इन व्यायामों के करने की सुविधा नहीं है। घर के बड़े-बूढ़े इसे पसन्द नहीं करते कि स्त्रियाँ ये व्यायाम करें। यदि किसी स्त्री को इनमें से किसी व्यायाम के करने की सुविधा हो तो उसे वह अवश्य करना चाहिए।

टहलना और दौड़ना भी अच्छी कसरतें हैं। सुबह-शाम खुली और साफ़ हवा में टहलने से बहुत लाभ होता है। इससे दिमाग ताजा होता है और शरीर में बल आता है। टहलते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सिर ऊँचा रहे और कमर तनी हुई हो। कमर झुकाकर टहलना ठीक नहीं है। थोड़ा दौड़ना भी बहुत लाभदायक है, परन्तु जिनके फेफड़े कमजोर हों उन्हें डाक्टर से सलाह लेकर दौड़ना चाहिए।

स्कूलों में ड्रिल या रस्सी वगैरह के जो खेल होते हैं उनसे भी खासा व्यायाम हो जाता है। जिन बालिकाओं को घर पर और कोई व्यायाम करने को न मिले वे उनसे भी लाभ उठा सकती हैं।

६ **स्त्रियों के व्यायाम**—अब यहाँ हम अपने देश की केवल घरों में रहनेवाली स्त्रियों की सुविधा के विचार से अन्य व्यायामों को भी बतला देते हैं।

(१) कमर के व्यायाम—कमर को बलवान बनाने के लिए निम्नलिखित व्यायाम करना चाहिए —

१—अपने हाथों में कोई दो हल्के वजन लो। इन वजनों को फर्श पर रख दो। फिर सीधी खड़ी हो जाओ। खड़े होते वक्त अपने दोनों पैरों के बीच लगभग आठ इञ्च का फ़ासला रक्खो। फिर धीरे-धीरे गहरी साँस लो, झुको और धीरे से दोनों हाथों में वजन उठाकर हाथों को अपने इधर उधर दोनों ओर लटका लो। फिर धीरे से झुककर वजन रख दो। इसी तरह पाँच बार वजन उठाओ और रक्खो।

२—अपने शरीर को पीछे की ओर झुकाओ, आगे की ओर झुकाओ, तथा इधर-उधर झुकाओ।

३—अपने सीधे हाथ को अपने सिर पर रक्खो और उससे अपना बायाँ कान छूओ। ठोढ़ी को ऊँचा रक्खो। धीरे-धीरे गहरी साँस लो और अपने हवादार कमरे में टहलो। इसी प्रकार बायें हाथ से भी यही व्यायाम करो।

४—पैरों के पञ्जों के बल दौड़ो।

५—एक पैर से उछलो कूदो।

इस व्यायाम के करने से झुकी हुई कमर भी ठीक हो जाती है।

(२) पेट के व्यायाम—यदि पेट में कोई ख़राबी हो और मेदा कमजोर हो तो नीचे लिखा व्यायाम करने से बहुत लाभ होता है। इस व्यायाम से भूख बढ़ती है और स्वास्थ्य भी ठीक रहता है।

१—अपनी ठोढ़ी को ऊपर करके खड़ी हो।

२—धीरे-धीरे गहरी साँस लो।

३—अपना सीधा घुटना उठाओ और इतना ऊँचा उठाओ कि तुम्हारा सीधा पैर फ़र्श से एक फुट ऊँचा हो जाय।

४—बायें पैर को जरा लचकाओ और फिर फ़ौरन उसे फ़र्श से उठाकर सीधे पैर का पञ्जा (एड़ी नहीं) फ़र्श पर रक्खो।

५—फिर सीधे पैर को लचकाओ और उसे उठाकर बाँयें पैर को फ़र्श पर रक्खो।

६—अपने हाथों को पीछे ले जाकर मिलाओ। ठोढी ऊपर रक्खो। घुटनों को मत झुकाओ। अपने बाँये पैर को आगे बढाओ और आध मिनट तक इसी तरह रहो।

७—फिर बाँयें पैर को पीछे हटा लो और इसी प्रकार सीधा पैर आगे बढाओ। इसी तरह बाँये सीधे पैरों को तीन बार आगे बढाओ।

८—पीठ के बल लेट जाओ। पैर फैला लो। फिर इस तरह उठो कि पैर फैले रहे और तुम बैठने की शक्ल में हो जाओ। इसे भी तीन बार करो।

९—घोडे की तरह तुर्की चाल से दौडो।

(३) सौन्दर्य की वृद्धि के व्यायाम—सीने को बलवान बनाने और उसे चौडा करने के लिए यह व्यायाम बहुत अच्छा है—

१—बिलकुल सीधी खडी हो जाओ।

२—अपने दोनों बाहुओं को कोनियों को बिना मोडे सीधे धीरे-धीरे ऊपर नीचे और आगे पीछे करो।

३—फ़र्श पर लेट जाओ। अपने हाथों को सिर के ऊपर फैलाओ, जिससे वे फ़र्श से छू जायँ, फिर गहरी साँस लो और उसे रोको। इसके बाद धीरे धीरे हाथों को सीधे अपने सिर के ऊपर उठाओ। इसी प्रकार तीन चार बार करो।

४—अपनी ठोढी को, जितना ऊँचा उठा सकती हो, उठाओ। फिर दोनों हाथों को सीधे, कोनियाँ मोड़े बिना, जितना ऊँचा कर सको करो। गहरी साँस लो और उसे रोको। इसके बाद बिना साँस छोड़े अपने हाथ नीचे करो। इसी प्रकार चार-पाँच बार अभ्यास करो। यह याद रहे कि तुम्हारी ठोढी सदा ऊँची रहनी चाहिए।

साँस के व्यायाम—अब हम तुमको "साँस-व्यायाम" के विषय में थोड़ी सी बातें बतलावेंगे। इस व्यायाम में यह गुण है कि इसके करने से फेफड़े खूब फूल जाते हैं और उनमें स्वच्छ हवा भली प्रकार भर जाती है। इसके करने से हमको फेफड़ों को अच्छी तरह फुलाने में बड़ी सहायता मिलती है।

इस व्यायाम की तरकीब यह है—साफ़ हवा में सीधे खड़े होकर मकान की सबसे ऊपरी छत पर, पार्क या फील्ड में चित्त को एकाग्र करके धीरे-धीरे नाक से साँस लेकर सीने को खूब फुलाओ। इसके बाद सिर को जरा पीछे की ओर झुकाओ और सीने को तनिक बाहर की ओर निकाल तथा चौड़ा कर खूब साँस लो। जब साँस खूब भर जाय तब धीरे-धीरे हवा को बाहर निकालो। सिर को धीरे-धीरे सीने की ओर अपनी पहली जगह पर लाओ और अन्त में साँस निकालते समय अपनी पसलियों को दोनों ओर हाथ से दबाकर बची खुची हवा को भी निकाल दो। इसी तरह बढ़ने का अवकाश नहीं मिलता और हड्डियाँ भी कम-जोर हो जाती हैं। इस कारण पीठ में कुबड़ापन आ जाता है। चेहरा पीला पड़ जाता है और बाद में फेफड़े की बहुत-सी बीमारियाँ हो जाती हैं। बालक कुन्दजहन हो जाता है और पढ़ने लिखने में उसका मन नहीं लगता।

एडीनायडस् गले में उस स्थान पर उत्पन्न हो जाते हैं जहाँ नाक से साँस लेने का रास्ता आकर गले में खुलता है। बचपन में बहुत दिनों तक जुकाम आदि रोगों के रहने से १०-१५ मिनट तक रोज खुली हवा में सीने में खूब हवा भरो और उसे धीरे-धीरे बाहर निकालो। जो लोग साँस खींचकर सीने को खूब फुला सकते हैं वे कड़ी से कड़ी मेहनत करने पर भी नहीं थकते। मेहनत के समय उनकी साँस बेहिसाब तेज नहीं चलती।

अच्छे तन्दुरुस्त मनुष्य को हवा भरकर सीने को कम से कम ३

इञ्च बढा लेना चाहिए। यदि तुम रोज खूब साँस अन्दर खींचने और बाहर निकालने की आदत डालोगे तो तन्दुरुस्त, मेहनती और सुन्दर बन जाओगे। जो लोग साँस अच्छी तरह नहीं ले पाते या जो मुँह से साँस लेते है, वह सदा बीमार रहते है और उनके चेहरे पर प्रसन्नता की झलक नहीं दिखाई देती है। इनमें से किसी भी बात के होने से किसी डाक्टर या वैद्य की सलाह लेनी चाहिए। शरीर के लिए पसीने का आना तो अच्छा है, पर उसका शरीर पर सूखकर मैल के रूप में जम जाना अच्छा नहीं, क्योंकि ऐसा होने से छिद्र बन्द हो जाते हैं—पसीना निकलने का काम रुक जाता है। मनुष्य के लिए नहाना इसलिए आवश्यक है कि जिससे शरीर के सब छिद्र खुल जायँ और पसीना निकालनेवाली थैलियाँ अपना काम अच्छी तरह करती रहें।

तुमने देखा होगा कि बहुत दिनों तक न नहाने से शरीर पर बहुत मैल जम जाता है, खाल में पीलापन आ जाता है और शरीर से बदबू भी आने लगती है। नहाने के कारण छिद्रों के खुल जाने से रक्त खाल की ओर अच्छी तरह दौड़ता रहता है।

अन्य बाहरी व्यायाम—आजकल लडकियों को कुछ ऐसे व्यायाम भी सिखाये जाते है जो उनकी शरीर रक्षा के अत्यन्त उपयोगी हैं। लडकियों के ऐसे व्यायामों के प्रदर्शन भी होते हैं। छुरी चलाना, धनुष-बाण तथा अन्य अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा भी उनको लेनी चाहिए, ताकि कुअवसर पड़ने पर वह स्वय अपनी रक्षा कर सकें। पाठशालाओं में उन्हे अब इस प्रकार की शिक्षा दी जाने लगी है।

इनके अतिरिक्त दौडना, रस्सा खींचना, कबड्डी खेलना, कूदना, फाँदना इत्यादि व्यायाम भी उनके लिए उपयोगी हैं। लडकियों को यह अच्छी तरह सोच लेना चाहिए कि उन पर देश को उन्नत करने

की बड़ी भारी जिम्मेदारी है। वह भावी माताएँ है। स्वस्थ और सुदृढ़ माताएँ ही अपनी सन्तान को स्वस्थ और बलवान बना सकती हैं।

इन व्यायामों के अतिरिक्त शरीर को सुन्दर बनाने के लिए तुमको खड़े होने और बैठने का ढंग भी सीखना चाहिए। तुमने देखा होगा कि कुछ लोग खड़े होते समय, बैठते समय और चलते समय अपने शरीर को उचित रीति से साधे रहते हैं। परन्तु कुछ लोग अपने शरीर को ढीला छोड़कर टेढ़ी मेढ़ी रीति से बैठते, खड़े होते और चलते हैं। ऐसे लोगों की चाल-ढाल देखने में बड़ी भद्दी मालूम पड़ती है। ऐसे अनुचित ढंग से बैठने, खड़े होने और चलने से शरीर को बड़ी हानि पहुँचती है। शरीर के बहुतेरे अंग दब जाते हैं और टेढ़े हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि वे अपना काम ठीक नहीं कर सकते। ढीली-ढाली रीति से बैठने-उठनेवाले लोग प्राय मन्द-बुद्धि होते हैं। इसलिए तुमको चाहिए कि सदा ठीक ढग से बैठना और खड़े होना सीखो।

खड़े होने की रीति—बिलकुल सीधे खड़े होने की दशा में सिर उठा हुआ, ठोढ़ी भीतर को दबी हुई, सीना कुछ आगे को निकला हुआ, हाथ नीचे की ओर सीधे और घुटने तने हुए रहते हैं। इस प्रकार खड़े होने पर शरीर के सारे अग अपने उचित स्थान पर रहते है। और किसी पर विशेष दबाव नहीं पड़ता। सावधानी की दशा रखना कुछ कठिन प्रतीत होता है। इसलिए अधिक समय तक इस दशा में तुम खड़े नहीं रह सकते। साधारण रीति से खड़े होने में तुम्हें रीढ़ की हड्डी सीधी रखनी चाहिए।

बुरी रीति से खड़े होने से रीढ़ की हड्डी टेढ़ी होने लगती है। धड़ का भार दोनों पैरों पर अच्छी तरह साधते नहीं बनता। सारा शरीर प्राय एक ओर झुका रहता है। सीना भीतर धँसा रहता है और पेट

आगे की ओर चला आता है। ऐसी दशा में खड़े होने से मनुष्य देखने में अत्यन्त शिथिल मालूम पड़ता है और उसके शरीर को हानि पहुँचती है। तुम्हें सदा ठीक ढंग से खड़ा होना चाहिए। ठीक ढंग से खड़े होने से तुम देखने में सुन्दर मालूम पड़ोगे, तुम्हारी रीढ़ की हड्डी सीधी रहेगी, तुम्हारे साँस लेने के अंग किसी प्रकार दबेंगे नहीं और तुम्हारे स्वास्थ्य को लाभ पहुँचेगा। चलते समय भी शरीर को ठीक साधकर रखना चाहिए।

(ग) बैठने की रीति—तुम बैठकर या तो किसी से बात चीत करती हो, अथवा पढ़ती लिखती हो। साधारण रीति से बैठकर पढ़ने की दशा लिखते समय की दशा से भिन्न होती है। इसलिए जैसी दशा में तुम्हें बैठना हो, उसका ध्यान रखना आवश्यक है।

प्रायः तुम कुर्सी अथवा स्टूल पर बैठती हो। कभी-कभी तुम्हें भूमि पर भी बैठने की आवश्यकता पड़ती है। लिखते समय तुम्हें मेज के पास बैठना पड़ता है। पहले इस बात पर ध्यान रखना आवश्यक है कि जिस कुर्सी और मेज का तुम उपयोग करती हो, वह तुम्हारे कद के अनुसार हो। अगर कुर्सी बहुत ऊँची होगी तो तुम्हारे पैर झूलते रहेंगे। अगर मेज ऊँची होगी तो तुम्हें अपने शरीर को टेढ़ा करके एक ओर के अंग को उठाना पड़ेगा। अगर कुर्सी, मेज बहुत नीची हुई तो तुम्हारी कमर झुक जायगी।

साधारण रीति से बैठकर पढ़ते समय न तो सिर को आगे झुकाना चाहिए, न धड़ को। पुस्तक को न तो आँखों के बहुत समीप रखना चाहिए, न बहुत दूर। उचित दशा में पैर जमीन पर रक्खे रहने चाहिए। सिर उठा हुआ और धड़ सीधा रहना चाहिए। अधिक समय तक बैठने के लिए पीठ को कुर्सी के तकिये का सहारा मिलना चाहिए। धड़ को बहुत झुकाने और गर्दन दबा लेने से साँस लेनेवाले अंगों को बड़ी हानि पहुँचती है। ५
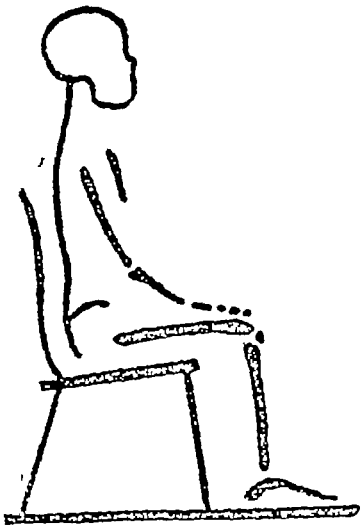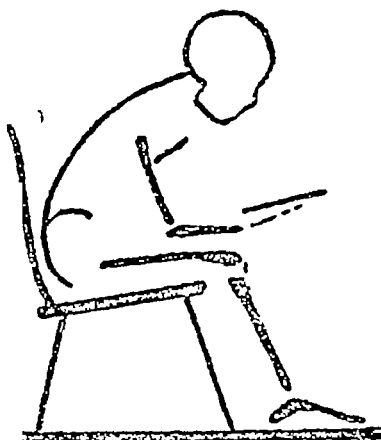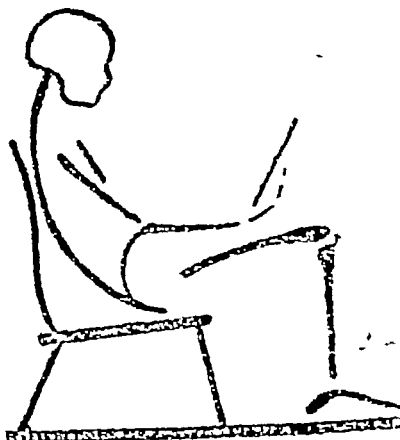
1 उचित
2 अनुचित
3 अनुचित
4 अनुचित

लिखने के समय कुर्सी और मेज को एक विशेष दशा में रखना पड़ता है। कुर्सी मेज के किनारे से बाहर, ठीक उसके नीचे, और थोड़ी उसके भीतर, तीन हालतों में रक्खी जा सकती है। लिखते समय हमेशा तीसरी अवस्था अर्थात् कुर्सी मेज के किनारे के भीतर होनी चाहिए। ऐसी दशा में धड़ सीधा रह सकता है और उसको सामने की ओर नहीं झुकाना पड़ता।

एक या दो बार किसी बुरी दशा में बैठने से विशेष हानि नहीं पहुँच सकती। परन्तु ऐसा करने से बुरा अभ्यास पड़ जाने की सम्भावना रहती है। कोई भी शारीरिक अभ्यास पड़ने के बाद शरीर अपने ही आप उस दशा में रहने का प्रयत्न करता है। नित्यप्रति अनुचित ढंग से बैठने, खड़े होने और चलने फिरने से स्वास्थ्य को बहुत हानि पहुँचती है। इसलिए बुरा अभ्यास पड़ने ही न देना चाहिए।

ध्यान देने योग्य बातें—इस बात का ध्यान रखना भी अत्यावश्यक है कि लड़कियाँ किसी प्रकार का व्यायाम सीमा से अधिक न करें। यदि कोई लड़की ऐसा करेगी तो वह बहुत थक जायगी और कोई काम न कर सकेगी और उसके दिल तथा फेफड़ों और अन्य सब अंगों को अपने-अपने काम शीघ्रता से करने पड़ेंगे और काम के अधिक भार के कारण वह धीरे-धीरे निर्बल होती जायगी। अतएव भिन्न भिन्न श्रेणी की लड़कियों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यायाम करना लाभ-दायक है।

छोटी लड़कियों को बहुत देर तक व्यायाम न करना चाहिए। क्योंकि इसका फल भी वही होगा जो सीमा से अधिक व्यायाम करने से होता है।

व्यायाम चाहे किसी प्रकार का हो सदा बाहर खुले मैदान में और शुद्ध और स्वच्छ वायु में करना चाहिए। यदि वायु अशुद्ध तथा मैली होगी, अथवा धूल तथा मिट्टी से भरी होगी तो मिट्टी के छोटे-छोटे कण

अध्याय ८

विश्राम और सोना

स्वास्थ्य के लिए व्यायाम की आवश्यकता को तुम समझ चुकीं। उसके लिए विश्राम और सोने की भी जरूरत है।

(१) विश्राम की आवश्यकता—हम पहले ही कह चुके हैं कि हमारा शरीर एक प्रकार की अद्भुत मशीन या कल के समान है। तुमने रेलगाड़ी देखी होगी। उसका इञ्जन भी देखा होगा। क्या तुम यह भी जानती हो कि कई सौ मील चलने के बाद रेलगाड़ी का इञ्जन बदल दिया जाता है। यह क्यों? यह इसलिए कि कुछ समय तक बराबर चलने के कारण वह गरम हो जाता है और उसकी शक्ति कम हो जाती है। यदि वह बराबर चलता रहे तो खराब हो जाय और अधिक गर्मी के कारण फट जाय। इसलिए उसे निकाल देते हैं और कुछ घण्टे विश्राम देते हैं।

इसी प्रकार हमारे शरीर-रूपी इञ्जन के लिए भी विश्राम की आवश्यकता है। यदि हम बराबर काम करते चले जायँ और आराम न करें तो हमारी सारी शक्ति खर्च हो जाय और हम बीमार पड़ जायँ। इसलिए कुछ समय तक कार्य करने के बाद शरीर को कुछ देर के लिए विश्राम देना चाहिए। विश्राम करने से समय नष्ट नहीं होता। उससे काम करने की शक्ति बढ़ती है। विश्राम के उपरान्त मनुष्य ताजा हो जाता है और अधिक उत्साह के साथ कार्य कर सकता है।

जो लोग कार्य अधिक और विश्राम कम करते हैं उनका हाजमा और मस्तिष्क जल्द ख़राब हो जाता है।

सोना—जिस प्रकार विश्राम, उसी प्रकार सोना भी स्वास्थ्य के लिए जरूरी है। स्वस्थ मनुष्य को गहरी नींद आती है। यदि नींद अच्छी तरह न आवे तो समझ लेना चाहिए कि स्वास्थ्य में कुछ खराबी है।

साधारणतया युवा स्त्री-पुरुषों को कम से कम सात घण्टे और अधिक से अधिक आठ घण्टे रोज जरूर सोना चाहिए। बच्चों को आठ घण्टे या उससे भी अधिक रोज सोना चाहिए। साधारणतया चार वर्ष के बच्चों के लिए बारह घण्टे, सात वर्ष के बच्चों के लिए दस घण्टे और चौदह वर्ष के बच्चों के लिए आठ या नौ घण्टे सोना जरूरी है। इससे अधिक सोने से आलस्य आता है और शरीर निकम्मा होता है।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि दिन में सोना ठीक नहीं है। ईश्वर ने दिन काम करने के लिए बनाया है। सोने के लिए रात्रि है। रात्रि को जल्द सो जाना चाहिए और फिर सवेरे सूर्य निकलने से पहले ही उठ बैठना चाहिए। जल्द सोने और सवेरे जल्द उठने से शरीर नीरोग रहता है और काम करने को काफी समय मिलता है।

ध्यान देने योग्य बातें—सोने के सम्बन्ध में इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जिस कमरे में तुम सोओ उसकी खिड़कियाँ खुली हुई हों, जिससे ताजी हवा कमरे में आ सके। ताजी हवा न आने से बार-बार उसी हवा में साँस लेनी पड़ती है, जो तुम अपनी साँस द्वारा निकालती हो। यह हवा स्वास्थ्य के लिए विष है। गर्मी के दिनों में तो खुले मैदान या छत पर सोना चाहिए।(१)

(२) जिस कमरे में तुम सोओ वह बहुत सी चीजों से भी भरा हुआ न होना चाहिए। ऐसा होने से भी ताजी हवा कमरे में कम पहुँचेगी। इसके साथ ही बहुत से लोगों का एक कमरे में सोना भी तन्दुरुस्ती के लिए हानिकारक है। ऐसा करने से भी उच्छिष्ट हवा में साँस लेनी पड़ती है। इसलिए जहाँ तक हो सके सोने का कमरा अलग हो तो अच्छा है।(२)

हमारे देश में एक बुरा रिवाज यह भी है कि एक ही चारपाई पर दो-दो और कभी तीन-तीन मनुष्य साथ सो जाते है। यह भी स्वास्थ्य के लिए हानिकर है, क्योंकि इससे भी एक-दूसरे की उगली हुई हवा मे साँस लेनी पड़ती है।

सोते समय यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि तुम्हारा मुँह कभी ढका हुआ न हो। जाड़े के दिनों में भी मुँह खोलकर सोना चाहिए। मुँह ढका रखने से बार-बार उसी गन्दी हवा में साँस लेनी पड़ती है और ताजी हवा नहीं मिलती।

सोने के लिए ऊँची चारपाई या चौकी लाभदायक है। ज़मीन पर सोना ठीक नहीं है। ज़मीन पर सोने से कीड़े-मकोड़े के काट लेने का भय रहता है। चारपाई या पलँग पर यदि मसहरी का प्रबन्ध हो तो और भी अच्छा है। मसहरी लगाने से मच्छर नहीं काट सकते।

मानसिक थकावट और विश्राम—इसके पूर्व बताया गया है कि प्रत्येक काम में चाहे वह शारीरिक हो अथवा मानसिक, शरीर के कुछ अश अवश्य व्यय होते रहते हैं। अतएव जब लडकों को पाठशाला में चार-पाँच घटों तक नई-नई बातें सीखने और समझने में लगातार उद्योग करना पड़ता है तब उनके शरीर और विशेषकर मस्तिष्क मे बहुत सा निकम्मा अश उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि निकम्मे भाग मस्तिष्क की धमनियों में बहनेवाले रुधिर के द्वारा सदैव निकलते रहते है तो भी जैसा कि पिछले अध्याय में वर्णन हो चुका है उत्पन्न होते ही नहीं निकल जाते और इसलिए शरीर में लगातार एकत्रित होते रहते और धीरे-धीरे रुधिर को मैला और निकम्मा बनाते रहते हैं।

अब यह निकम्मा रुधिर न तो मस्तिष्क ही के और न शरीर ही के अन्य भागों से निकम्मे अश को निकाल सकता है और न उनका उचित रीति से पालन-पोषण कर सकता है। इसलिए मस्तिष्क धीरे-धीरे बलहीन

हो जाता है और इसके थक जाने से निर्बलता तथा आलस्य विदित होने लगता है। एक ही समय में मस्तिष्क से अधिक काम लेना मानसिक थकावट का मुख्य कारण है।

जब रुधिर मैला और निकम्मा हो जाता है तब मस्तिष्क और मानसिक शक्तियों में निर्बलता उत्पन्न हो जाती है, अतएव जब पढ़ाई के कमरों से अशुद्ध वायु के निकलने और उसके बदले में स्वच्छ वायु के आने के लिए कोई मुख्य प्रबन्ध नहीं होता तो रुधिर स्वच्छ नहीं होता और इससे मस्तिष्क बलहीन हो जाता है और थकावट उत्पन्न हो जाती है।

इसी कारण से अच्छी तरह न सोने और व्यायाम के न करने से भी थकावट विदित होती है। यथोचित और बलवर्द्धक भोजन जो मस्तिष्क और शरीर के अन्य भागों के व्यय हुए अंश की पूर्ति करता है, प्राप्त न होने के कारण मस्तिष्क में निर्बलता उत्पन्न हो जाती है।

भोजन करने के पश्चात् उचित विश्राम के न करने से भी प्राय मस्तिष्क में थकावट उत्पन्न हो जाती है, क्योंकि भोजन करने के पश्चात मस्तिष्क को बहुत ही कम रुधिर प्राप्त होता है। भोजन करते ही पाकाशय और आँतों की गति भोजन को पचाने के लिए बहुत तीव्र हो जाती है, अत इस गति से शरीर के इन भागों में निकम्मे अंश बहुत उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए उन निकम्मे अंशों को निकालने के लिए अधिक रुधिर की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि भोजन करने के पश्चात् मस्तिष्क को पर्याप्त रुधिर नहीं मिलता, अत. यदि भोजन करते ही मस्तिष्क से अधिक काम लिया जाय तो न वह अपने निकम्मे अंश से स्वच्छ हो सकता है और न अपनी उन्नति के लिए पर्याप्त और स्वच्छ रुधिर प्राप्त कर सकता है। अतएव भोजन करने के पश्चात् आध घंटे तक मस्तिष्क से कुछ काम न लेना चाहिए।

जब लड़के थक जाते है तो ऐसी उत्तम रीति से काम नहीं कर सकते जिस प्रकार कि वह पहले कर सकते थे। ऐसी दशा में वह न कोई अच्छे काम करने के योग्य होंगे और न पाठशाला के काम से कुछ लाभ उठा सकेंगे।

प्रश्न

(१) विश्राम करने और सोने की क्या आवश्यकता है ?
(२) सोने का कमरा कैसा होना चाहिए ?
(३) बच्चों को कितने घण्टे सोना चाहिए ?
(४) जल्द सोने और सवेरे जल्द उठने से क्या लाभ है ?

अध्याय ६

हमारा शरीर और उसको स्वच्छ रखने के उपाय

भगवान् ने हमको शरीर इसलिए दिया है कि हम इसको सुन्दर और बली बनाकर संसार में अच्छे-अच्छे काम कर सकें। संसार में जितने बड़े बड़े मनुष्य हो गये हैं, सब ने शरीर के द्वारा ही बहुत अच्छे अच्छे काम किये हैं और हमेशा के लिए अपना नाम छोड़ गये हैं। हमको चाहिए कि हम भी उन्हीं की तरह शरीर को नीरोग और बली बनाकर उसको भले कामों में लगावें। यह तभी हो सकता है जब हम शरीर के हर एक अंग को साफ सुथरा तथा सबल रक्खें। जिस तरह मैल जम जाने से मशीन के पहिये चलना बन्द कर देते हैं, उसी तरह शरीर के अंगों में मैल आ जाने से वह भी अपना काम अच्छी तरह नहीं कर पाता। ऐसा होने पर मनुष्य बीमार पड़ जाता है, शरीर में फुर्ती नहीं रह जाती, तरह तरह की चिन्ताएँ लग जाती हैं। संसार में अच्छे अच्छे काम करके, दूसरों को लाभ पहुँचाने की जगह वह स्वयं दूसरों के ऊपर बोझ सा हो जाता है। छोटे-छोटे जानवर भी अपने रहने की जगह को साफ-सुथरा रखते हैं। हमें भी अपने शरीर को इसी तरह अपने जीव का घर समझकर इसे आदर तथा यत्नपूर्वक रखना चाहिए। सदा यह ध्यान रखना चाहिए कि हमसे कोई ऐसा काम न हो जाय जिससे शरीर के उपयोगी होने में कोई बाधा पड़े।

आओ, अब हम यह सोचें कि हम इसे साफ-सुथरा तथा सबल कैसे रख सकते हैं।

शरीर के बाल तथा छिद्र—शरीर ऊपर से नीचे तक बालों से

भरा पड़ा है। सबसे अधिक बाल स्त्रियों तथा पुरुषों के सिर पर होते हैं। बड़े बाल होना स्त्रियों के लिए सुन्दरता का चिह्न तो है ही, इसके अतिरिक्त सिर के बालों से मनुष्य के अमूल्य अंग दिमाग़ की सर्दी, गर्मी से हर समय रक्षा होती है। पलक के बालों से आँख की और नाक के अन्दर के बालों से साँस लेते समय गर्द से अन्दर के फेफड़ों तक की रक्षा होती है। इसी लिए शरीर में और और जगह भी जैसे कि बगल में, जाँघ में, सीने पर तथा हाथों और पैरों पर भी बाल होते हैं।

ध्यान से देखा जाय तो सबकी जड़ में एक-एक छिद्र होता है और ये महीन-महीन छिद्र लाखों की तादाद में इन बालों की जड़ में मौजूद हैं। जिस तरह शरीर में ये महीन-महीन छिद्र बहुत से हैं उसी तरह कुछ बड़े बड़े छिद्र भी हैं जिनमें से नीचे के अंग में मल-मूत्र त्याग करने के छिद्र तथा ऊपर के अंग में आँख, कान नाक और मुँह प्रधान हैं।

अब हम शरीर के बालों तथा शरीर के छोटे बड़े छिद्रों को स्वच्छ रखने के उपाय संक्षेप में बतावेंगे।

बालों की स्वच्छता—बालों की जड़ में प्राकृतिक चिकनाई उत्पन्न होती है, किन्तु पसीना व मैल जम जाने से चिकनाई नहीं निकलने पाती और जड़ें खुश्क हो जाती हैं। फलत. बाल सूखकर गिरने लगते हैं। मैल के कारण सिर में जूएँ पड़ जाती हैं और वे सिर का ख़ून चूसा करती हैं। जूएँ बढ़कर एक मनुष्य से दूसरे और दूसरे से तीसरे तक पहुँच जाती हैं। जूओं के कारण बाल चिमट जाते हैं और यदि बड़े बाल हुए तो सिर पर बोझ-सा हो जाता है। ऐसी दशा में साबुन को पानी में घोलें और थोड़ा पैरेफिन या मिट्टी का तेल मिलाकर सिर में लगा दें। थोड़ी देर पश्चात् साबुन इत्यादि से सिर को धो डालें। इस प्रकार जुएँ मर जाती हैं और सिर साफ़ हो जाता है। बालों को तेल सिरके से भिगोकर

धीरे धीरे कघी करने से भी बाल साफ़ हो जाते हैं और जूओं के दूर करने में सहायता पहुँचती है। यदि शीघ्र ही न चेता गया तो सिर में फुंसियाँ निकल आती हैं और ज़ख्म पड़ जाते हैं। ऐसी हालत में बहुत अधिक कष्ट होता है। बालों की गन्दगी से सिर में गज हो जाता है और तकिए, तौलिए, टोपी, कघी इत्यादि के कारण यह रोग दूसरों को भी लग जाता है। इसलिए चाहिए कि कभी किसी दूसरे मनुष्य का तौलिया, रूमाल, कघी, टोपी, लुंगी इत्यादि काम में न लाई जाय। जब रोग दूसरे को लग जाता है तब उस मनुष्य के भी बाल गिरने लगते हैं और सिर में दाने निकलकर ज़ख्म हो जाते हैं। गज के लिए सिर को सुहागे से धोना चाहिए। स्नान के समय सिर को साबुन, खली या बेसन इत्यादि से मल कर धोना चाहिए, जिससे बाल साफ़ रहें। सोडे अथवा साबुन में अण्डे की जर्दी मिलाकर सिर धोने से बाल खूब साफ़ हो जाते हैं। आलू को पीसकर और उसमें सरसों या तिल्ली का तेल मिलाकर सिर में मलने से बाल साफ़ भी हो जाते हैं और उनकी जड़ों को दृढ़ता भी प्राप्त होती है। नहाने के बाद दोनों समय कघी की जाय, प्रतिदिन प्रातःकाल तो एक बार कघी अवश्य ही करनी चाहिए, बालों को यदि सम्भव हो तो ब्रुश से ठीक किया जाय, जिससे सब मैल निकल जाय। जो लोग तेल अधिक लगाते हैं वे यदि सिर को न मलें, तो बाल चिपट जाते हैं और सिर में गन्ध आने लगती है। ऐसे लोगों को अपना सिर शीघ्र साफ़ करना चाहिए। सिर मलकर नहाने के पश्चात् थोड़ा-सा तेल लगा लेना चाहिए, जिससे साबुन और सोडे इत्यादि से जो रूखापन आ जाता है वह दूर हो जाय और बालों की जड़ में चिकनाहट आ जाय। नहाने से पहले सिर में थोड़ा सा तेल लगाना भी लाभदायक है। इससे बाल कोमल और स्वच्छ होते हैं। साधारण सरसों या तिल्ली का तेल लगा-कर साबुन से धो डालना भी पर्य्याप्त है, परन्तु बालों को भीगा न रहने दें। इससे बालों की जड़ें कमजोर हो जाती हैं और वह गिरने लगते हैं।

नहाने के पश्चात् बालों को एक तौलिये से रगड़कर सुखा डालना चाहिए।

सिर को धोने के बाद कघा फेरना तथा छोटे-छोटे बाल हों तो कड़े ब्रुरुश से बालों को साफ करना बहुत अच्छा है। कघा करने से सारी त्वचा में फुर्ती आ जाती है और बालों के साफ रहने से बाल मजबूत हो जाते है। इसी तरह बालों को उँगलियों के बीच में डालकर खींचने से तथा बालों पर बार-बार हाथ फेरने से भी बाल मजबूत हो जाते है।

दूसरी जगह के बालों को भी इसी तरह खूब साफ रखना चाहिए—खासकर जाँघ और बगल के बालों को। जाँघ में भी जूएँ पड़ जाती है, जिससे कि मनुष्य को बहुत कष्ट होता है। यदि स्नान करते समय शरीर के इस अग की ओर भी हम अपना ध्यान दे तो हमें ऐसे कष्ट-दायक रोग न हों।

नाख़ून की स्वच्छता—हाथ और पैर की उँगलियों के नाख़ून भी साफ रहने चाहिए। बड़े नाख़ून होने से उनके अन्दर मैल भर जाता है। दूसरी चीज़ों को छूने से उनमें भी गन्दगी पैदा हो जाती है। इसलिए नाख़ूनों को समय-समय पर कटवाते रहना चाहिए और उन्हें पानी या साबुन से धोकर मुलायम कर लेना चाहिए। अकसर तोन्दी इत्यादि में भी मैल भर जाता है और यह सूज जाती है। इसको भी हमेशा साफ रखना चाहिए और यदि मैल पड़ गया हो तो उसे निकाल-कर वैसलीन या गर्म गर्म तेल लगा देना चाहिए।

स्त्रियों के बाल बड़े-बड़े होते हैं। यदि वे साफ न रक्खे जायँ तो उनमें बदबू आने लगे और जूएँ पड़ जायँ। बालों के बारे में एक कहावत प्रसिद्ध है, वह यह कि "बाल जंजाल और बाल शृंगार"। यह कहावत बिलकुल ठीक है। यदि बालों को धोया न जाय, उनमें तेल न डाला जाय और कंघी न की जाय तो बाल आपस में उलझ जाते हैं

रोम कूपों की यह नलियाँ लगभग १/४ इंच गहरी और १/५० इंच मोटी होती हैं।

रोम-कूपों की प्रक्रिया—पसीने के साथ रक्त के क्षारयुक्त अंश निकलते हैं और कारबन का कुछ अंश भी साँस ही की भाँति रोम कूपों द्वारा भीतर आया करता है। रोम कूप अपनी प्रक्रिया सर्वदा करते रहते हैं। ग्रीष्म ऋतु में अथवा शारीरिक श्रम के पश्चात् पसीना अधिक निकलता है, परन्तु, और समयों में पसीना निकला करता है पर दीखता नहीं, क्योंकि रोम-कूपों के मुँह पर पहुँचकर भाप बनकर उड़ जाता है। यदि परिश्रम के बाद थोड़ी देर हम उसी प्रकार बैठे रहें, तो यह पसीना भाप बनकर उड़ जाता है। इसी को हम पसीने का सूखना कहते हैं।

रोम-कूप का महत्त्व—रोम-कूप से ओषजन प्रवेश करती है और इसके द्वारा शरीर के भीतर विषमय तत्त्व यथा—आगारिकाम्ल और क्षारयुक्त लवण इत्यादि पसीने के साथ निकलते रहते हैं, इसलिए रोम-कूपों का खुला रहना आवश्यक है। स्नान करने से रोम-कूप खुले रहते हे, साबुन से मलकर नहाना लाभप्रद है, क्योंकि शरीर की चिकनाहट और मैल आदि साबुन के कारण फूल करके छूट जाते हैं और रोम-कूप खुल जाते हे। जब शरीर के किसी भाग में मैल जम जाती है और रोम कूपों का द्वार भर जाता है तब तेजाब उत्पन्न होकर वह भाग पक जाता है। रोम कूपों का महत्त्व इससे ज्ञात हो जाता है कि यदि किसी व्यक्ति के शरीर भर में सिर से लेकर पैर तक गहरा कीचड़ लेपन कर दिया जाय, तो वह मनुष्य मर जायगा, चाहे नथुने श्वास के लिए खुले ही क्यों न हों। इससे ज्ञात हुआ कि केवल नाक ही के द्वारा साँस नहीं लेते, किन्तु हमारा सारा शरीर साँस लेता है। जो कार्य नथुनों या मुँह से चलता है, वही कार्य न्यूनाधिक समस्त शरीर में होता रहता है।

शरीर पर ऋतु का प्रभाव—पसीना उडते समय भाप के रूप में बदल जाता है। भाप सदा उष्ण होती है। कारण यह कि जब जल किसी तप्त वस्तु से छू जाता है, तो उसके ताप को खींच लेता है और इस विधि, भाप के द्वारा, इसकी उष्णता निकलती रहती है। यही कारण है कि व्यायाम करने से शरीर तप्त हो जाता है, परन्तु पसीना निकल जाने से देह की उष्णता शान्त हो जाती है और ठंड लगने लगती है। ग्रीष्म काल में जब आस-पास की वायु की उष्णता शरीर की उष्णता से अधिक हो तब शरीर इस उष्णता को ग्रहण करने लगता है और गर्मी मालूम होती है। गर्मी जान पडने का यह अभिप्राय है कि शरीर के बाहरी भाग का ताप शरीर गत उष्णता की तुलना में बहुत है और शरीर इस गर्मी को अपनी ओर खींच रहा है।

पसीना पर ऋतु का प्रभाव—तुम देखोगे कि शरीर की उष्णता हर ऋतु में समान रहती है। यदि स्वास्थ्य की दशा हो तो, जितनी अधिक उष्णता उत्पन्न होगी उतनी ही अधिकता से उष्णता निकलेगी भी। इसलिए जब वायु में ताप अधिक होता है अथवा गर्मी के समय कठोर व्यायाम किया जाये तब पसीना अत्यधिक निकलता है। पसीना की अधिकता के यह अर्थ हैं कि शरीर की उष्णता अधिक परिमाण में भाप बनकर उड रही है। इसके विपरीत जाडों में कितना ही घोर परिश्रम किया जाय, पसीना थोडे परिमाण में निकलेगा। जिसका यह अर्थ हुआ कि उष्णता अल्प परिमाण में भाप द्वारा उडती है। अस्तु ज्ञात हुआ कि प्रकृति ने रोम-कूपों को शरीर में इस प्रयोजन से रक्खा है, देह की उष्णता घटने-बढ़ने न पाये।

यदि जाडो में पसीना अधिक निकले और ग्रीष्म ऋतुओं में कम तो स्पष्ट है कि जाडों में देह की उष्णता अधिक मात्रा में निकलती है और ग्रीष्म ऋतुओं में कम, फल यह होगा कि अन्तस्ताप की ६८८ की स्वाभाविक मात्रा फिर बनी रहेगी और स्वास्थ्य बिगड जायगा।

शारीरिक उष्णता के बढ़ने पर पसीने की प्रबलता का यह कारण है कि रक्त की नाड़ियों का मुँह फैल जाता है और रक्त अधिक मात्रा में, सूक्ष्म नसों के द्वारा मांस में दौड़ने लगता है, रोम-कूप के छोरवाले गुच्छे अपनी शोषक शक्ति को अधिक वेग से काम में लाते हैं और पसीने का स्राव अधिक-अधिक मात्रा में होने लगता है, परन्तु "ठंडा पसीना" निकलने का दूसरा रूप होता है। कारण यह है कि रक्तवाली नसें संकुचित हो जाती हैं। रक्त का संचार कम हो जाता है। जिसके कारण मुख का रङ्ग फीका पड़ जाता है और शरीर शीतल हो जाता है, परन्तु अकस्मात् भय अथवा अन्य कारणों से पसीना शोषक गुच्छे पुनः अपना काम बड़े वेग से करने लगते हैं और ठंडा पसीना प्रवाहित होता है।

पसीना के विषय में चारों ओर की वायु का भी ध्यान रखना आवश्यक है। यदि वायु तर है और इसमें जल का पूर्ण अंश है तो देह की आर्द्रता थोड़ी मात्रा में भाप बनकर उड़ेगी और देह की उष्णता न निकलने पायेगी, लेकिन आस-पास की वायु का ताप शरीर की उष्णता से अधिक हुआ और वायु शुष्क हुई तो शरीर की उष्णता बढ़ जायगी और शरीर बाहरी ताप को ग्रहण करने लगेगा। इसी कारण ग्रीष्म काल में जब कि वायु सूखी और तप्त हो, जिसे "लू" कहते हैं, जल खूब पीना चाहिए जिससे शरीर में पसीना तरी रहे, पसीना खूब निकले और भाप उड़ती रहे।

स्नान—हमारे देश में कम से कम गर्मियों में सभी लोग स्नान करते हैं, किन्तु जाड़े में बहुत से लोग स्नान करना छोड़ देते हैं। वास्तव में हर एक ऋतु में नित्य-प्रति स्नान करना चाहिए। स्नान से शरीर की शुद्धि होती है, चर्म का मैल दूर होता है, चित्त प्रसन्न होता है और शरीर में स्फूर्ति आती है।

स्नान करने का समय—स्नान करने का सबसे उत्तम समय,

शौच आदि से निवृत्त होकर प्रातःकाल है। उस समय के स्नान से दिन और रात्रि में शरीर पर जमा हुआ मैल दूर हो जाता है। आलस्य जाता रहता है और चित्त में उत्साह आ जाता है। खुली हुई वायु में स्नान करना अति लाभदायक है। स्नान से पहले व्यायाम कर लेना और भी उत्तम है। इससे पसीने के द्वारा शरीर का मैल बाहर निकल जाता है और स्नान से वह सब शरीर से दूर हो जाता है।

यदि प्रातःकाल स्नान न किया जा सके तो दिन में किसी भी समय स्नान करना उचित है। हाँ! भोजन के पश्चात् स्नान नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से भोजन के पाचन में गड़बड़ी हो जाती है और रोग उत्पन्न होने का भय रहता है।

स्नान करने का जल—जिस जल से स्नान किया जाय वह शुद्ध होना चाहिए। गन्दे जल से स्नान करने से शरीर और भी गन्दा हो जाता है।

स्वच्छ ठण्डे जल से स्नान करने से बहुत लाभ होता है। किन्तु यदि शरीर कमज़ोर हो, बीमारी से उठे हो, अथवा ज़ुकाम हो तो गर्म जल ही से स्नान करना उचित है। कमज़ोरी में ठण्डे जल से स्नान करने से ठण्ड लगने का भय रहता है। जल की उष्णता इतनी होनी चाहिए कि वह शरीर को भली मालूम हो। बहुत गर्म जल से नहाने से भी हानि होती है।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है स्नान करने से पहले व्यायाम और शरीर पर तेल की मालिश करना उत्तम है। नहाने के समय साबुन से सारे शरीर को मलना चाहिए। जिन स्थानों में पसीना अधिक जमा होता है जैसे बगल, जाँघ की घाई, या पेड़ू इत्यादि ऐसे स्थानों को विशेषतया स्वच्छ करने की आवश्यकता है। नहाते समय सारे शरीर को भली प्रकार मलना चाहिए। स्नान करने के बाद साफ़ सूखे तौलिए

से सारे शरीर को भली प्रकार पोंछना आवश्यक है। जघाओं या पेट में जल के रह जाने से दाद या खाज उत्पन्न हो जाती है।

साबुन का प्रयोग—पसीने में जो विषैली वस्तु चर्म से निकलती है, उसमें एक प्रकार का तेल होता है। इस तेल को दूर करने के लिए साबुन का प्रयोग आवश्यक है। सप्ताह में कम से कम दो बार गर्म जल के साथ साबुन को शरीर पर मलकर स्नान करना चाहिए। उसके पश्चात् शरीर को ठण्डे जल से धोया जा सकता है। शरीर के जो भाग खुले रहते हैं जैसे मुख, गरदन, हाथ इत्यादि, उनको नित्य-प्रति साबुन से धोना चाहिए।

शरीर पर तेल की मालिश—विशेष कर जाड़े के दिनों में तेल की मालिश की आवश्यकता होती है, क्योंकि उस मौसम में चर्म में ख़ुश्की अधिक रहती है। जाड़े के मौसम में महीने में दो बार तेल की मालिश काफ़ी है। तेल मलते समय शरीर की भली भाँति मालिश होनी चाहिए। इससे चर्म में रक्त का प्रवाह बढ़ जाता है और भीतर की विषैली वस्तुएँ बाहर निकल आती हैं। रक्त को आक्सीजन अधिक मिलती है और पसीना निकालनेवाली नलियों के मुँह खुल जाते हैं। धूप में तेल की मालिश से अधिक लाभ होता है। तेल मलने के पश्चात् साबुन मलकर स्नान करना चाहिए।

वस्त्र की सफ़ाई—ठंडे या शीतोष्ण स्थानों में मोटे या गर्म कपड़े धारण करने का यही कारण है कि कपड़े शरीर की रक्षा करें और बाहर की वायु शरीर में लगकर शरीर की उष्णता न हरण करने पाये। यह विचार मिथ्या है कि कपड़े को गर्म करते हैं। यथार्थ बात यह है कि कपड़े देह की उष्णता को बाहर की वायु में मिलने से रोकते हैं। *डाक्टरों की सम्मति है कि एक मोटा वस्त्र* पहनने की जगह यदि कई कपड़े नीचे ऊपर पहने जायँ तो अधिक लाभ है, क्योंकि इस प्रकार इन कपड़ों के बीच की वायु उष्ण रहती है, बाहर की ठंडी वायु

शरीर तक नहीं पहुँचने पाती। इस प्रयोजन के लिए ऊनी कपड़े उत्तम होते हैं। इनसे न शरीर की उष्णता बाहर निकलने पाती है और न बाहर की उष्णता भीतर पहुँचने पाती है। इसी नियम पर, ग्रीष्म-काल में भी ऊनी वस्त्र लाभदायक है, कम से कम बनियाइन या नीचे पहनने की बण्डी आदि अवश्य होनी चाहिए, क्योंकि यह कपड़े पसीना सोखते हैं और शरीर को शीतल रखते हैं।

खुली वायु में भीगा कपड़ा पहनने से हानि पहुँचती है और सर्दी लगकर निमोनिया हो जाता है। भीगे कपड़े पहनने से अर्द्धाङ्ग पक्षाघात (फ़ालिज) का भय है। इसी कारण आयास करके, या किसी उष्ण स्थान जहाँ पसीना चुचुवाता हो, एकबारगी ठंडी वायु में निकल आना या टहलना हानिकर है। व्यायाम के पश्चात् गर्म कपड़ा पहनना चाहिए और जब पसीना सूख जाये तब नहाना चाहिए। पसीने से भीगा हुआ कपड़ा उतारकर धूप में डाल देना चाहिए। बनियाइन, मोजे, बण्डी इत्यादि को शीघ्र बदल डालना चाहिए और दूसरी बण्डी उपयोग में लानी चाहिए। पसीने में शरीर के जहरीले अंश निकलते हैं। इनमें एक प्रकार का तेजाब होता है। मैल के साथ जब पसीना मिलता है तब तेजाब का काम करने लगता है। दाद, खुजली इत्यादि विविध भाँति के त्वचा रोग हो जाते हैं। मैल के जम जाने से और पसीने में सड़ने से शरीर में घाव हो जाते हैं। पसीना में ओदे वस्त्र न बदलने से यह व्याधियाँ होती हैं। रोम-कूपों के छिद्र इस जोर के प्रभाव से पक जाते हैं और देह भर में दाने पड़ जाते हैं जो कभी बढ़-कर फुन्सियों के रूप में प्रकट होते हैं।

मलिन वस्त्र—मैले कपड़ों में चीलर पड़ जाते हैं। देह में खुजलाहट होने लगती है, और महीन महीन दाने निकलने लगते हैं जिनसे कभी-कभी बड़ा दुःख होता है। चौथे दिन अथवा अधिक से अधिक आठवें दिन कपड़े बदल डालने चाहिए। जहाँ तक हो सके,

एक ही वस्त्र रात-दिन निरन्तर न पहनना चाहिए। रात के कपड़े अलग रहें और दिन के कपड़े अलग, इससे एक तो कपड़े मैले कम होते हैं, दूसरे पसीने से कम गलते हैं। जो कपड़े नीचे पहने जायँ उनकी स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए। उनको शीघ्र शीघ्र बदलो और प्रति-दिन धो डालो, पसीना सूख जाने से कपड़े में दुर्गन्धि आने लगती है। जेब में सदा रूमाल रखना चाहिए और नाक मुँह रुमाल से साफ़ करने चाहिए। मैले लड़के कुरते की बाहों में नाक पोंछा करते हैं, यह बड़ी गन्दी बान है। इससे कपड़े भी गन्दे होते हैं और दूसरों को घृणा भी लगती है।

लोगों का विचार है कि बारम्बार धुलाने से कपड़े फट जाते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं। तुम जानते हो कि पसीने मे खार होती है, मैल पसीना में तेज़ाब पैदा करता है, जिससे कपडा गल जाता है। यही कारण है कि मैले कपड़े की आयु बहुत कम होती है? अनुभव के लिए, एक बूँद तेजाब किसी कपड़े पर डाल दो, कपडा जल जायगा। परीक्षाओं से सिद्ध है कि यदि ऊनी मोजे प्रतिदिन धुलते रहें, तो उनकी आयु दुगुनी हो जाती है। मोजों को दूसरे-तीसरे दिन अवश्य धुलवाना चाहिए, नहीं तो पैरों में पसीने से दुर्गन्धि आने लगती है।

बिछौने की सफ़ाई—पहनने के वस्त्रों की भाँति अन्य वस्त्रों की भी सावधानी रखनी चाहिए। पलँग की चादर, तोशक, तकिये और रात्रि के पहनने के कपड़े सबको दूसरे-तीसरे दिन धूप में डाल देना चाहिए, जिससे उनके कीटाणु धूप में मर जायँ। दरी, तोशक पर चादर लगाना उचित है, क्योंकि चादर से दरी और तोशक मैली नहीं होने पाती और चादर निरन्तर धुलती रहती है। पहनने के कपड़ों की भाँति चादर, तकिया तथा गिलाफ़ भी बदलने चाहिए।

मल और मूत्र की सफ़ाई—हम पहले ही कह आये हैं कि शरीर के बड़े-बड़े छिद्रों में नीचे के अङ्ग में मल-मूत्र त्याग करने के छिद्र हैं। उचित समय पर मल-मूत्र त्याग करके इन अंगों को भी भले प्रकार साफ़ पानी से धो डालना चाहिए। मूत्र-नली को गंदी रखने से और उसमें खुजली मचने से बहुधा बुरी टेव पड़ जाती है। इसलिए इस अंग को भी दूसरे-तीसरे दिन साफ़ पानी से धो डालना चाहिए। शौच लेते समय हम लोगों को अपनी पुरानी तथा साफ़ आदतों को न छोड़ देना चाहिए। अँगरेजों की तरह हमको "टॉयलेट पेपर" के इस्तेमाल की जरूरत नहीं है। यह आदत ठण्डे मुल्कों के लिए, जहाँ कि सर्दी बहुत होती है भले ही ठीक हो, पर हमारे गर्म देश के लिए किसी प्रकार लाभदायक नहीं। यह याद रखना चाहिए कि शरीर की सफ़ाई करने के वास्ते साफ़ पानी से बढ़कर अच्छी और कोई चीज़ नहीं है।

दाँतों की बनावट—पैदा होने के समय बच्चे के मुँह में दाँत नहीं दिखाई पड़ते। बच्चे के दाँत छठवें महीने के बाद निकलना शुरू होते हैं। ये दूध के दाँत कहलाते हैं। दूसरे बरस तक ये दाँत निकल चुकते हैं। ये संख्या में बीस होते हैं। बच्चों के पक्के दाँत छः-सात बरस की अवस्था में निकलना आरम्भ होते हैं। उस समय दूध के दाँत गिरते जाते हैं और पक्के दाँत निकलते आते हैं। अक्ल दाढ़ को छोड़कर ये दाँत बारह तेरह बरस तक निकल चुकते हैं। स्थायी दाँत हमारे जीवन भर रहने चाहिए। साधारणतया हमारे मुख में कुल ३२ दाँत होते हैं जिनमें १६ ऊपर और १६ नीचे।
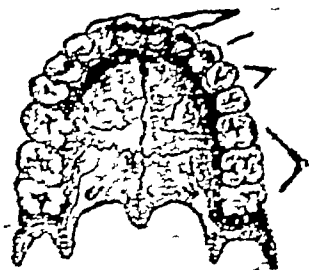
दाँत तीन प्रकार के होते हैं

(१) कुतरनेवाले—आगे के चपटे दाँत जो भोजन को कुतरते हैं।

(२) नोकीले दाँत—ये कुत्ते के दाँत की तरह होते हैं। ये काटने और चीरने के काम आते हैं।

(३) डाढ़ें—ये चपटी ऊन के चौड़े दाँत होते हैं। ये भोजन को चबाने के काम आते हैं।

दाँत साफ न करने से हानि—रात में किये हुए भोजन के टुकड़े तथा जमा हुआ थूक, बलगम इत्यादि मुँह में एक तरह का बुरा स्वाद पैदा कर देते हैं। दाँत साफ न होने से खराब हो जाते हैं। अंगरेजी में एक कहावत है—"साफ दाँत कभी नहीं सड़ता"। दाँतों के साफ न रहने से दाँत का सबसे ऊपर का चमकदार खोल यानी 'एनेमल' गलने लगता है।

बहुत गर्म चीजें या बहुत ठंडी चीजें खाने-पीने से दाँतों में पीड़ा होने लगती है। गर्म गर्म चीजें खाकर ठंडा पानी पी लेने से यह 'एनेमल खराब हो जाता है। इससे दाँत के अन्दर का गूदा निकल आता है दाँतों के बीच में यदि अन्न का टुकड़ा रह जाता है तो सड़कर दाँत को खराब करता है। मुँह से बदबू आने लगती है और मनुष्य को बार-बार थूकना पड़ता है। पास बैठनेवालों को यह एक बहुत ही गन्दी आदत मालूम होती है। दाँत और मुँह में यदि स्वच्छता रहती है तो प्रसन्न रहता है।

दिन में यदि हो सके तो तीन-चार बार दाँतों को अवश्य साफ करना चाहिए। हमारे यहाँ ऐसा ही होता भी था, पर अब देखा-देखी खाना खाने के बाद अच्छी तरह कुल्ला करने की आदत हम छोड़ते जाते है। हमें चाहिए कि एक बार सुबह और दोनों समय खाना खाने के बाद दाँतों को खूब साफ करने की आदत न छोड़े। दाँतों के विषय में एक बात और जानने योग्य यह है कि कभी-कभी उन पर एक काली चीज़ जम जाती है जिसे "टारटर" कहते है। इसके नीचे अन्न के टुकड़े सड़ने लगते है और मसूड़ो से खून तथा मवाद आने लगता है।

अब दाँत साफ करने के लिए बुरुश और मंजनों का रिवाज बहुत चल गया है। अच्छा बुरुश न होने से अथवा अच्छा मंजन न मिलने से

प्रोफाइलेक्टिक बुरुश

लाभ के बदले हानि की सम्भावना अधिक रहती है। यदि बुरुश से दाँत साफ करने हों तो केवल प्रोफाइलेक्टिक बुरुश का इस्तेमाल करना चाहिए। "प्रोफाइलेक्टिक" इसलिए सबसे अच्छा बुरुश है कि वह दाँतों की गोलाई के अनुसार बना होने के कारण हर एक हिस्से में पहुँचकर दाँतों को अच्छी तरह साफ कर देता है। इसको भी समय समय पर अच्छी तरह साबुन व गर्म पानी से धो डालना चाहिए। दाँतों को साफ करते समय, ऊपर तथा नीचे के दाँतों को मिलाकर ऊपर के दाँतों को ऊपर से नीचे की ओर तथा नीचे के दाँतों को नीचे से ऊपर की ओर साफ करना चाहिए।

दाँतो को एक तरफ से दूसरी तरफ की ओर रगड़ने से, मसूड़े

खुलकर कमजोर हो जाते हैं। इसलिए हमें चाहिए कि हम सर्वदा ऊपर बताये हुए तरीक़े से दाँतों को ऊपर से नीचे की ओर और नीचे से ऊपर की ओर ही साफ़ करें। इसी प्रकार दाँतों के भीतरी हिस्सा को भी साफ़ करना चाहिए।

दातौन का प्रयोग—हमारे देश में दाँतों के साफ़ करने के लिए नीम, बबूल, मौलश्री या कनेर की दातौन की कूँची का इस्तेमाल होता है। यह बहुत ही उत्तम है।

(१) नीम की दातौन से दाँत साफ़ करने से उसकी कड़वाहट और ज़हर के कारण कीड़े मर जाते हैं। दाँतों और मुँह की सफ़ाई हो जाने से मुँह में एक अजीब तरह की स्वच्छता आ जाती है। इससे चित्त बहुत प्रसन्न रहता है।

(२) नीम की दातौन रोज़ एक ताज़ी टहनी से बनाई जा सकती है। उसमें बुरुश की तरह मैले होने का तथा कीड़े पड़ने का कोई डर नहीं रहता।

(३) बबूल या कनेर की कूँची बनाकर उससे दाँतों तथा मसूड़ों पर सरसों के तेल में नमक मिलाकर रगड़ने से दाँत और मसूड़े खूब चमकदार और मजबूत हो जाते हैं।

(४) नीम का पेड़ बड़ी आसानी से सब जगह मिल जाता है और उसके लिए पैसे खर्चने की भी जरूरत नहीं है।

(५) दाँतों को कोयले, राख या मिट्टी से साफ़ करने की आदत डालना ठीक नहीं, इससे मसूड़े कमजोर हो जाते हैं।

दाँत साफ़ करने के नियम—(१) दाँतों को बाहर-भीतर पूरे तरीक़े से बुरुश या दातौन से ऊपर-नीचे रगड़कर साफ़ रक्खो।

(२) भोजन का कोई भाग मुँह में न रहने पावे। इसलिए भोजन के बाद खूब अच्छी तरह काफी पानी से कुल्ला करना चाहिए।

(३) सुबह सोकर उठने के बाद और रात को सोने से पहले दाँतों को अच्छी तरह साफ़ करो।

(४) यदि ब्रुश से दाँत साफ़ करना हो तो उसके बाल कड़े और गोलाई में लगे होने चाहिए। ब्रुश को काम करने के बाद अच्छी तरह धोकर साफ़ करो।

(५) किसी दूसरे आदमी का ब्रुश काम में न लाओ।

(६) भोजन को खूब चबाना चाहिए। इससे दाँत मज़बूत होते हैं। भोजन के बाद फल खाने चाहिए। इनसे मुँह की सफ़ाई हो जाती है।

(७) पान, तम्बाकू और सुपारी न खाना चाहिए। इनसे दाँत गन्दे और कमज़ोर हो जाते हैं।

हमारे देश में पहले दाँत के रोगियों की संख्या यूरोपियन देशों के मुक़ाबले बहुत कम थी। इसका कारण यह था कि हम लोगों में नीम की दातौन करने तथा खाना खाने के बाद खूब कुल्ला कर डालने की बहुत ही अच्छी आदत थी। अब जिस तरह यूरोपियन लोग चाय या मिठाई इत्यादि खाने के बाद कुल्ला नहीं करते वैसे ही हम लोग भी करने लगे हैं। ऐसा करने से चाहे रोग न पैदा हो, पर मुँह से बदबू तो अवश्य आने लगती है। हमको चाहिए कि हम इन विदेशी रीतियों की नक़ल न करें और अपनी पुरानी चालों को जारी रक्खें। इससे हमारे दाँत मजबूत बने रहेंगे और हम अन्न को अच्छी तरह पचा सकेंगे।

आँख की सफ़ाई—प्रातःकाल उठकर जिस तरह हम हाथ-मुँह इत्यादि अंगों को धोते हैं उसी तरह आँखों को ठंडे पानी के छींटे देना बहुत लाभदायक है। आँख धोने के लिए एक प्याला होता है। उसमें जल भरकर आँख पर लगाकर आँख खोल देने से वे धुल जाती हैं। दिन में यदि तीन-चार बार आँखों को ठंडे जल से धोवें या छींटे दें तो

आँख के बहुत से रोग कम हो जायँ। आँखों को कभी-कभी बोरिक लोशन या त्रिफला के जल से धोना, आँखों की रोशनी के लिए बहुत अच्छा है। इसके अतिरिक्त आँख उठने पर गुलाबजल में फिटकरी मिलाकर, दो चार बूँद दिन में तीन-चार बार डालते रहना चाहिए और कष्ट अधिक होने पर किसी डाक्टर या वैद्य की सलाह लेनी चाहिए।

सूर्य की ओर या और किसी तेज रोशनी की ओर देर तक देखते रहने से आँखों की रोशनी कम हो जाती है। धुँधली, बहुत तेज़ या हिलती हुई रोशनी में पढ़ने से भी आँखें ख़राब हो जाती हैं। चलती हुई गाड़ी में पढ़ना तथा बहुत छोटे-छोटे टाइप की पुस्तकें पढ़ना भी हानिकारक हैं। कड़ी धूप में घूमने से, धुँआ लगने से, आँखों में रेत वग़ैरह पड़ जाने से आँखें अकसर उठ आती हैं।

यह याद रखना चाहिए कि आँख एक बहुत नाज़ुक अंग है। इसका इस्तेमाल सावधानी से होना चाहिए। आँखों में रोहे पड़ जाने से आँखें अकसर ख़राब हो जाती हैं और सफ़ेदी पड़ जाती है। चेचक निकलने पर डाक्टर को न दिखलाने के कारण भी अकसर आँखें ख़राब हो जाती हैं। इन सब हालतों में आँखें किसी डाक्टर या वैद्य को अवश्य दिखाना चाहिए, छूतछात से डरकर बच्चों की आँखें खोना ठीक नहीं। न मालूम कितने बालक ऐसे देखने में आते हैं जिन्होंने अपनी आँखें चेचक में खोई हैं। यदि उनके माँ-बाप इन बच्चों को डाक्टर या वैद्य को ठीक समय पर दिखा देते तो उनकी आँखों की रोशनी न जाती। दूर की चीज साफ़ न दिखाई पड़ने पर तथा ब्लैकबोर्ड पर लिखे हुए अक्षर अच्छी तरह न पढ़े जाने पर लड़कों के लिए यह जरूरी है कि अपने माँ-बाप से कहकर किसी होशियार डाक्टर या वैद्य को ज़रूर ही अपनी आँखें दिखला दें। डाक्टर उनकी आँखों

की जाँच करके उनके लिए ठीक चश्मे बता देगा। इसके लगाने पर आँखों को अधिक नुक़सान न पहुँचेगा।

आँखों के कमज़ोर हो जाने पर बिना इलाज किये हुए उनका इस्तेमाल करते रहने से अक्सर आँखों में भेडापन आ जाता है। पढने से आँखों में कीचड निकलने लगता है और सिर में दर्द होने लगता है। ऐसा होने से बालकों का जी पढने में नहीं लगता। सिर में दर्द इस कारण होता है कि आँखें जोर पढने पर काम करना नहीं चाहतीं और यदि थोडे दिन आँखों की ओर ध्यान न दिया जाय तो वे बहुत ही कमजोर हो जाती हैं। लापरवाही करके आँखों को कमजोर करना ठीक नहीं।

नाक की सफ़ाई—नाक को भी अच्छी तरह साफ़ रखना चाहिए। नाक का रोग हो जाने तथा ज़ुकाम में नाक के सट जाने से बालकों को अक्सर मुँह से साँस लेने की आदत पड जाती है जिससे उन्हें एडीनाॅयडस् आदि रोग हो जाते हैं। इससे उन्हें बुख़ार भी रहने लगता है और बहुत सी हानिकारक बातें पैदा हो जाती हैं। हमें चाहिए कि हम हमेशा नाक से साँस लें। जाडे के दिनों में बाहर की ठण्डी हवा जब नाक द्वारा फेफडों में पहुँचती है तब रास्ते में गर्म हो जाती है। इससे निमोनिया होने का डर नहीं रहता। इसलिए यह परमावश्यक है कि हमारी नाक सदा साफ़ और साँस लेने योग्य रह सके।

कान की सफ़ाई—बालक कभी-कभी कान में सींक, काग़ज़ के टुकडे तथा छोटी-छोटी चीज़ें डाल लिया करते हैं। ऐसा कभी न करना चाहिए। बड़े-बड़े लोग भी अक्सर पेन्सिल की नोक या दियासलाई से कान साफ़ करते हैं। यह एक बहुत बुरी आदत है। इससे परदा फट जाने पर बहुत दिनों तक मवाद आने से या ठीक इलाज न होने से बहरे हो जाने का डर रहता है। कान में कभी कभी तेल डालकर उसे रुई की फुरहरी से साफ़ करना चाहिए। अक्सर मैल जम जाने, नदी में नहाने

तथा कानों में गर्द भर जाने से बहुत दर्द होने लगता है। यों भी बच्चों के कान कभी कभी बहने लगते हैं और उनमें से मवाद आने लगता है। इन सब बातों के होने पर कान को कनमैलिये को न दिखाकर किसी डाक्टर को दिखलाना चाहिए या अस्पताल में जाकर कानों को धुलवाकर दवा डलवानी चाहिए। कान के विषय में लापरवाही करने से अक्सर परदे पर चोट आ जाती है और आदमी हमेशा के लिए बहरा हो जाता है। बहरे होने से मनुष्य को जो दुःख होता है उसे बताने की कोई ज़रूरत नहीं। तुम लोगों को नाक, कान इत्यादि के विषय में एक छोटी कहावत याद रखनी चाहिए।

कान मे तिनका, नाक मे उँगली, मतकर, मतकर, मतकर।
आँख मे अंजन, दाँत में मंजन, नितकर, नितकर, नितकर॥

गले की सफ़ाई—गले के भीतर से दो नलियाँ आरम्भ होती हैं। एक भाजन पेट में ले जानेवाली और दूसरी साँस को भीतर ले जानेवाली। ऊपर की ओर नाक और कान से गला मिला रहता है। गले का भीतरी भाग साफ़ न रहने से सब तरफ़ दोष फैल सकता है। गले के भीतर ऊपर की ओर दो गिल्टियाँ होती हैं। इन गिल्टियों के सूज जाने से कान को बहुत हानि पहुँचती है। गिल्टियों की बीमारी अधिक होने से कभी कभी बालक बहरे भी हो जाते हैं। जिन बालकों के कान बहुत बहते हों और सुनने में कठिनाई होती हो, उन्हें डाक्टर को दिखाकर गिल्टियों का उचित इलाज करा लेना चाहिए।

कभी-कभी सर्दी अथवा खाने में व्यतिक्रम के कारण गले में ख़राबी उत्पन्न हो जाती है। ऐसी दशा में गले की खाल लाल पड़ जाती है और सूज जाती है। अगर इसका उचित इलाज न किया जाय तो खाँसी उत्पन्न हो जाती है। साधारण अवस्था में नमक मिले हुए गर्म पानी से गरारे करने से गला ठीक हो जाता है। रोग अधिक

चढ़ने पर दिन में एक-दो बार गले में कोई थ्रोट पेण्ट जैसे टेनिक एसिड मिलाकर ग्लेसरीन अथवा मिन्डेल्स पेण्ट लगाने की ज़रूरत पड़ती है। गले को अधिक गर्मी अथवा सर्दी दोनों से बचाना चाहिए।

मकान की सफ़ाई—अपने शरीर और कपड़ों को साफ़ रखने के सिवा तुम्हें उस स्थान की सफ़ाई का भी ध्यान रखना चाहिए, जहाँ तुम रहते हो। रहने के स्थान में अगर गन्दगी होती है तो उसका असर शरीर और कपड़े दोनों पर पड़ता है। गन्दा कमरा केवल देखने में ही बुरा नहीं मालूम होता, बल्कि उसमें रहने से स्वास्थ्य को भी हानि पहुँचती है। अपने घर, मदरसा और जिन अन्य स्थानों में तुम जाते हो, उन सबकी सफ़ाई का तुम्हें ध्यान रखना चाहिए।

कमरों की सफ़ाई के विषय में सबसे पहली बात जो तुम्हें जानना चाहिए यह है कि जो स्थान खिड़कियों या दरवाज़ों के पीछे होता है वहाँ अकसर कूड़ा तथा जाला जमा होता रहता है और साफ़ नहीं किया जाता। हमें चाहिए कि कमरे को साफ़ करते समय हम इन्हें भी अवश्य साफ़ कर ले। शरीर और कपड़ों की सफ़ाई के साथ-साथ रहने से मकान की सफ़ाई भी बहुत ही आवश्यक है।

जो स्थान जिस काम के लिए ठीक हो उसमें वही काम किया जाय। सोने के कमरे में तरकारी वगैरह काटना या खाना पकाना ठीक नहीं। यदि तुम्हारे पास कई कमरे हों तो तुम एक को सोने के लिए, दूसरे को उठने-बैठने तथा पढ़ने के लिए तथा तीसरे को किसी और विशेष काम में ला सकते हो। यदि तुम्हारे पास केवल एक ही कमरा हो तो तुम उसे ठीक रखकर उसी में सोने, बैठने तथा पढ़ने का काम अच्छी तरह कर सकते हो। कमरे में वही काम करना चाहिए जिसके लिए तुमने उसे ठीक कर रक्खा हो। उसमें वही चीजें रक्खी जायें जिनके लिए उसमें

स्थान हो। ऐसा करने से कमरे की सफ़ाई थोड़े परिश्रम से बड़ी सुन्दरता के साथ हो जाती है।

कमरे के फर्श को सदा झाड़ बुहारकर साफ़ रखना चाहिए। यदि फ़र्श कच्चा है तो उसको कभी-कभी मिट्टी तथा ताजा गोबर से लीप देना चाहिए। कच्चा फर्श होने पर ऊपर की मिट्टी साल में कम से कम दो दफे निकलवाकर उसकी जगह ताजी व साफ़ मिट्टी भरवाकर जमीन को खूब अच्छी तरह कुटवा देना चाहिए।

झाड़ू-बुहारू लगाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि गर्द उड़कर फिर कमरे की चीजों पर न जम जाय। इसलिए पानी छिड़ककर झाड़ना चाहिए जिसमें गर्द न उड़े। पक्की फर्श होने पर उसे भींगे हुए कपड़ों से रगड़कर समय समय पर फीनाइल से धो देने से फ़र्श की सफ़ाई खूब हो जाती है। गर्मी के दिनों में हर दूसरे-तीसरे दिन फ़र्श को पानी से धो डालने से ठण्डक भी रहती है और सफ़ाई भी हो जाती है। सफ़ाई करते समय कोनों को जरूर साफ़ करना चाहिए और उनमें लगे हुए जाले को बाँस में कपड़ा लपेटकर हटा देना चाहिए।

कमरे की दीवारें कच्ची होने पर उन्हें पीली मिट्टी से लीपकर और हर हफ़्ते गर्द झाड़कर साफ़ कर देना चाहिए। चूने से पुती हुई हों तो उन्हें धो भी सकते हैं और कभी-कभी चूने को खुरचवा-कर दुबारा चूना कलई करवाकर उन्हें साफ़ रख सकते हैं। चूने की दीवारों पर साल में यदि दो दफा न हो तो एक दफा चूना अवश्य पुतवाना चाहिए। कमरे की छत तथा ताक, कार्निस तथा अलमारियाँ और कमरे में लगी हुई तसवीरें अक्सर साफ़ नहीं की जातीं। इन पर गर्द जमा होती रहती है। हमको चाहिए कि हम इन पर गर्द तथा जाले जमा न होने दें।

सामान की सफ़ाई—कमरे की सफ़ाई करने के बाद कमरे की

चीजों और मेज तथा कुर्सी आदि को झाड़-पोंछकर ठीक जगह पर रख देना चाहिए। कमरे के दरवाज़े तथा खिड़कियों को खूब अच्छी तरह खोल देना चाहिए जिससे कमरे में रोशनी आवे और स्वच्छ हवा कमरे में भर जाय। दरवाजे व खिड़कियों को भी झाड़-पोंछकर साफ कर देना चाहिए तथा समय समय पर उन पर पालिश कर देनी चाहिए। यदि पालिश न हो सके तो कम से कम उन्हें साबुन और पानी से अवश्य धो डालना चाहिए।

सफाई के विषय में एक बात और ध्यान देने योग्य है। कमरे में कागज के टुकड़े फाड़कर फेंकने, फलों के छिलके इधर-उधर डाल देने तथा जगह-जगह कमरे में थूकने से कमरे में सफाई कभी नहीं रह सकती। कमरे के अन्दर थूकने की आदत बुरी है, क्योंकि रोग के कीड़े थूक के सूख जाने से हवा में मिल दूर दूर तक उड़कर दूसरों को भी रोग का शिकार बना लेते हैं। सामान थोड़ा तथा हल्का होना चाहिए जिससे कि वह आसानी से साफ किया जा सके। जितना अधिक सामान होगा उतनी ही अधिक गर्द जमा होगी और क्रमशः उतनी ही अधिक दिक्कत से साफ किया जा सकेगा।

सामान किस प्रकार रखना चाहिए—जमीन पर बिछाने के लिए यदि बड़ी दरी या जाज़िम हो तो उस कमरे में चारों ओर थोड़ी जगह छोड़कर बिछा सकते हैं, पर यह ध्यान रखना चाहिए कि वह सातवें-आठवें दिन बाहर निकाल कर धूप में डाल दी जाय और भली प्रकार झाड़कर मकान में लाई जाय। कुर्सी इस रुख से रखनी चाहिए कि किताबों पर अच्छी रोशनी पड़ सके। सोने के लिए खाट यदि कमरे के बाहर बरामदे में रक्खी जाय तो अच्छा है। यदि यह न हो सके तो कमरे में एक ओर बिछाई जाय और यह ध्यान रक्खा जाय कि उसकी पट्टियाँ दीवार से काफी फासले पर हों। पढ़ने-लिखने का सामान मेज़ पर ठीक से रक्खा हुआ हो। किताबों के रखने के लिए यदि आलमारी हो तो वह

भी सुन्दरतापूर्वक कागज चढ़ाई हुई किनारों से सजी हो। कपड़ा टाँगने के लिए एक ओर खूँटी गड़ी हो और उस पर कपड़े करीने से टँगे हों। जूते भी उसी जगह ठिकाने से रक्खे हों तथा इन सबके ऊपर एक परदा पड़ा हो जिससे ये चीजें गर्द से बचे और कमरा भी देखने में सुन्दर मालूम हो।

इसके अतिरिक्त सदर दरवाजे पर एक अच्छी मजबूत चिक भी अवश्य होनी चाहिए। इससे पर्दा रहता है और मक्खियों से भी बचाव होता है। एक बड़ा शीशा कमरे में एक ओर अवश्य लगाना चाहिए। इसमे अपने कपड़े-लत्ते के ठीक व स्वच्छ होने तथा शरीर के कमजोर व दुबला होने का हाल सदा मालूम होता रहता है।

कमरे और सामान को ऊपर बतलाई हुई रीति के अनुसार साफ रखना न तो कठिन है और न उसमें कुछ खर्च ही होता है। यदि रोज थोड़ी थोड़ी सफाई की जाय तो सब मकान और सामान एक तो सरलता-पूर्वक साफ रक्खा जा सकता है और दूसरे रोज बरोज सफाई करने से साफ रहने की एक बहुत अच्छी आदत भी पड़ जाती है।

घर के बाहर की सफ़ाई—कुछ लोग अपने घर को साफ रखते हैं, परन्तु उसके चारों ओर की सफाई पर बिलकुल ध्यान नहीं देते। अगर घर से निकालकर कूड़ा करकट बाहर डाल दिया जाय और वहाँ से उसके हटाने का कोई प्रबन्ध न हो तो वह फिर हवा आदि के द्वारा घर में पहुँच जाता है। घर के चारों ओर बहुत कूड़ा एकत्र न होने देना चाहिए।

खिड़कियों में से बार बार बाहर कूड़ा डालने की आदत बुरी होती है। बहुतेरे लोग कागज़ के टुकड़े, फलों के छिलके और गन्दा पानी खिड़कियों से बाहर फेंका करते हैं। कुछ लोगों को पान और अन्य वस्तुएँ थूकने की आदत पड़ जाती है। यह आदत बुरी है। इस प्रकार जो कुछ

बाहर फेंका जाता है, वह खिड़की को गन्दा कर देता है और हवा के साथ फिर भीतर आता है।

घर के चारों ओर की नालियों की सफाई पर भी ध्यान देना चाहिए। नालियों में सड़ी-गली वस्तुओं के एकत्र होने से बहुत सी बीमारियों के कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं। ये धीरे धीरे घर में प्रवेश करते हैं और बीमारी फैलाते हैं। नालियों को फिनाइल अथवा लाइसोल के पानी से धुलवा देना चाहिए।

शहरों में घर के बाहर की सफाई की देख रेख म्यूनिसिपैलिटी के मेहतरों के सिपुर्द रहती है; परन्तु घर में रहनेवालों को स्वयं इस ओर थोड़ा ध्यान देना चाहिए। घर के भीतर के कमरों की सफ़ाई की देखना तो रहनेवाले का ही काम है।

फर्श और दीवार की सफाई—वर्ष में एक बार दीवारों पर चूने की सफ़ेदी की जाती है। चूने से पोतने से दीवारें स्वच्छ और उज्ज्वल हो जाती हैं। चूने में यह गुण है कि बीमारी के छोटे छोटे कीटाणु उससे मर जाते हैं। बरसात की ऋतु में कीटाणु अधिक उत्पन्न होते हैं। इसलिए बरसात बीतने के बाद और जाड़ा शुरू होने के पहले दीवारों की सफ़ाई करना उचित है। दीवारों के कोनों और छत में मकड़ी के जाले लग जाते हैं। इनको प्रति सप्ताह एक बार साफ़ करा देना चाहिए।

गाँवों में कच्चे मकान होते हैं। उनकी दीवारें और फ़र्श प्रायः गोबर से लीपे जाते हैं। गाय के गोबर में स्थान को साफ़ करने का गुण है। लिपे हुए स्थान को काम में लाने से पहले ख़ूब सूख जाने देना चाहिए। गीले स्थान में बैठने से कपड़े मैले हो जाते हैं और शरीर में गन्दगी लग जाती है।

फ़र्श सफाई पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, क्योंकि जितनी धू उड़ती है वह सब धीरे धीरे फ़र्श पर [illegible] जाती है। फ़र्श

पर प्रतिदिन झाड़ू लगनी चाहिए। यदि धूल अधिक जमा हो तो झाड़ू देने से पहले पानी के थोड़े से छींटे दे देना चाहिए। कमरों के फर्श पर प्राय दरी अथवा चटाई बिछाई जाती है। साधारण रीति से चटाई और दरी के ऊपर से झाड़ू लगाई जाती है। इसलिए यह आवश्यक है कि प्रति सप्ताह दरी और चटाई को उठाकर फर्श पर झाड़ू लगा दी जाय।

खिड़कियों और दरवाज़ों की सफ़ाई—खिड़कियों और दरवाज़ों पर धूल जम जाती है। कमरे में झाड़ू देने के उपरान्त यह धूल कपड़े अथवा झाड़न से साफ़ कर देनी चाहिए। खिड़कियाँ और दरवाज़ों के पीछे जाले बहुत लग जाते हैं। इन्हें भी साफ़ कर देना चाहिए। साल में कई बार दरवाज़ों और खिड़कियों पर वार्निश करा देना चाहिए। वार्निश न मिल सके तो उन पर तेल और पानी मिलाकर अवश्य रगड़ देना चाहिए।

चौके की स्वच्छता—चौके की स्वच्छता का आशय यह है कि पानी से, मिट्टी से, या गोबर से रसोईघर की सफ़ाई की जाय। जूठन वगैरह नाम-मात्र को भी न रहे, ताकि मक्खियों के लिए वहाँ कोई आकर्षण ही न हो। इसके अतिरिक्त आठवें दिन रसोईघर की दीवारों और छत की भी सफाई होनी चाहिए।

चौके का फर्श यदि पक्का हो तो चौके की स्वच्छता अधिक रहती है। कच्चा फर्श होने से मिट्टी या गोबर से लिपाई करनी पड़ती है। गोबर अनेक कीटाणुओं को नष्ट करता है, परन्तु रसोईघर में बार-बार आने-जाने से धूल आ ही जाती है। इसलिए पक्के फर्श को धोने में सुविधा होती है। रसोई के किवाड़ जालीदार होना आवश्यक है।

रसोईघर ही में खाना खाने से रसोईघर और भी गन्दा हो जाता है। खाना खाने का कमरा अलग, परन्तु रसोईघर ही के बगल में होना चाहिए। वहाँ का वातावरण शान्त और चित्ताकर्षक हो। दो चार

सादे चित्र, साफ चटाइयाँ, फूलों के गुलदस्ते आदि चित्त को प्रसन्न करते हैं। परन्तु यह सब न होने पर भी ख़ाली स्वच्छता ही आँखों को शान्ति पहुँचाती है।

खाना बनाने या भोजन करने के बर्तन राख से या साफ़ मिट्टी से मले जायँ। बर्तनों की गन्दगी भोजन में अरुचि ही उत्पन्न नहीं करती, वरन् अनेक रोग पैदा करती है। साफ़ किये हुए बर्तन साफ़ तौलिये से पोंछ डाले जायँ और रसोईघर में एक ऊँचे स्थान पर किसी लकड़ी के बक्स में या चौकी पर रख दिये जायँ।

एक-दूसरे का जूठा बर्तन कभी भी बिना साफ किये प्रयोग में न लाना चाहिए। गृहिणी को चाहिए कि वह इस बात का विशेष ध्यान रक्खे। जूना जिससे बर्तन रगड़े जाते हैं, बहुधा अधिक समय तक न बदलने के कारण सड़ने लगता है। उसे अवश्य, यदि प्रतिदिन नहीं तो, दूसरे-तीसरे दिन बदल डालना चाहिए। माँजने के पश्चात् तीन-चार बार शुद्ध जल से बर्तन धोए जायँ। बीमारी के दिनों में लाल दवा (परमैंगनेट पोटाशियम) डालकर बर्तन धोना बहुत आवश्यक है। जब कभी भी कोई बर्तन व्यवहार में लाना हो तब उसे फिर शुद्ध जल से धो डालना चाहिए।

घर के अन्य स्थानों की सफ़ाई—घर के दूषित पदार्थों को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं—(१) शरीर के दूषित पदार्थ मल-मूत्र, थूक-बलगम आदि (२) गन्दा जल (३) न खाने योग्य सड़ी-गली चीज़ें जूठन, कूड़ा-कचरा आदि, आदि। इन तीनों पदार्थों को शीघ्र ही और उचित स्थान में हटाने की क्रिया पर ही हमारे स्वास्थ्य का दारमदार है। ये चीज़ें अनेक प्रकार के ज़हरीले और बीमारी फैलानेवाले कीटाणु और कीड़ों को आकर्षित करती हैं और जीवन के हरे-भरे बाग में दीमक या गिरुए का काम करती हैं।

मोरी—मल-मूत्र के हटाने का सबसे अच्छा प्रबन्ध जल की मोरियों

द्वारा होता है। इसके लिए यह ज़रूरी है कि प्रत्येक में जल के नल हों जो घर के मल-मूत्र को बहाकर जमीन के अन्दरवाले सड़क के नलों में पहुँचा दें और वे नल अपना दूषित पदार्थ शहर की सबसे बड़ी मोरी में पहुँचावें और वह मोरी किसी ऐसे स्थान पर उस पदार्थ को गिरावे जो शहर से काफ़ी दूर हो। अगर शहर समुद्र के पास है तो उस शहर की सबसे बड़ी मोरी के नल समुद्र के जल में काफ़ी दूर तक जाने चाहिए ताकि वह शीघ्र बह जाय। दूषि पदार्थ में कभी कभी रासायनिक पदार्थों को मिलाकर उससे होनेवाली हानि को दबा दिया जाता है।

यदि समुद्र पास में न हो तो यह दूषित पदार्थ नदी में बहाया जा सकता है, परन्तु यह बहुत हानिकर होता है। बहुधा उसी नदी का जल साफ़ करके शहर के लोगों के पीने के काम आता है। ऐसी दशा में लोगों के स्वास्थ्य पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। बीमारी फैलने पर तो इससे अकथनीय क्षति होती है।

इन दोनों की अनुपस्थिति में यह दूषित पदार्थ जमीन में पहुँचाया जा सकता है। परन्तु इसके लिए वैज्ञानिक ज्ञान और प्रबन्ध की आवश्यकता होती है। शहर के बाहर एक बड़े भारी मैदान में एक इञ्च नीचे की जमीन में पानी ही के रूप में या रासायनिक तरीक़ों से पानी निकालकर उसका प्रयोग किया जा सकता है। ज़मीन के कीटाणु उसको शुद्ध बना देंगे और वह जमीन कुछ दिनों में उर्वरा भी हो सकती है।

यदि यह सम्भव न हो तो शहर की सबसे बड़ी मोरी का पानी ज़मीन के अन्दर एक पक्के गहरे तालाब में पहुँचाया जा सकता है। प्रकाश और वायु का वहाँ गुजर नहीं और जल जमीन में भी सोख जाने का डर नहीं। इस तालाब में कुछ कीटाणु जिन्हें वायु की आवश्यकता नहीं होती, उत्पन्न होंगे और वे उसके अधिकांश भाग को

स्वच्छ जल में परिवर्तित कर देंगे और फिर वह जल जमीन के एक बड़े हिस्से में सिंचाई के लिए पहुँचाया जा सकता है। तालाब में गाढ़े पदार्थ की तहें बैठती जायँगी और उन्हें सुभीते से साफ कराया जा सकता है। इसके लिए इस बात की आवश्यकता होगी कि शहर के सब पाखाने फ्लश (धोनेवाले) हों। फ्लश पाखाने में एक छोटी-सी टकी होती है जिसमें जल भरा रहता है। टकी का हैंडिल खींचते ही जल नल में होकर ज़ोर से बहता है और इसी जोर के साथ मल मूत्र बहा ले जाता है। यह सड़क के नल में जाकर मिल जाता है, इसलिए आवश्यक है कि सड़क के नलों का धरातल घर के नलों की अपेक्षा नीचा हो, ताकि उनमें होकर मल-मूत्र अच्छी तरह बह सके। पाखाने की मोरी का मल-मूत्र जिस स्थान पर सड़क की मोरी में मिलता है उसके संगम पर (गन्दी हवा मकान में आने से रोकने के लिए) एक लम्बा लोहे का पीपा मकान की छत के ऊपर तक लगा दिया जाता है। इसमें होकर गन्दी हवा निकल जाती है। इसके ऊपरी सिरे पर केवल एक जाली लगी रहती है, ताकि चिड़ियाँ आदि उसमें घोंसले न बना सकें। इसका ध्यान रखना चाहिए कि घर की मोरी का सम्बन्ध प्रधान मोरी से न हो। क्यों?

घर की मोरी की सफाई के सम्बन्ध में दो तीन बातें जानना चाहिए —

१—पाखाने का द्वार बन्द रहे, पर उसकी खिड़कियाँ खुली रहें।

२—पाखाने का बर्तन साफ रहे और प्रति सप्ताह उसे फिनाइल आदि से धोया जाय। फ्लश की टकी से जल न बहता रहे और उसमें ठीक तौर से जल आता-जाता रहे।

३—मोरी में ऐसी चीज़ें न बहाई जायँ, जो उसके मार्ग में अड़कर उसका बहाव बन्द कर दें।

जहाँ फ्लश का प्रबन्ध नहीं होता, वहाँ ज़मीन पर बर्तन रखकर और

पाखाने जाने के बाद सूखी मिट्टी या चूना डाल देने से सफ़ाई रह सकती है। यह पाखाना शहर या गाँव के बाहर खुदी हुई खाइयों में डाला जाता है और उन पर मिट्टी डाल दी जाती है।

वर्तन की सफाई पर ध्यान रखना जरूरी है। जमादार वर्तन का पाखाना अपने बड़े टबों या टोकरियों में भर लेते हैं और उस वर्तन को ज्यों का त्यों रख देते हैं। इससे पाखाना में बदबू फैलती है। फिनाइल का प्रयोग यहाँ बहुत जरूरी है। पाखाने के कमरे बन्द रहें ताकि मक्खियाँ न वहाँ आयें-जायें। परन्तु पाखाने जाने के बाद चूना या मिट्टी डालना सबसे पहला काम है।

जहाँ फ्लश नहीं होता वहाँ पाखाने में मूत्र की नाली अलग होती है। बहुधा यह मूत्र शहर के बाहर खेतों में जाकर गिरता है, परन्तु इससे मच्छर बहुत उत्पन्न होते हैं और बड़ी बदबू फैलती है। इसलिए म्युनिसिपैलिटी को इसको उचित स्थान में गिराने का विशेष प्रबन्ध करना चाहिए।

रसोईघर के वर्तनों में घी-तेल के कारण जो चिकनाहट आ जाती है वह (पानी न डालने के कारण) सूखकर कड़ी पड़ जाती है और वर्तन साफ करने पर ज्यों की त्यों बहा दी जाती है। इससे मोरी का पानी आगे जाने से रुक जाता है। इसलिए इसका ख्याल रहे कि मोरी में इसे बहाते समय गर्म जल जरूर डाला जाय। मोरी के पास जाली जरूर लगी हो, ताकि कोई ऐसा पदार्थ बहकर न जाय जो बीच में जाकर रास्ता बन्द कर दे। रसोईघर की मोरी के नल का मुँह ऐसा हो कि उसे सफ़ाई के लिए खोला भी जा सके।

घर के अन्य प्रकार के दूषित पदार्थ को नष्ट करने का उपाय उसे जला देना है। फलों के छिलके, तरकारियों के टुकड़े, कागज या गन्दे कपड़े आदि जला देने से गन्दगी का अधिकांश नष्ट हो जाता है। धूल और टूटी-फूटी चीज़ों को रोज एक निश्चित स्थान पर एक ढके

हुए बर्तन में एकत्र करते रहना चाहिए और उसे बाहर दूर फेंकवा देना चाहिए, परन्तु इसमे मकान ही की सफ़ाई होती है, पास-पड़ोस गन्दा होता है, यदि वह रोज़ उठवाकर शहर या गाँव से दूर न ले जाया जा सके। कमरे मे कूड़े की टोकरी रहनी चाहिए, ताकि फलों के छिलके, काग़ज़ के टुकड़े आदि एक जगह इकट्ठा रहें। रसोईघर का कूडा अलग टोकरी में जमा होता रहे और उसे जमादार साफ़ करके ले जाय।

इस तरह का कूडा-कचरा बहुधा म्युनिसिपैलिटी द्वारा नीची जमीन के धरातल को ऊँचा करने के काम में लाया जाता है, परन्तु यह अच्छा प्रबन्ध नहीं, क्योंकि अनेक वर्षों तक वहाँ की ज़मीन अस्वास्थ्यकारक रहती है। कहीं-कहीं जमीन उपजाऊ बनाने के काम में भी इसे लाते हैं; परन्तु इससे मक्खियाँ पैदा होकर गन्दगी फैलाती हैं। सबसे अच्छा उपाय इसको जलाकर ख़ाक कर देना है।

हम पहले बता चुके है कि घर की मोरी का सम्बन्ध प्रधान मोरी से न होना चाहिए, क्योंकि मोरी की दूषित वायु घरों की मोरी में आकर बदबू फैलायेगी। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि घर की मोरी के पीपे के सडक की मोरी से मिलते समय अँगरेज़ी के यू अक्षर (U) की रचना होती है। ये पीपे ख़ास तौर से इसी लिए बनाये जाते हैं ताकि दूषित वायु अथवा सन्धियो में होकर पानी बाहर न आ सके।

मकान का कूडा इकट्ठा करने के लिए म्युनिसिपैलिटियों ने कहीं-कहीं कूडे के सन्दूक़ लगवाने का प्रबन्ध किया है। ये सन्दूक़ घर के समीप लगाये जाते है। इनके सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए।

(अ) सन्दूक़ का कूडा प्रातः और शाम को साफ़ हो जाय।

(ब) सन्दूक़ घर की दीवार से ६ फ़ुट के फ़ासिले पर हो।

(स) उस पर वर्षा का जल न पड़े ।
(द) सन्दूक़ चिकनी और क़लईदार हो ।
(य) उसमें सूखा कूड़ा ही डाला जाय ।
(र) कूड़ा नीचे न गिरने पाये ।

बर्तनों की सफ़ाई—हमें गृहस्थी के कामों के लिए रोज बर्तनों की जरूरत रहती है । भोजन बनाने, खाना खाने और जल पीने आदि अनेक कामों के लिए बर्तन चाहिए । बर्तन होते भी सबके घर हैं । ये बर्तन चाँदी, ताँबे, फूल, पीतल, जर्मन सिलवर, एल्यूमीनियम, शीशा, काठ, चीनी, पत्थर, लोहे या मिट्टी के होते हैं ।

अमीर लोगों के घरों में चाँदी, पीतल, फूल, जर्मन सिलवर या ताँबे के बर्तन होते हैं, गरीबों के घरों में पीतल, लोहे, एल्यूमीनियम, काठ या पत्थर के । बर्तन किसी धातु के क्यों न हों, उन्हें साफ़ रखने की ज़रूरत है ।

मैले बर्तनों में खाना बनाने से खाने में विषैले कीटाणु पैदा हो जाते हैं, जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं । इसी प्रकार मैले बर्तनों मे खाने-पीने से अरुचि भी पैदा होती है । इसलिए बर्तनों को सदा साफ़ रखना चाहिए । बर्तन जब मैले हो जायँ या जूठे हो जायँ तब उन्हें माँज डालना चाहिए और साफ़ जल से खूब धोकर रखना चाहिए । धोने के बाद बर्तनों को साफ़ कपड़े से पोंछना भी जरूरी है ।

माँजने और धोकर सुखाने के बाद बर्तनों को किसी तिपाई या चौकी पर रख देना चाहिए । जमीन पर रखने से उनमें मिट्टी लग जाती है और वे फिर मैले हो जाते हैं ।

जिनके यहाँ बर्तन माँजने का काम मजूरिन करती हो, उन्हें बर्तन मँज जाने पर यह देख लेना चाहिए कि वे ठीक-ठीक साफ़ हुए या

जल भरने के बर्तनों को सदा ढके हुए रखना चाहिए, जिससे जल में गर्द और कीड़े-मकोडे न गिर सके।

जहाँ तक हो, सादे बर्तन काम में लाने चाहिए। नक्काशीदार बर्तनों में मैल जमा हो जाता है और वे सहज साफ नहीं होते। नक्काशीदार बर्तनों को यदि साफ करना हो तो उन्हे ब्रुश से साफ करना चाहिए।

बर्तन कैसे साफ करने चाहिए—हमारे देश में लोग साधारणतया राख, मिट्टी या बालू से बर्तन साफ करते हैं। अन्य देशो में लोग गरम पानी, साबुन और दूसरी चीज़ें बर्तन साफ करने के काम में लाते हैं। राख, मिट्टी या रेत से बर्तन साफ करना बुरा नहीं है। इससे खर्च भी कम होता है, परन्तु, यह जानना ज़रूरी है कि किस धातु के बर्तन किस चीज़ से अच्छे साफ होते हैं।

चाँदी के बर्तन चूने और गर्म जल से साफ हो जाते हैं। उन्हे मिट्टी या रेत से साफ करने की जरूरत नहीं है। चाँदी के मुलायम होने से उन्हे मिट्टी या रेत से साफ करने से वे जल्द घिस जाते है। आलू के जल में डाल देने से भी चाँदी के बर्तन साफ हो जाते हैं।

ताँबे, पीतल और फूल के बर्तन राख, मिट्टी या बालू से साफ किये जाते हैं। इन बर्तनो को रगड़कर माँजना चाहिए और फिर साफ जल से धोकर कपड़े से पोंछ डालना चाहिए। पीतल के बर्तन में, यदि कोई दाग़ या धब्बा लग जाय तो उसे खटाई के जल या नीबू के रस से छुड़ा लेना चाहिए। इसी प्रकार ताँबे के बर्तन में मोरचा लग जाय तो "आकजेलिक एसिड" में जल मिलाकर भिगो देना चाहिए। थोडी देर में मोरचा छूट जायगा। "आकजेलिक एसिड" एक प्रकार का जहरीला पदार्थ है, यह अँगरेजी दवा बेचनेवालों के पास मिलता है।

लोहे के बर्तनों को भी बालू या मिट्टी से साफ करना चाहिए। उनमें यदि मोरचा लग जाय, तो उसे चूने से छुडा देना चाहिए।

हमको पाँच इन्द्रियाँ मिली हैं ताकि हम इस ससार की यात्रा निर्भयता से करें, परन्तु हम इनमें से एक इन्द्रिय अर्थात् नासिका को ठीक-ठीक नहीं वर्तते। समझ में नहीं आता कि जैसे आँखों और कानों के कहने पर हम चलते है, वैसे नाक के कहने पर क्यों नहीं चलते। जब मार्ग में कोई मोटर, गाड़ी, बग्घी या गाय-बैल हमारे निकट आ जाता है तब आँखें और कान हमें भय की सूचना दे देते हैं और हम तत्काल भागकर एक ओर हो जाते है।

हमे नासिका से काम लेना चाहिए—जब कभी नासिका हमें बताए कि कोई अतीव दुर्गन्धमय वस्तु कहीं आस-पास है, तो वहाँ से भाग जाना चाहिए।

सब गली और सडी वस्तुएँ स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। यदि हमारे नेत्र इतना काम देते, जितनी हमारी नासिका, तो सारे सडते हुए वृक्षों और जन्तुओं के शरीरों के भीतर से दुर्गन्ध के छोटे-छोटे कीटाणु निकलते और हमको दिखाई देते। स्मरण रक्खो कि सूखे कूड़े-कर्कट की अपेक्षा गीले मल में से यह विषैले परमाणु अधिक निकलते हैं। ये छोटे-छोटे परमाणु विषैले होते हैं और प्रत्येक श्वास के साथ नासिका मे होकर फेफड़ों में जा पहुँचते हैं और वहाँ से हमारे लहू में जा मिलते है।

याद रखो यह परमाणु सबसे पहले दुर्गन्ध के रूप में नासिका पर प्रभाव डालते हैं, फिर शरीर में विष फैला देते हैं। इसमें कौन शंका कर सकता है कि हानिकारक दुर्गन्ध से भाग जाना या इनको परे रखना बडी बुद्धिमत्ता की बात है और यह तभी हो सकता है, जब हम स्वच्छ घर और स्वच्छ नगर में रहें।

इन विषों से हम क्योंकर बच सकते हैं?—हम पहले के पाठ में पढ़ आये हैं कि गन्दी वायु और मल से बहुत प्राणनाशक रोग, जैसे तपेदिक, हैज़ा, मरोड उपजते है।

हम चुप बैठे रहें और इन रोगों को सदैव मनुष्यों का विनाश करने दें, तो इससे क्या लाभ ? उस पुरुषार्थहीन किसान पर, जो निकम्मा बैठा रहता है और कह देता है कि यह घासफूस जो मेरे खेत में उग आया है, भूत-प्रेतों ने उगा दिया है, या ईश्वर की इच्छा से उग आया है, उसके मित्र-सम्बन्धी हँसते हैं। बात यह है कि यदि वह अच्छी फ़सल काटना चाहता है तो आवश्यक है ज्यों ही घास फूस उगने लगे, वह तुरन्त उसे उखाड़कर फेंक दे। यदि अपने खेत को घास-फूस से बचा सकता है, तो उत्तम खेती काटेगा। हमें भी चाहिए कि हम भी पुरुषार्थ से मल से उपजनेवाली व्याधियों को पास न फटकने दें।

भारतवर्ष के साधारण नगरों और गाँवों का स्वास्थ्य सदैव बिगड़ा रहता है। घर बहुत ही पिच-पिच होते हैं। गलियाँ छोटी और अँधेरी होती हैं, कमरों में शुद्ध वायु या धूप प्रवेश नहीं कर सकती। गाय, बैल, घोड़े और बकरियाँ घरों के आँगन में ही बाँधी जाती हैं, जिससे सारी वायु गन्दी होती रहती है। गलियों में लोग मल-मूत्र का त्याग कर देते हैं और घरों का सारा कूड़ा-कर्कट वहीं लाकर इकट्ठा करते रहते हैं। घरों में सीढ़ियों के तल के भीतर एक गन्दा पाख़ाना होता है और गन्दी वायु वहीं से निकल-निकलकर लगातार स्त्रियों के निवास स्थान में जाती रहती है। गन्दी चटाइयाँ और बोरियाँ, सन्दूक, जिन्हें कभी नहीं सरकाया जाता और कदाचित् कुछ अलमारियाँ भी कमरों में अटी होती हैं। इस कारण कमरे नित्य-प्रति धोए नहीं जा सकते। बच्चों को कुछ शिक्षा नहीं दी जाती और वे प्रत्येक स्थान पर, जहाँ उनका जी चाहे, मल-मूत्र का त्याग करके या थूक-थूककर भूमि को मलिन कर देते हैं। यह सारी बातें बहुत बुरी हैं। किसी ने सच कहा है कि नगर या गाँव को साफ़ रखने का सबसे सुगम उपाय यह है कि प्रत्येक गृहस्थी अपना अपना घर और उसके आस पास का स्थान नित्य-प्रति साफ़ कर लिया करे।

इस बारे में धनाढ्यों को निर्बलों की सहायता करनी चाहिए, रोगों का भय सबके लिए समान है।

किस प्रकार के घरों में स्वास्थ्य अच्छा रह सकता है ?—

(१) घर ऊँचे स्थान पर बनाना चाहिए, न कि नीची और सीली जगह पर और जल के निकास के लिए उसके चारों ओर पक्की नालियाँ होनी चाहिए।

(२) सब कच्ची मोरियाँ और जल के गढ़े-गढ़ेले और नादें मिट्टी और पत्थरों से भर देनी चाहिए और कूड़े-कर्कट के ढेर उठवा देने चाहिए। मैल-कुचैल तुमसे जितनी दूर होगी, उतनी ही थोड़ी हानि पहुँचायेगी।

(३) रहने के घर के भीतर या उनके पास पशुओं के लिए अलग स्थान होना चाहिए। प्रत्येक गाँव में पशुओं के लिए अलग स्थान होना चाहिए कि जहाँ रात को उन्हें बन्द कर दिया जाय और ताला लगा दिया जाय, ताकि चोरी न होने पाये।

(४) वर्ष में एक बार प्रत्येक कमरे में सफेदी करानी चाहिए और प्रति सप्ताह, बारी-बारी से एक एक कमरे की वस्तुएँ निकालकर उसको भली भाँति साफ करना चाहिए और फिनाइल से धो डालना चाहिए। कच्चे घरों को प्रायः लीपते रहना चाहिए।

(५) घर का कूड़ा-कर्कट और रसोई की बचन-खुचन भूमि पर कभी नहीं फेंकनी चाहिए। नित्य-प्रति पहिले एक ढकनेवाले टीन में इकट्ठी कर लेनी चाहिए और उठवा देनी चाहिए।

(६) घरों के आस-पास भूमि पर, दीवारों पर या बगीचे में थूकना नहीं चाहिए।

(७) टट्टी की ओर ध्यान देना अति आवश्यक है। पाखाना घर भर में सबसे अधिक साफ रखना चाहिए। यह घर के भीतर नहीं होना चाहिए बल्कि दूर किसी खुले बरामदे या बगीचे में और दिन में तीन

अध्याय १०

मादक द्रव्य

समस्त भूमण्डल पर, कोई स्थान ऐसा न होगा, जहाँ किसी न किसी प्रकार के नशे का प्रयोग न होता हो। ऐसे लोग विरले हैं, जो किसी प्रकार का नशा न वर्तते हों परन्तु सोचना यह है कि क्या मादक द्रव्यों के प्रयोग से कोई लाभ है। परीक्षाओं से सिद्ध होगा कि नशीली वस्तुओं में से कोई भी वस्तु ऐसी नहीं कही जा सकती जो लाभदायक हो। सत्य तो यह है, कि प्रत्येक नशे से हानियाँ ही हानियाँ हैं। यदि कठिनता से कोई गुण निकले भी तो दुर्गुण इतने प्रचण्ड और अधिक मिलेंगे कि उनकी तुलना में इन गुण का कोई मूल्य नहीं रहता। ऐसे तो नशे की सैकड़ों वस्तुएँ हैं और प्रत्येक वस्तुओं के हजारों प्रकार हैं; परन्तु यहाँ संक्षेप से हम मुख्य-मुख्य प्रकारों के मादक द्रव्यों का वर्णन करेंगे जिनका प्रयोग संसार में अधिक होता है।

१—तम्बाकू—नशे की वस्तुओं में सबसे अधिक तम्बाकू का प्रयोग होता है। कोई देश ऐसा न होगा जहाँ इसका प्रचार नहीं। तम्बाकू को कई प्रकार से काम में लाते हैं। खाने में, पीने में, सूँघने में। खाने की तम्बाकू के अनेक प्रकार हैं—सादी पत्ती की तम्बाकू बनी हुई पत्ती, दानेदार पत्ती, तम्बाकू की गोली, तम्बाकू का सत्व आदि। पीने की तम्बाकू भी इसी भाँति अनेक प्रकार की होती है—सूखी तम्बाकू या खमीरा जो हुक्के में पी जाती है, बीड़ी, सिगरेट, सिगार। सूँघने की तम्बाकू भी कई प्रकार की होती है। ध्यान से देखो, तम्बाकू में

जहर मिलेगा, परन्तु इस बात पर कोई ध्यान नहीं देता। स्त्रियाँ तथा बच्चे तक उसका प्रयोग करते हैं। तम्बाकू की पत्ती के एक अंश को "नेकोटिन" कहते हैं। यही वस्तु तम्बाकू को स्वास्थ्यनाशक बना देती है। नेकोटिन एक प्रकार का विष है। एक बूँद निकोटिन यदि एक खरगोश के शरीर में प्रवेश करा दी जाये, तो वह तुरन्त मर जायगा। कुत्ते और बिल्ली की जीभ पर नेकोटिन की दो बूँदें डाल देना, उनके वध के लिए काफ़ी है। रासायनिक जाँच से ज्ञात हुआ है कि ३ सेर तम्बाकू में एक छटाँक के लगभग नेकोटिन होती है। तम्बाकू के दुर्गुण का अनुमान तुम इससे भी कर सकते हो कि जो व्यक्ति तम्बाकू का प्रयोग कभी न करता हो, वह यदि तम्बाकू खा ले या हुक्के का एक भी सूटा लगाये, तो उसको चक्कर आ जायगा। उसका जी मतलाने लगेगा। हृदय बड़े वेग से धड़कने लगेगा। यह सब बातें सिद्ध करती हैं कि मनुष्य के अंग तम्बाकू के विषैले प्रभाव के सहने में असमर्थ हैं। प्रकृति ने प्राणि मात्र में ऐसी शक्ति दी है, जो स्वास्थ्यनाशक प्रभावों का विरोध कर उन्हें शरीर से निकाल दे। इसी का नाम आत्म-निग्रह या प्राकृतिक चिकित्सा है। नाक के द्वारा यदि कोई कण वायु के साथ भीतर चला जाता है, तो चट छींक आती है और वह निकल जाता है। यदि कोई वस्तु हलक़ के भीतर गले में पहुँच जाय, तो खाँसी आ जाती है और इस प्रकार उससे मुक्ति मिल जाती है। इसी भाँति मूत्र, मल, पसीना, साँस इत्यादि अन्यान्य द्वार हैं जिनसे शरीर के विष और संयुक्त विकार निकलते रहते हैं। इसी लिए जब तम्बाकू न पीनेवाला मनुष्य तम्बाकू का प्रयोग करता है, तो उसे मतली आकर कै हो जाती है, दस्त आ जाते हैं। यदि तम्बाकू में नेकोटिन का विष न होता, किन्तु वह अंश होते जो फलों, शाकों या तरकारियों में होते हैं, तो यह बात न होती।

नेकोटिन के विष का अनुमान इससे हो सकता है कि चीनी लोग हुक्के का जल पीकर आत्मघात कर लेते हैं। हुक्के की कीट

घोकर पीने से भी मनुष्य मर जाता है, यह सब नेकोटिन का प्रभाव है।

परन्तु वह लोग जिनको तम्बाकू पीने की आदत पड जाती है, इस विष का अनुभव नहीं करते। जिस प्रकार लोहे का भारी बडा या साकल पहने रहने से शरीर का वह अश सुन्न हो जाता है और उसे लोहा पहनने में किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती, इसी प्रकार तम्बाकू के विष को समझो।

बहुधा लोग कहते है कि सिगार की अपेक्षा सिगरेट में नेकोटिन कम होता है, अथवा इन दोनों की अपेक्षा हुक्का पीने से कम हानि होती है। किन्तु तम्बाकू तो हर हालत में हानि ही करता है क्योंकि नेकोटिन कम ज्यादा सब दशाओं में पाया जाता है। तम्बाकू पीने-वालों के गले और नथनों में खरोंच और जलन हो जाती है। कड़वे तम्बाकू के बिना तृप्ति नहीं होती। उसकी सूँघने की ताकत लुप्त हो जाती है। जीभ सुन्न हो जाती है। मुख का स्वाद बिगड जाता है और जब तक चरपरी वस्तु न हो, खाने का स्वाद नहीं मिलता। मिरचे और मसालेदार तीखी वस्तुएँ खाने और तम्बाकू पीने से आमाशय में दाह उत्पन्न होता है। इससे प्यास प्रबल हो जाती है। इसलिए तम्बाकू पीनेवाले मनुष्य, मदिरा-सेवन प्रारम्भ करते है। साधारण पानी से इनकी तृषा नहीं मिटती। तम्बाकू पीनेवाले यदि खट्टी वस्तु खा लें तो उनके दाँत बेकाम हो जाते हैं। यहाँ तक कि रोटी खाने में क्लेश होता है। तम्बाकू खाने और पीनेवालों को बहुधा हृदरोग होते है। हृदय मे ख़ुश्की आ जाती है। धड़कन बडे वेग मे होने लगती है, हृदय की चाल में गडबडी पड जाती है। धुगधुगी चलते-चलते अकस्मात् तेज़ हो जाती है। साँस बहुत तीव्र हो जाती है। अधिकाश दशाओं में हृदय शून्य होकर स्थगित हो जाता है और तुरन्त मृत्यु हो जाती है।

तम्बाकू का घातक प्रभाव जवानों की अपेक्षा बच्चों पर अधिक पडता

है। इस अवस्था में सारे अंग मृदु होते हैं। तम्बाकू पीनेवाले बच्चों की वृद्धि रुक जाती है। मुखश्री लोप हो जाती है। रंग फीका पड़ जाता है। गाल पिचुक जाते हैं और शारीरिक उन्नति रुक जाती है। तम्बाकू पीने-वालों की आयु क्षीण हो जाती है। उनकी देह पर आपरेशन कुछ फल नहीं देता, प्रत्युत विनाश का कारण हो जाता है। तम्बाकू से दृष्टि में अन्तर पड़ जाता है। आँख की पुतली सिकुड़ जाती है। ज्यादा उम्र में ऐसे लोग अन्धे हो जाते हैं। उनकी स्मरणशक्ति निर्बल हो जाती है। अतएव, कम उम्र के बच्चों को, विशेष करके बचाना चाहिए।

२—भंग और गाँजा—भंग एक प्रकार का वृक्ष होता है, उसी पत्ती को जन साधारण भंग कहते हैं। भंग का प्रयोग कई रीतियों से किया जाता है। भंग की पत्तियों को सुखाकर कूट डालते हैं और आवश्यकतानुसार उस चूर्ण को पानी में पीसकर पीते हैं। इसे ही भंग या ठंढाई कहते हैं। भंग के डंठलों और पत्तियों पर एक प्रकार की गोंद होती है। गोंद को खुरचकर तम्बाकू की जगह चिलम में पीते हैं। इस गोंद को चरस या सुर्खा कहते हैं। भंग के फूलों या कलियों के गुच्छे, भी जिन पर गोंद चढ़ा होता है, चिलम में तम्बाकू की भाँति पिये जाते हैं।

भंग के फूलों को गाँजा या कली कहते हैं। भंग को हिन्दी में शिवबूटी और विजया भी कहते हैं, क्योंकि पौराणिक मतानुसार कहावत है कि शिवजी को यह वस्तु बड़ी प्रिय थी।

भङ्ग की पत्तियाँ छोटी, पतली, लम्बी और दानेदार होती हैं। पत्तियों पर बारीक रोएँ होते हैं। पत्ती का रंग कालापन लिये गहरा हरा होता है। भङ्ग के बीजों पर चमकदार आवरण चढ़ा होता है। कच्चे बीज पीलापन लिये मटमैले रंग के होते हैं। परिपक्व हो जाने पर ये भूरे रंग के हो जाते हैं। इन पर श्वेत आवरण चढ़ जाता है।

भङ्ग का हरा अंग, चाहे वह पत्ती हो, चाहे फूल अथवा गोंद, नशे के लिए काम में आता है। इसका प्रभाव ठीक वैसा ही होता है जैसा अन्य मादक वस्तुओं का। भङ्ग का मुख्य प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ता है। इससे मस्तिष्क बेकाम हो जाता है। यदि थोड़ी मात्रा में भङ्ग का प्रयोग हुआ, तो हलका नशा होता है और मस्तिष्क में विशेष प्रकार की भ्रान्ति होती है। वस्तुएँ हरी-हरी दीखती हैं। जान पड़ता है कि मनुष्य आकाश में उड़ रहा हो। कभी ऊपर जाता है, कभी नीचे आता है। मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ने से अद्भुत-अद्भुत विचार उठते है। नाना प्रकार के विचित्र रूप या आकार दृष्टि पड़ते हैं। पाशविक वासनाएँ प्रबल हो जाती है। मनुष्य तरंग में पड़कर कभी हँसने लगता है, कभी गीत गाता है, कभी अट्टहास करता है। सारांश यह है कि नशे की दशा में उसे ध्यान नहीं रहता कि मैं क्या हूँ, कहाँ हूँ और क्या कर रहा हूँ। यदि मात्रा अधिक हो गई, तो नशा गहरा हो जाता है और मनुष्य अपने आपे में नहीं रहता। प्रचण्ड मद की दशा में उन्माद हो जाने से विविध बातें बकने लगता है।

भङ्ग में यह दुर्गुण है कि वह चेतन्य को निर्बल करती है और स्नायु-पुट्ठों को सुन्न कर देती है। नशे की दशा में मनुष्य कितना ही खाता चला जाय, क्षुधा शांत नहीं होती। देह में झुनझुनी बोध होती है। हृदय की गति कभी तीव्र हो जाती है, कभी मन्द यही दशा साँस और रक्त के संचार की होती है। नशे की दशा में ताप बलवान हो जाता है और नींद आने पर ज्वर उतर जाता है। भङ्ग तथा गाँजे के अधिक सेवन से नाना प्रकार के रोग यथा अपचय, दुर्बलता, खाँसी, उदर-वृद्धि, सन्निपात का धावा उठ खड़े होते है मति-भङ्ग हो जाती है। मस्तिष्क विकृत हो जाता है और मनुष्य सदा के लिए विक्षिप्त हो जाता है। कभी-कभी यह उन्माद कुछ कालोपरान्त, स्वयं उतर भी जाता है। भङ्ग के नशे में पुरानी शत्रुता

या वैर-भाव की स्मृति ताजी हो जाती है और मनुष्य घोर हिंसा पर उतारू हो जाता है।

भङ्ग का नशा उतारने के लिए तरकारियों का नमक, नींबू का सत इत्यादि का देना और शीतल जल को सिर और शरीर पर डालना लाभदायक है।

साधुओं, चौबों, पण्डों और वैरागियों में इसका विशेष प्रचार है, परन्तु स्मरण रखो कि बुरी वस्तु सदा सर्वदा बुरी ही होती है, चाहे उसको कोई महापुरुष ही सेवन क्यों न करता हो।

३—मदिरा—नशों में मदिरा का बहुत प्रचार है। मदिरा अनेक प्रकार की होती है और अनेक रीति तथा अनेक वस्तुओं से बनाई जाती है। नशा किसी में न्यून किसी में अधिक, होता सब में है। मदिरा के उस तत्त्व को जो नशा पैदा करता है, अलकोहल कहते हैं। विष शरीर के सब अंगों को दूषित कर डालता है। मदिरा में अलकोहल का वही स्थान है जो तम्बाकू में निकोटिन का।

अलकोहल के विष का अनुमान इस बात से हो सकता है कि यदि मछली या कछुए को जल में मिलाकर अलकोहल का केवल $\frac{1}{700}$ अंश दे दिया जाय, तो उसकी मृत्यु हो जायगी।

तुम जानते हो कि यदि किसी रसीले फल को तोड़कर दो एक दिन के लिए रख दिया जाय तो वह सड़ने लगता है। इसी प्रकार जीव जन्तु की लाश अधिक दिन-पश्चात् सड़ने लग जाती है, किन्तु यदि इन वस्तुओं को मदिरा में रख दिया जाय तो यह बरसों तक नहीं बिगड़तीं। इसका कारण यह है कि अलकोहल के कारण वह कीटाणु जो इन वस्तुओं को सड़ानेवाले हैं स्वयं मर जाते हैं और यह वस्तुएँ विकृत नहीं होने पातीं।

इसी प्रकार यदि अण्डे की सफेदी को मदिरा में डाल दिया जाय तो सफेदी जम जायगी। जिन लोगों ने डाक्टरी पढ़ी है वह जानते हैं कि

र का आमाशय, हृदय और स्नायु-जाल लगभग उन्हीं वस्तुओं बनता है, जिनसे अण्डे की सफेदी बनती है। अतः स्पष्ट है कि य के शरीर पर भी मदिरा का वही प्रभाव होता है जो अण्डे की दी पर।

हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि जो वस्तु मनुष्य के लिए हानिकर उसको स्वभाव स्वीकार नहीं करता, इसलिए तम्बाकू-सेवन से पहले-ल मतली होती है और वमन हो जाता है, इसी भाँति प्रथम थम सुरापान से कै हो जाती है।

मदिरा-सेवन से अनेक हानियाँ हैं मदिरा से शारीरिक शक्ति घट जाती है और बुद्धि रुक जाती है। बाल्यकाल में मदिरा-सेवन और भी भयंकर है। मदिरा पीने के उपरान्त मनुष्य का मस्तिष्क ठीक नहीं रहता। हाथ पैर बेदम हो जाते हैं, शरीर के पुट्ठे तन जाते हैं, जिह्वा स्थूल हो जाती है और चलने में पाँव काँपते हैं। मस्तिष्क दूषित होने से मनुष्य की मति भ्रष्ट हो जाती है, अच्छे बुरे की पहचान नहीं रहती। बड़े सभ्य से सभ्य परम उदार सुशील प्रकृति का मनुष्य भी सुरा पीने के पश्चात् प्रलाप और दुर्वाद बकने लगता है, वह पवित्रता और अपवित्रता में कोई भेद नहीं कर सकता। जब नशा अधिक होता है, तब मस्तिष्क चेतना-शून्य होने लगता है और शराबी पर तन्द्रा आ जाती है।

लोगों का विचार है कि यदि मदिरा थोड़ी मात्रा में पी जाये तो हानि नहीं करती। वह लोग शरीर के भीतर की दशा देखें तो इन्हें पता चलेगा कि मदिरा की थोड़ी मात्रा भी यकृत वृक्क फेफड़े, आमाशय यहाँ तक कि शरीर की नस-नस दूषित कर देती है। मदिरा-पान से वह कीटाणु जो रक्त में उत्पन्न होकर रोगों को दूर करने में सहायता देते हैं, निष्क्रिय हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि सुरा सेवन करनेवाले को

जो रोग होते हैं, वह कठिनाई से अच्छे होते हैं। सुरापानादि के दोष पुत्र-पौत्रादि तक चलते हैं।

अनुभव से सिद्ध हुआ है कि शराबी लोगों की आयु क्षीण हो जाती है। वह नित्य नूतन रोगों के आखेट बनते रहते हैं। रोग एक बार आकर फिर जाने का नाम नहीं लेते, किन्तु दिन-प्रतिदिन बढ़ते ही जाते हैं, इसकी परीक्षा कई प्रकार से हो सकती है, गेहूँ या किसी अन्य अन्न को तीन अलग-अलग कियारियों में बो दो, एक कियारी को मदिरा से सींचो, दूसरी को जल से और तीसरी को मदिरा व जल दोनों मिला-कर। मदिरा से सींची हुई खेती शीघ्र उग आयेगी, परन्तु बहुत शीघ्र ही सड़ भी जायेगी, मदिरा और जल से सींची उसके पश्चात् नष्ट होगी और केवल जल से सिंचित खेती सबसे अधिक काल तक रहेगी। फल तो सिवाय जलवाली खेती के और किसी कियारी में न लगेंगे।

मदिरा की कुटेव छोड़ने के लिए सबसे पहले मनुष्य को दृढ़ प्रतिज्ञा करनी चाहिए। उसके पश्चात् यदि तम्बाकू सेवन करता हो तो उसे भी त्याग दे, ताजे फल खाये और शीतल जल पिये, उष्ण जल से स्नान करे और नहाकर ठण्डा जल देह पर डाल ले। यह प्रक्रिया करते रहने से शराब की बान छूट जाती है।

४—अफ़ीम का प्रयोग—नशों में अफ़ीम भी अच्छा स्थान रखती है। अफ़ीम वस्तुत. पोस्त के फल का दूध है। दूध जमाकर अफ़ीम बना लेते हैं। आफ़ूक या अफ़ीम भी नाना प्रकार की रीतियों से काम आती है। गोली बनाकर खाई जाती है। जल में घोलकर पी जाती है। हुक्के की भाँति पी जाती है। पिछले प्रकार को चण्डू कहते हैं। अफ़ीम कराल विष है।

अफ़ीम पोस्त की बोंडी से प्राप्त की जाती है। पोस्त का पेड़ लगभग

१½ या २ फीट के होता है। पोस्त का पुष्प गुलाब के फूल के बराबर होता है। इसकी पंखुडियाँ बड़ी-बड़ी और कोमल होती हैं। फूल गुलाबी, लाल या श्वेत रंग के होते हैं, जिनके बीच मे काला धब्बा होता है। जब पंखुडियाँ झड़ जाती हैं तब बीच की बोंडी रह जाती है। यह बोंडी बढ़कर अण्डे के सदृश हो जाती है। बोंडी के भीतर बड़े सुन्दर कोष्ट बने रहते हैं। जिनमें पोस्त के सूक्ष्म गोल-गोल, नन्हे नन्हे बीज भरे होते है। जब बोंड़ी बडी हो जाती है तब एक विशेष प्रकार के कॉटे से उस पर हल्की-हल्की रेखाएँ खींच दी जाती हैं। उसे "छेव" (या पाछना) कहते हैं। छेव सर्वदा तीसरे पहर दिया जाता है। पोस्त का दूध इन चिह्नों मे से निकलकर रात में बोंडी पर जम जाता है। पश्चात् प्रभात-बेला में उस दूध को चाकू से खुरचकर रख लेते हैं और यही अफीम बन जाती है। दूध-जम जाने के उपरान्त श्याम रंग का हो जाता है और उसका स्वाद नीम की तरह कटुवा होता है। एक बोंडी तीन या चार बार पाछी जाती है। अफीम पूर्वी देशों की उपज है। चीन, ईरान और भारतवर्ष आदि में उसकी कृषि विशेष रूप से होती है। चीनी लोग अफीम का सेवन अधिक करते हैं। अफीम में भी विष रहता है। इसमे दो विष तत्त्व होते हैं, एक तो मारफेन दूसरा निकोटिन। अफीम के सेवन का पहला प्रभाव यह होता है कि मुँह, जिह्वा और कण्ठ सूख जाते हैं। अफीम तरी को सोखती है और खुश्की पैदा करती है। दूसरा प्रभाव इसका आमाशय में पहुँचकर प्रारम्भ होता है। आमाशय तथा आँतों की प्राकृतिक आर्द्रता जो आहार के पचने और आमाशय को अपनी पूरी प्रक्रिया करने के लिए आवश्यक है, सुखाने लगती है, जिसका परिणाम यह होता है कि आमाशय और उसकी अन्तरंग संस्था विकृत हो जाती है। आँतों की आन्तरिक त्वचा सख्त हो जाती है, भूख मिटने लगती है, पाचन-शक्ति में गड़बड़ी हो जाती है, दस्त आने लगते हैं, शरीर भीतर ही भीतर घुलने लगता और सूखकर काँटा हो जाता है।

आँख का कोया धँस जाता है और देह में रक्त-बिन्दु नहीं रहते। जान पड़ता है अस्थिपिंजर पर खाल मढ़ दी गई है।

अफ़ीम का प्रभाव मनुष्य की स्नायुओं और पुट्ठों पर विशेष रूप से होता है। अफ़ीम खाने के उपरान्त, पहले तो शरीर की नाड़ियों पर मादक का प्रभाव छा जाता है। फिर मस्तिष्क उत्तेजित हो जाता है, अन्तःकरण में उग्रता और विकीर्णता उत्पन्न होती है और एक प्रकार की मोहनी छा जाती है। इस अवस्था के थोड़े समय पश्चात् झपकी आ जाती है, जिसे "पीनक" कहते हैं। निद्रा का मोह उतर जाने पर सिर में पीड़ा होती है और चक्कर आने लगता है।

अफ़ीम अधिक खा जाने से, मस्तिष्क व्याकुल हो जाता है, बुद्धि क्षुद्र हो जाती है, न आँख काम करती है, न कान न चित्त। इस दशा में अफ़ीम का प्रभाव मस्तिष्क पर वैसा ही होता है जैसा अलकोहल या क्लोरोफ़ाम का। अफ़ीम खानेवालों की देह सुन्न हो जाती है। उन्हें पीड़ाओं का बोध नहीं होता।

पीनक की दशा में अफ़ीमी लोग गिर पड़ते हैं चोटें लगती हैं, खून निकल आता है, जल जाते हैं; परन्तु उन्हें कष्ट ज्ञात नहीं होता। यदि अफ़ीम बहुत अधिक खा ली जाये तो विक्षिप्तता आ जाती है और मूर्छा आ जाती है।

अफ़ीमी लोग गन्दे होते हैं। वे जल से डरते हैं और कभी नहीं नहाते। इनकी यह धारणा होती है कि स्नान करने से अफ़ीम का नशा उतर जाता है। उनके सम्बन्ध में एक कहावत प्रसिद्ध है—"या नहलाये दाई या नहलावें चार भाई"—तात्पर्य यह है कि या तो जन्म समय उनको दाई स्नान कराती है और या मर जाने पर चार जने स्नान कराते हैं।

हम बता चुके हैं कि मारफ़ीन (मारफिया) और नेकोटिन कठिन विष

हैं। अतः अफीम मारने के काम मे आता है। इस काम के लिए अफीम खिलाते पिलाते हैं और तीन बार देह पर पोत देते हैं। उसका विष मारने के लिए, इसे देह मे पोछ देना चाहिए यदि अफीम खिलाई-पिलाई गई हो, तो एरण्ड की पत्ती पीसकर रोगी को पिला देनी चाहिए और बारम्बार कै करानी चाहिए, वैद्यक-क्रिया द्वारा आँतो को धोना चाहिए। रोगी को जागते रहना चाहिए। ठडे जल के छींटे मुँह पर बार बार मारे जावें और तोलिया जल से भिगोकर निरन्तर वायु की जाय। रोगी को टहलाना चाहिए। यदि शरीर ठण्डा हो जाये और मूर्छा की दशा हो तो टहलाना अयुक्त है। यदि रोगी मे पीने की सामर्थ्य हो तो गर्म क़हवा पिलाया जाय और नास दिया जाये। १० से लेकर १५ ग्रेन तक पोटासियम परमैंगनेट १½ छटांक से लेकर पाव भर तक जल में मिलाकर आध-आध घण्टे पश्चात् चार बार पिला देने पर भी लाभ होता है।

५—चाय और कहवा—चाय भारतवर्ष, बर्मा, लका, चीन और जापान मे उगनेवाले एक पौधे की सूखी पत्तियों की बनी होती है। इसमें भोजन पौष्टिक पदार्थों का अश बिल्कुल नहीं होता। बल्कि थाईन नाम का एक विष रहता है, जो थोडा-सा भी शुद्ध रूप मे खा लिया जाय तो मृत्यु तक कर सकता है। चाय की एक औंस पत्तियो में वह विष १५ से ३० ग्रेन तक पाया जाता है, अर्थात् इतना अधिक होता है कि यदि इसे अलग करके एक बार में कोई चाय न पीनेवाला मनुष्य खा ले तो उसकी मृत्यु हो जाय।

चाय पीने की आदत डालना बहुत बुरा है। परन्तु बहुत से लोगो का विचार है कि आवश्यकता होने पर थोडी-सी चाय भी लेना लाभ पहुँचता है। चाय से सुस्ती और थकावट जाती रहती है, हृदय और नाडी तीव्र चलने लगती है। दिमाग में रक्त की गति अधिक हो जाने से मनुष्य की तबीअत सँभल-सी जाती है। नींद आती हो तो जाती

रहती है, पसीना अधिक आता है और प्राय. सिर का दर्द कम हो जाता है, परन्तु चाय में एक पदार्थ "टैनिन" ऐसा होता है कि वह पाचन यन्त्र को बिगाड़ देता है। इसलिए, इससे भूख बन्द हो जाती है, कब्ज या बदहज्मी रहने लगती है और अन्त में दिल कमज़ोर हो जाता है।

चाय अधिक पीना या बुरी बनी हुई पीना, बहुत हानिकर है। जल में बहुत देर तक पकाने से या पड़े रहने से चाय का "टैनिन" पदार्थ अधिक मात्रा में निकल आता है और उससे शरीर को बड़ी हानि पहुँचती है। बाजार की पकी चाय पीना अनुचित है। चाय बनाने की ठीक रीति यह है कि पहले थोड़ी-सी चाय चीनी की चायदानी में डाल दो और उसमें खौलता हुआ गर्म जल डालकर ऊपर से ढकना ढक दो। तीन या चार मिनट के बाद छानकर, रुचि-अनुसार दूध और शक्कर मिलाकर पियो। अधिक गर्म चाय पीने से मेदे के अन्दर की झिल्ली जल सी जाती है। चाय के साथ सदा कुछ न कुछ खाना चाहिए। खालीपेट पर चाय का बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

क़हवे में "कैफ़ीन" नाम का एक विष होता है, "टैनिन" भी होता है। इसका प्रभाव चाय जैसा ही है, इसलिए यह भी त्याज्य ही है।

प्रश्न

(१) शराब में विष का होना किस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है ?

(२) शराब का मनुष्य के मस्तिष्क, हृदय और पाचन यन्त्र पर क्या असर पड़ता है ?

(३) शराब पीने से मनुष्य को क्या हानियाँ होती हैं ?

(४) अफ़ीम का शरीर पर क्या असर होता है ?

(५) बच्चों को सुलाने के लिए अफ़ीम दे देना क्यों अनुचित है ?

(६) तम्बाकू में कौन सा विष होता है ? उसकी कितनी मात्रा से मनुष्य की मृत्यु हो सकती है ?

(७) तम्बाकू के प्रयोग से क्या हानियाँ होती हैं ?

(८) चाय और क़हवे में कौन से विष रहते हैं ? इनसे शरीर को क्या हानि होती है ?

(९) चाय ठीक तौर पर बनाने की क्या रीति है ?

अध्याय ११

साधारण रोग और उनसे बचने के उपाय

प्रकोपक व्याधियाँ—शरीर रोग का घर है। जरा-सी असावधानी करने पर तरह तरह के रोग इस शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं। इन रोगों में छूत के रोग अत्यन्त भयकर होते हैं। ऐसी व्याधियों को प्रकोपक रोग या उड़ती बीमारियाँ भी कहते हैं। जो व्याधियाँ महामारी के नाम से विख्यात हैं वह भी छूत के रोग हैं।

कीटाणु—छूत वस्तुत उन सूक्ष्मातिसूक्ष्म कीटों के लिए प्रयुक्त होती है, जो नाना प्रकार के रोगों के हेतु हैं। यह कीटाणु इतने सूक्ष्म होते हैं कि बिना शक्तिशाली अणुवीक्षण-यन्त्र के नहीं दीखते। प्रत्येक रोग के विशेष कीटाणु पृथक् होते हैं।

कीटाणुओं की प्रक्रियाएँ और प्रकार भिन्न-भिन्न हैं। कोई काला होता है, कोई रंग, कोई चित्तीदार। किसी में कठिन दुर्गन्धि आती है, किसी के स्पर्श-मात्र से शरीर में छाले फफोले पड़ते हैं। परन्तु यह सब बड़े कीट हैं और दिखाई पड़ते हैं। उनकी छोटी-छोटी जातियाँ भी हैं। बहुत-सी अणुरूप हैं जो दीख नहीं पड़तीं। सम्पूर्ण प्राणिवर्ग, वनस्पति वर्ग व खनिज वर्ग में कोई भी ऐसा नहीं जो इनके आक्रमण से बचा हो। पौधों में वर्षा-ऋतु के साथ फफूँदी लग जाती है। पत्थर पर काई जम जाती है, आम दागी हो जाता है, गुँधा हुआ आटा कुछ देर रखने से खमीर हो जाता है, दूध जमकर दही हो जाता है इत्यादि। यह सब दशाएँ कीटाणुओं के प्रवेश करने से उत्पन्न होती हैं। आधुनिक

अन्वेषकों ने ऐसे कीटाणुओं की खोज की है, जो अणुवीक्षक-यन्त्र में भी नहीं दिखाई पड़ते, परन्तु उनका अस्तित्व अवश्य है।

बनावट और सन्तान वृद्धि—कीटाणुओं की सन्तति वृद्धि अद्भुत है। प्रत्येक जीवधारी २० से लेकर ३० मिनट में किंचित लम्बा होकर एक से दो कीटाणुओं में विभाजित हो जाता है। इनकी संख्या निरन्तर बढ़ा करती है। यह तो हुई एक विधि। दूसरी विधि यह है कि कीटाणु का जीवन-तत्व भीतर ही भीतर कई खंडों में विभक्त होकर पृथक् पृथक् कीटाणुओं को उत्पन्न कर देता है। विशूचिका के कीटाणुओं के विषय में अनुसन्धान से ज्ञात हुआ है कि एक कीटाणु एक समय में चार अरब अस्सी करोड़ कीटाणुओं को जन्म देता है। परन्तु जहाँ यह विकट प्रसार है वहाँ प्रकृति ने उनकी वृद्धि में कुछ रुकावटें भी उत्पन्न की हैं, जिससे यह शीघ्र बढ़ नहीं पाते। यथा—इनके आहार का अभाव, अन्य जीवों का इनको भक्षण करना, शुद्ध वायु, धूप आदि।

यह जीव अनन्त अन्तरिक्ष-मण्डल में व्यापक हैं, एक-एक धूल के कण पर गणनातीत कीटाणु होते हैं। हमारे खाने पीने, सूंघने इत्यादि की कोई भी वस्तु इनसे सुरक्षित नहीं है। समुद्र की गहराई में और वायु-मण्डल के शिखर पर इन कीटाणुओं से त्राण मिल सकता है; परन्तु इन स्थानों में प्राणधारी स्वयं नहीं जा सकते।

कीटाणुओं की पहचान—जब कोई पदार्थ विकृत और दुर्गन्धित होने लगे अथवा खाने-पीनेवाली खाद्य वस्तु कुस्वाद हो जाये, या रूप-रङ्ग में अन्तर पड़ जाये, तो समझ लो उसमें कीटाणु घुस गये। इसलिए उसको फेंक दो। भोजन का दूषित होना, कुस्वाद होना, दूध का फट जाना, खट्टी डकार आना यह सब कीटाणुओं के उत्पन्न होने की सूचनाएँ हैं।

कीटाणुओं का आहार—आहार के विचार से कीटाणु तीन प्रकार के होते हैं। एक वह जो प्राणी और वनस्पति के मुर्दों में प्रवेश करके अपना जीवन-निर्वाह करते हैं, ये कीटाणु बिना वायु के जीवित रह सकते हैं और शरीर के दुर्गन्धित पदार्थों से आक्सिजन या ओषजन ग्रहण कर लेते हैं। दूसरे वह जो जीवित प्राणी और वनस्पति पर अपना निर्वाह करते हैं। तीसरे वह हैं जो स्थावर या खनिज वर्ग में रहते है और पृथ्वी के कार्बन अंगारजन और तत्त्र्यजन पर जीवन-निर्वाह करते है।

हितकारी और अहितकर कीटाणु—कीटाणुओं का संपर्क दो दो प्रकार का है। बहुत से कीटाणु ऐसे हैं जो हमारे जीवन की आवश्यकताओं के लिए आवश्यक हैं। अनेक कीटाणु ऐसे हैं जिनका अस्तित्व हमारे जीवन के लिए घातक है। हितकारी कीटाणु वह हैं जिनसे भोजन की सामग्रियाँ बनती हैं, जैसे आटे का खमीर, दही इत्यादि। अहितकर कीटाणु वे हैं, जिनमें विषैले तत्त्व होते हैं।

मक्खी—छोटा सा जीव मक्खी मनुष्य का सबसे भारी शत्रु है। सैकड़ों रोग और सहस्रों संहार इसी के श्री चरणों की कृपा से संसार में होते रहते हैं। इसके संक्षिप्त जीवन की घटनाएँ चित्ताकर्षक हैं।

मक्खी अण्डे से उत्पन्न होती है। एक मक्खी को जन्म लेने, जवान हो जाने और सन्तान उत्पन्न करने के योग्य बन जाने में एक सप्ताह से दो सप्ताह तक की अवधि लगती है। एक मादा मक्खी एक ब्यांत १२० अण्डे देती है। जिनसे १०—१२ या १४ दिन तक के समयान्तर में १२० मक्खियाँ हो जाती हैं। यदि केवल १२० की गणना

रक्खी जाये तो दूसरे पक्ष में इन १२० मक्खियों से १४,४०० मक्खियाँ हो जायँगी। इस प्रकार यह क्रम दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जायगा। मक्खी के अण्डों का एक ही झोल नहीं होता; किन्तु इतने ही अण्डे कई ठौर देती हैं।

मक्खी का जन्म-स्थान—मक्खियाँ प्रत्येक भाँति की मलिनता और दुर्गन्धित पदार्थ मे उत्पन्न होती हैं। विशेषत घोड़े की लीद में। उन स्थानों में जहाँ मल संगृहीत होता हो। तुम देखोगे कि इस दुर्गन्धि पर महीन-महीन श्वेत रंग के कण एक ओर रक्खे हैं, वही इन मक्खियों के अण्डे हैं। जिनमे से दो-तीन दिन में बच्चे निकल आते हैं। यदि इन मलिनताओं में से कोई वस्तु मक्खी को अण्डे देने के लिए उपयुक्त न मिली तो फिर सब प्रकार की सड़नेवाली वस्तु पर जो दुर्गन्धि में मिलती है, अण्डे डालती है। इसकी घ्राण-शक्ति बड़ी तेज़ होती है। यह सड़ने की गन्ध पर दूर-दूर पहुँचती है।

मक्खी की शारीरिक रचना—एक अणुवीक्षक-यन्त्र के द्वारा यदि मक्खी के शरीर का निरीक्षण किया जाय तो ज्ञात होगा कि इसका सम्पूर्ण शरीर सूक्ष्म-सूक्ष्म लोमों से ढका हुआ है। सर, टाँग, पेट आदि अंग प्रत्यंग पर बाल होते हैं। इसकी छः टाँग होती हैं। उनमे वैसे ही काँटेदार काँटे होते हैं जैसे बड़े चींटे या झींगुर की टाँगों में मिलते हैं। मक्खी की टाँगों के सिरे पर एक गोल गद्दी सी होती है, जिसमें से एक चिपचिपा रस निकला करता है। यह रस उसे वस्तुओं पर उल्टा चिमट जाने और चलने में सहायता करता है।

मक्खी की शारीरिक वृद्धि की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ—अण्डे से निकलने के पश्चात मक्खी का रूप ऐसा नहीं होता जैसा उड़ते हुए। मक्खी का बच्चा अण्डे से निकलते समय एक लम्बा सा काला कीड़ा होता है, जिसके न सिर का पता चलता है और न पैर का ठिकाना। हाथ-पैर कुछ नहीं होते। चार-पाँच दिन तक वह कीड़े उसी लीद या **गोबर** को,

जिसमें जन्मते हैं, खाते रहते हैं। हरा रंग का हो जाने पर उनका शरीर भी पहले की अपेक्षा और बलवान हो जाता है। यह अवस्था समाप्त होने के पश्चात् मक्खी के जीवन का दूसरा काया-कल्प आरम्भ होता है। उनका रंग धूसर मटला पड़ने लगता है। देह संकुचित होने लगती है। गोबर या लीद इत्यादि के ऊपरी धरातल को पार करके उसकी पेंदी में जा पहुँचती है, जहाँ वह अपना चोला बदलने लगती है। निश्चल व स्थावर होकर एक लम्बे अण्डे के रूप में पड़ जाता है। इसी प्रकार चार-पाँच दिन व्यतीत हो जाते हैं। उसके उपरान्त रूप परिवर्तन की तीसरी और अन्तिम अवस्था प्रारम्भ होती है। कोष के भीतर ही भीतर मक्खी की आकृति बनने लगती है। अब उसके पंख निकल आते हैं। टाँगें बाहर आती हैं और सम्पूर्ण शरीर मक्खी के सदृश हो जाता है। जब पूर्ण देह बन चुकती है तब कीड़ा ऊपरी आवरण फाड़कर निकल आता है। पंख व पैर स्वच्छ करके उड़ने लगता है। तीन चार दिन के पश्चात उसकी अण्डे-बच्चे देने की बारी आ जाती है और वह वंश-विस्तार के कार्य में संलग्न हो जाती है।

मक्खी किस प्रकार साघातिक शत्रु है—तुम पढ़ चुके हो कि मक्खी एक अत्यन्त अपवित्र जीव है, जिसका समस्त जीवन ही दुर्गन्धि में बीतता है। मल, मूत्र, नाक, थूक, सड़ी-गली वस्तुएँ यही इसके मुख्य भोजन हैं। हम जानते हैं कि इन दूषित वस्तुओं में अत्यन्त विषमय कीटाणु भरे पड़े होते हैं कि जिसका हमारे शरीर में पहुँच जाना स्वास्थ्य-हारी होता है और उनमें नाना प्रकार के रोग उपजते हैं। जब कभी मक्खी इस प्रकार के दुर्गन्धित मलों पर बैठती है तब उसकी टाँग और परों में सम्पूर्ण मल भर जाते हैं। यहाँ से उड़कर जब वह हमारे खाने-पीने की वस्तुओं पर बैठती है तब यह विषैले और दुर्गन्धित रोगाणु उन वस्तुओं तक पहुँच जाते हैं और उन्हें स्वास्थ्य-नाशक बना देते हैं। यह तो एक दशा हुई, अब दूसरी दशा पर ध्यान दो।

मक्खी निरन्तर बीट किया करती है। जिस पर बैठती है, उसी पर बीट डाल देती है। अनुभव के लिए किसी ऐसे स्थान में, जहाँ मक्खियाँ अधिक एकत्र हुआ करती हैं, एक श्वेत अलगनी बाँध दो। एक सप्ताह के पश्चात् अलगनी काली पड जायगी। सम्पूर्ण अलगनी पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक महीन काले बुन्दे लगे होंगे। यह बुन्दे मक्खियों के बीट या विष्ठा है। तुम समझ सकते हो कि मक्खी स्वय अपनी उत्पत्ति और आहार के विचार मे एक अशुद्ध अपवित्र जीव है। मक्खी की बीट तो कहीं अधिक दूषित अपवित्र और जहरीली होगी। भोजन की जिन वस्तुओं को मक्खियों ने इस प्रकार अपवित्र और दुर्गन्धित कर दिया हो, वे कहाँ तक पवित्र हो सकती हैं, इसे तुम स्वय समझ सकते हो। इसी लिए खाने के बर्तन खुले और सीधे न रखने चाहिए। एक तीसरी दशा दुर्गन्धि फैलाने की और है।

मक्खी का नियम है कि जब किसी शुष्क वस्तु पर बैठती है तब पहले उसे तर करती है और फिर चाटती है। इस मन्तव्य के लिए वह अपने पेट के रस को मुँह से उगलती है। तुम जानती हो कि मक्खी के पेट के भीतर कैसे-कैसे विषैले कीटाणु भरे पड़े हैं। इन कीटाणुओं से भोजन की क्या दशा होती होगी इसका स्वय विचार कर सकती हो।

इस प्रकार मक्खियों से विविध भाँति के रोग एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे को लगते रहते हैं है और गाँव-गाँव, नगर नगर में फैल जाते है। साधारणत विशूचिका, तिजारी, अपच्य, सग्रहणी, पेचिश, मोती-झरा, फुन्सियाँ, फोड़े, आँख उठना, क्षय, प्लेग इत्यादि रोग मक्खियों के कारण एक-दूसरे तक पहुँचते हैं। ध्यान रखो कि मक्खियों की सन्तान वृद्धि न होने देना उनके मारने के यही सुगम और लाभकारी उपचार है।

मक्खियों से बचने के उपाय—(१) खिड़कियों और द्वारों पर परदे रहें, इसलिए कि मक्खियाँ न आने पायें।

(२) रोगग्रसितों के पास मक्खी का प्रवेश न होना चाहिए।

(३) अपने घर या घर के पास कूड़ा, आम की गुठलियाँ, तरकारी के छिलके या किसी प्रकार की सड़ी हुई वस्तुएँ इकट्ठी न होने दो और न किसी वस्तु को सड़ने दो।

(४) सारी सड़नेवाली वस्तुओं को या तो जला दो अथवा दूर खेतों में बिखरा दो ताकि इकट्ठी न हो जायें और मक्खियों को अण्डे देने का अवसर ही न मिले।

(५) सारी खाद्य-सामग्री को शीशे की अलमारियों या जालीदार आहारों में बन्द रक्खो, खुला कभी न रहने दो।

(६) संडासों और मुहरियों को निरन्तर फिनाइल से धुलवाते रहो।

(७) लीद, गोबर इत्यादि को या तो फिकवा दो अथवा उन पर मिट्टी का तेल या चूना डलवा दो और फिर बस्ती से बाहर खेतों में फेंकवा दो।

(८) रसोईघरों के कमरों के द्वार पर सर्वदा परदे डाल रक्खो। भोजनालयों के द्वार तो सदा जालीदार होने चाहिए।

(९) घर का कोना-कोना अत्यन्त स्वच्छ और पवित्र रहना चाहिए।

पिस्सू—कुत्ते, बिल्ली और खरगोश इत्यादि जीवों के बालों में अनेक छोटे-छोटे कीड़े रहा करते हैं। कभी बालों के ऊपर आ जाते हैं और कभी बालों में घुसकर खाल में चिपक जाते हैं। इन्हीं कीड़ों का नाम "पिस्सू" है।

मुर्गियों और बत्तकों के परों में भी इसी प्रकार के परन्तु उनसे छोटे कीड़े रहा करते हैं, उन्हें "कुटकी" कहते हैं।

जो लोग पहाड़ों पर रहते हैं वे जानते हैं कि छोटे-छोटे भुनगे के समान जीव रात के समय मनुष्यों के बिछौनों में घुस जाते हैं और सारी रात कष्ट देते हैं। प्रातःकाल होते ही यह कूद-कूदकर दीवार और द्वार की दराज़ों में छिप रहते है। यह पिस्सू कहलाते है।

खटमल की भाँति पिस्सू का भी आहार रक्त है। जिस पशु या मनुष्य को यह दु:खदाई कीड़े चिमट जाते है, उसका रक्त निरन्तर चूसा करते हैं। पिस्सू और मच्छरों में यह भेद है कि मच्छर उड सकते है। पिस्सू चिमटे रहते है। यह छः-सात इंच से अधिक नहीं उछल सकते।

नर पिस्सू

मादा पिस्सू
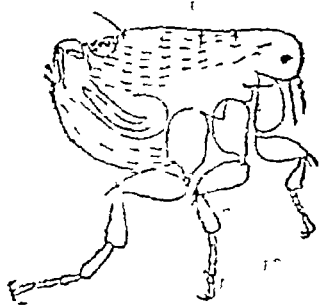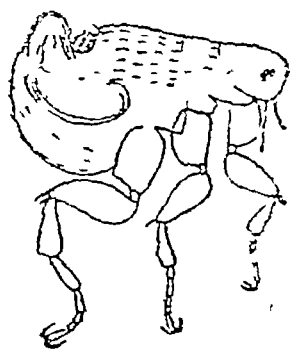
प्लेग के पिस्सू—पिस्सू के एक प्रकार को "ताऊनी पिस्सू" कहते है। सन् १८९७ ई० में डाक्टर सायमण्ड ने यह खोज की थी कि ताऊनी चूहों के द्वारा फैलता है। जो पिस्सू चूहों में पाये जाते है वही इस रोग को मनुष्यों में फैलाते हैं। उस समय से यह पिस्सू "मूसों के पिस्सू" भी कहलाते है, क्योंकि यह विशेषतया चूहों के बालों में रहते है और उनका खून पिया करते हैं। ताऊनी पिस्सू छोटी-सी नन्ही-नन्ही कुटकियाँ होती

है, जो भूमि के कीटाणु से चूहों में पैदा होती हैं। इन पिस्सुओं की टाँगे बहुत लम्बी-लम्बी होती हैं, जिनमें पाँच जोड होते हैं, दोनों ओर एक कटिया-सी निकली होती है। इनका रंग मटमैला, चिपटा और सिर पर बाल होते हैं। पीछे के अगों की अपेक्षा आगेवाले अग छोटे व पतले होते हैं। ताऊनी पिस्सू का मुँह मच्छर के सदृश होता है और उसमें एक जोड़दार सींग होता है, जो भीतर से खोखला रहता है। इस पोले के नीचे दो डंक होते हैं, जिनका आकार दाँतेदार आरी की भाँति होता है। जब पिस्सू रक्त पीना चाहता है, तब उन डंकों को चूहे की खाल में चुभो देता है और रक्त शोषण करने लगता है। पहले रक्त सींग के पोले में आता है वहाँ से चलकर मुँह और पेट में पहुँचता है। नर का डील डौल मादा की अपेक्षा छोटा होता है। नर की पूँछ किंचित ऊपर को उठी होती है और मादा की पूँछ नीचे को दबी हुई। पिस्सू अण्डे से उत्पन्न होते हैं और चार-पाँच कायाकल्पों में पूरे पिस्सू बनते हैं। मादा एक झोल में आठ से लेकर १२ तक श्वेत, चिकने और अण्डाकार रूप के अंडे देती है जिनमें शीत ऋतुओं में ११ दिवस में और ग्रीष्म ऋतुओं में अनुमानत इससे आधी अवधि ही में बच्चे निकल आते हैं। अंडे से निकलने के पश्चात् पूरा पिस्सू बनने में लगभग १५ दिन लगते हैं। पिस्सुओं की मादा शुष्क मिट्टी या मलीन गच अथवा अन्य दुर्गन्धित स्थलों में अंडे देती है। अंडे से निकलने के पश्चात् यह लम्बे और छोटे-छोटे कीड़े होते हैं, जिनका रङ्ग श्वेत या पीत मिश्रित होता है। उस समय इनकी टाँगें नहीं होतीं वरन शरीर पर १३ शाखाएँ-सी फूटी होती हैं। यह बच्चे सडी गली वस्तुओं पर जीवन निर्वाह करते हैं और भूमि या दीवारों की दरारों में निवास करते हैं। लगभग ७ दिन के उपरान्त यह नई मिट्टी के कणों का आवरण बनाकर अपना तीसरा चोला बदलते हैं और ५ से ८ दिवस के अन्तर में चौथा रूप धारण कर लेते हैं और पूरे पिस्सू हो जाते हैं।

मच्छर की मादा ही काटती है, परन्तु पिस्सू के नर व मादा दोनों काटते हैं और रक्त पान करते हैं। यों तो वह चूहों के शरीर में रहते ही हैं, परन्तु जब चूहा मर जाता है तब यह उसको छोड़ देते हैं और दूसरे चूहों की टोह में निकल पड़ते हैं, क्योंकि मृतक चूहे की देह में रक्त पीने को नहीं मिलता। जब अधिक भूखे होते हैं तब मनुष्य और दूसरे पशुओं पर भी धावा कर देते हैं। चूहों का नियम है कि जहाँ एक-दो चूहे ताऊन से मरे वहाँ शेष स्वस्थ चूहे जंगल को चल देते हैं।

ताऊनी कीटाणु—डाक्टर जरोलिया ने खोज की है कि ताऊनी कीटाणु या ताऊन के रोगाणु चूहों के पिस्सुओं के उदर में बढ़ते-फैलते रहते हैं और सात आठ दिन तक पेट में जीवित रहते हैं। इस समयान्तर में जब पिस्सू मनुष्य को काटता है, तब उसके मुँह की लसी के साथ यह कीटाणु भी निकल आते हैं और त्वचा पर एकत्र हो जाते हैं। जब काटने के कारण खुजलाहट जान पड़ती है तब मनुष्य खुजलाता है और यह कीटाणु खाल में प्रवेश कर रक्त में पहुँच जाते हैं। बहुधा यह कीटाणु पिस्सू के कण्ठ में एकत्र होकर बढ़ते व पलते रहते हैं। जब कंठ का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है, तब वह भूख से व्याकुल होकर जोर-जोर से काटता है। इस चेष्टा में कीटाणु कंठ से निकलकर मुख-मार्ग से उस अंग पर आ जाते हैं, जिसे पिस्सू काटता है।

जो लोग नंगे पाँव फिरते हैं या मिट्टी में काम करते हैं उन पर पिस्सुओं को आक्रमण करने की अधिक सुविधा मिलती है और यही कारण है कि ताऊन की गिल्टी जाँघ या पार्श्व (बगल) में निकला करती है।

मच्छर—मक्खी की भाँति मच्छर भी एक अत्यन्त दुःखदायी जीव है। इसके भेद दो सहस्र प्रकार होते हैं। परन्तु यहाँ केवल मलेरिया के मच्छरों का वर्णन किया जायगा और तुलना के लिए संक्षिप्त वृत्तान्त घरेलू मच्छर का भी किया जायगा।

साधारण मच्छर—जो मच्छर हमारी वाटिकाओं, गृहों और दूसरे स्थलों पर दृष्टिगोचर होते हैं, वह साधारण प्रकार के होते हैं। इनके पैर काले होते हैं और शरीर के धब्बे नहीं होते। जब यह दीवार पर बैठता है तब या तो दीवार के धरातल के समतल
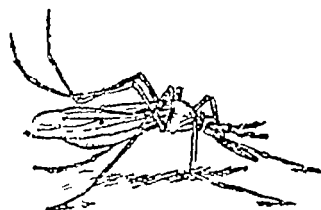
रहता है अथवा कुबड़ा। धुएँ और प्रकाश से भागता है। यह घरों के सकीर्ण कोनों में, फूल के गमलों में, भीगे स्थलों में, जल के बर्तनों में, नालियों और वृक्षों के खोंडरों में निवास करते हैं। मच्छर में विशेष बात यह है कि उसका श्वास आने-जाने का अंग उसकी पूँछ के पास होता है।

नर मच्छर पत्तियों का रस चूस-चूसकर पेट भरता है, परन्तु मादा मांसाहारी होती है। वह मनुष्यों और पशुओं को काटती और उनका रक्त चूसती है।

मच्छर की उत्पत्ति—मच्छरों की उत्पत्ति अण्डे से है। मादा जल में काले काले सूक्ष्म अंडे देती है, जो एक पंक्ति में जल में तैरते रहते हैं। बच्चे निकलकर कई दिन तक जल में मछलियों की भाँति तैरा करते हैं। यदि इस जल में मेंढक व मछलियाँ हुईं, तो कुछ तो उनके आहार बन जाते हैं, और शेष कीड़े जवान होकर उड़ने लगते हैं। जिसमें मच्छर के बच्चे हों, उसमें यदि कोई वस्तु फेंकी जाय, तो जल की तरंग से डर के डुबकी मार जाते हैं। मच्छर भी मक्खी की भाँति कई काया-पलट करता है। अंडे से कीड़ा, कीड़े से गोला, गोले से बच्चा बनता है और तब कहीं मच्छर बनता है। एक मच्छर से भी एक ऋतु में कई करोड़ मच्छर उत्पन्न हो सकते हैं। मच्छर ऐसे जल में उत्पन्न होते हैं, जो रुका रहता है।

मलेरिया का मच्छर—मलेरिया मच्छरों की भी उत्पत्ति और रहने सहने की गति वैसी ही है जैसी कि साधारण मच्छरों की। कर्म,-गुण, स्वभाव तथा रूप में अन्तर है। पैरों पर श्वेत या भूरे रंग की चित्तियाँ होती हैं। जब यह बैठता है तब ऐसा जान पडता है कि मानो सिर के बल खड़े है। जगलों, भीगे स्थलो, तराई के प्रदेशो, नदी नालों इत्यादि के कछारों में यह मच्छर बहुत होते हैं। इसी कारण ऐसे स्थानो के निवासी मलेरिया के रोग से बहुधा ग्रस्त रहते है। उसके अडे काले धूसर रंग के होते है और वह चार-चार गुच्छों में मिलकर तिनकों और पत्तियों में चिपक जाते हैं, जो जल पर तैरा करते हैं। वर्षा के उपरान्त अनेक कुद्रायतन और महीन-महीन कीड़े कुओं और तालाबों में उतरते दृष्टि पड़ते हैं। यह मच्छरों के बच्चे होते हैं, जो बढकर मच्छर बन जाते है।

मलेरिया क्या वस्तु है?—मलेरिया एक विशेष प्रकार के कीटाणु हैं, जो रक्त में पैदा हो जाते है। यह मच्छरों के द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के रक्त में पहुँच जाते है। इन कीटाणुओं के द्वारा जो रोग उत्पन्न होता ह, उसे मलेरिया कहते है।

मलेरिया के कीटाणु—मलेरिया के रोगी का एक बूँद रक्त लेकर अणुवीक्षण यन्त्र से देखा जाय तो ज्ञात होगा कि लाल रक्त कणों के भीतर काले काले बिन्दु है, जिनमें से कोई गोल ढग के है, कोई अर्द्धचन्द्राकार। यही मलेरिया रोग के कीटाणु है जो बढकर शरीर के रक्त में व्याप्त हो जाते हैं।

मलेरिया के कीटाणुओं का सम्बन्ध मच्छर से—मच्छर की मादा रक्त चूसकर पेट भरती है। यदि वह व्यक्ति मलेरिया का रोगी हुआ और उसके रक्त में मलेरिया के कीटाणु विद्यमान हुए तो रक्त के साथ वह कीटाणु भी मच्छर के पेट में चले जाते है। यहाँ जाकर वह अडे बच्चे देते है और सन्तति-विस्तार करते हैं। मच्छर के अभिशाय की

दीवार फट जाती है और वह कीटाणु मच्छर के सम्पूर्ण शरीर में रक्त के द्वारा व्यापक हो जाते हैं। जिस समय वह मच्छर किसी व्यक्ति को काटता है तो उसके मुँह के रस के साथ यह कीटाणु भी खाल में आ जाते हैं और दशम स्थान द्वारा दंशित व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। इस प्रकार मलेरिया का विष मच्छरों में से एक से दूसरे तक, दूसरे से तीसरे तक लगातार पहुँचता रहता है। अस्तु, ज्ञात हुआ कि जाडा-बुखार का रोग प्रसार करने के मूल कारण मच्छर हैं।

मलेरिया की बीमारियाँ—मलेरिया के कीटाणुओं के कारण अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, मुख्य प्रकार तो ठंड लगकर ज्वर होने का है, चाहे वह दैनिक हो अथवा तिजारी या चौथिया। जब बुखार पुराना हो जाता है तब दूसरे रोग उत्पात करते हैं। यथा—तिल्ली बढ़ जाना, यकृत की सूजन, अधकपारी की पीड़ा, जघा की पीड़ा, पक्षाघात, रक्त की न्यूनता, यकृत निर्बलता, आमाशय निर्बलता, पेचिश व दस्त, काम श्वास या पुरानी खाँसी, दृष्टि-क्षीणता इत्यादि-इत्यादि।

मलेरिया का ज्वर क्रम-नियम से क्यों होता है—मलेरिया का ज्वर पारी बाँधकर आता है उसका कारण यह है कि यह कीटाणु विशेष अवसर पर शरीर में भ्रमण करते हैं और घूम फिरकर रक्त के लाल कणों में चले जाते हैं। जिस समय यह दोनों से निकलकर रक्त में घूमते हैं, ज्वर चढ़ता है और जब पुन लौट जाते हैं तो ज्वर उतर जाता है।

यह कीटाणु मनुष्य की प्लीहा और यकृत में अथवा हड्डियों की गुरियों म जाकर घुसे रहते हैं, ऐसी दशा में रोगी भला-चगा रहता है, किसी को सन्देह नहीं होता कि यह रोगाक्रान्त है। यदि किसी प्रकार कभी उसका आरोग्य नष्ट हुआ और वह बलहीन हुआ तो यह कीटाणु निकल पड़ते हैं और रक्त में द्रुत गति से दौड़ मचाने लगते हैं।

मच्छरों से रक्षा—मलेरिया के मच्छरों से बचने के लिए इन बातों पर ध्यान देना चाहिए :—

(१) मच्छरदानी (नीशार) लगाकर सोना चाहिए।

(२) सोते समय शरीर पर तेल मलना चाहिए।

(३) पैर में ऊनी मोजे पहनना चाहिए और नंगी देह न बैठना चाहिए।

(४) कमरों में पखों का प्रबन्ध रखना चाहिए।

(५) दूषित और अँधियारे घरों में न रहो।

(६) घरों के कोनों में और अलमारियों के नीचे झाड़ू दी जाये।

(७) दिन के समय कोठरियो के द्वार खोल दो, ताकि प्रकाश और वायु के कारण मच्छर भाग जायें और सायकाल से प्रथम ही किवाड बन्द कर दो जिससे मच्छर कमरे में न घुसें।

(८) घर प्रशस्थ खुले और हवादार हो ताकि प्रकाश और वायु पुष्कल मात्रा में पहुँच सकें और भूमि में आर्द्रता न उत्पन्न हो।

(९) कमरों में गन्धक, गूगल, असगन्ध और अक्दरकर्वा इत्यादि सुलगाने से मच्छर मर जाते है और बचे-खुचे भाग जाते हैं। नीम की पत्ती और उपले सुलगाने से भी यही लाभ होते हैं।

(१०) घरों में या घरों के आस-पास जल न देना चाहिए, कूँडे, नाँदे, हौज (कुण्ड) और नालियाँ सब सदा सर्वदा स्वच्छता से घरों के पास के गढ्हे या अन्धे कुओं को पाट देना चाहिए।

(११) जिन स्थानों पर मच्छरों की उत्पत्ति के साधन प्रस्तुत हों वहाँ घर न बनवाना चाहिए।

(१२) घरों में ऐसे बर्तन न रहें जो छूँछे हों और जिनमें भील का प्रवेश हो।

(१३) तालाबों, पोखरों इत्यादि में जहाँ मच्छर उत्पन्न होते हैं

यदि थोड़ा-सा मिट्टी का तेल या पैरोफन छोड़ दिया जाय तो उसकी चिकनाई जल पर चद्दर की भाँति फैल जायगी। जल में मच्छर के अंडे-बच्चे जो कुछ होंगे मर जायँगे, क्योंकि तेल के कारण उनको श्वास लेना दुस्तर हो जायगा। एक तोला मिट्टी का तेल सौ वर्ग फीट जल तल के लिए पर्य्याप्त है।

(१४) तालाबों में मछलियाँ और बत्तकें छोड़ दी जायँ क्योंकि यह मच्छरों के अंडों-बच्चों को खा लेती हैं।

जूँ—तुमने देखा होगा कि बन्दर प्रायः बैठे-बैठे कभी-कभी एक दूसरे के बालों में से कुछ बीनते हैं और कुछ नोच-नोचकर फेंक देते हैं। वे एक-दूसरे के बालों में से जूँ बीना करते हैं। गन्दे मनुष्यों को भी जो अपने बाल साफ नहीं रखते, ऐसा करना पड़ता है। इस जाति के छोटे-छोटे कीड़े दो प्रकार के होते हैं—एक तो बालों में रहना पसन्द करते हैं और दूसरे शरीर और गन्दे कपड़ों पर। बालवाले कीड़ों को जूँ और शरीर पर रहनेवालों को 'चीलर' कहते हैं।

जूँ बालों में चिपटी रहती है। इस कीड़े के पर नहीं होते। इसकी पिछली टाँगें पिस्सू की तरह लम्बी नहीं होतीं। इसलिए न तो यह उड़ सकती है और न अधिक फुदक ही सकती है। यह बालों में इधर-उधर रेंगा करती है। पिस्सू की तरह यह भी दूसरों का रुधिर पीनेवाला मुफ्तख़ोर जीव है। जब यह काटती है और रुधिर पीती है तब खुजली प्रतीत होती है। अधिक खुजलाने से घाव भी पड़ जाते हैं। कभी-कभी घाव अधिक हो जाने से ज्वर भी आ जाता है। पिस्सू की तरह यह किसी घोर रोग के कीटाणु नहीं लाती। किन्तु मनुष्य को दुखी तो बहुत कर सकती है।

गन्दे मनुष्यों को, जो कभी नहीं नहाते और अपने बालों को साफ नहीं करते, यह दुःख अवश्य भोगना पड़ता है। उनके नाख़ून भी मैले होते हैं, इसलिए काटे हुए स्थान पर खुजलाने से घावों में भी ज़हर फैल

जाता है और घाव पक जाता है। 'चीलर' उन्हीं मनुष्यों के कपड़ों पर होते हैं, जो अपने कपड़ों को न तो कभी झाड़ते हैं और न धोते हैं। स्नान करनेवाले, बालों को साफ़ रखनेवाले और स्वच्छ कपड़े पहननेवालों के शरीर में जूँ होती ही नहीं। परन्तु किसी जूँ वाले गन्दे मनुष्य के पास बैठने से उसके जूँ अवश्य लग जाते हैं। जूँ पड़ जाने के बाद तुरन्त ही इसके नाश का उपाय करना चाहिए, नहीं तो खाल को बहुत हानि पहुँच सकती है। हलके कार्बोलिक लोशन को तेल में मिलाकर लगाने से जूँ मर जाती है। घाव हो जाने पर बाल साफ़ करके उचित मरहम लगाने से खाल फिर ठीक हो जाती है।

छूत लगने के ढंग—कीटाणु कई रीतियों से आक्रमण करते हैं। इन्हें हम निम्न पंक्तियों में देते हैं।

१—एक प्रकार के कीटाणु वह हैं जो खाने पीने की सामग्री में आकर गिरते हैं और आहार के साथ हमारे पेट में पहुँच जाते हैं, यथा—विशूचिका, चेचक, पेचिश इत्यादि इनसे ही उत्पन्न होते हैं।

२—दूसरे वह कीटाणु हैं जो वायु में रहते हैं। स्वाँस के द्वारा हमारी नाक और मुख के भीतर बैठ जाते हैं और वहाँ अपना विषैला प्रभाव ज ाते हैं। क्षय, इन्फ्लुएंजा, श्लेष्मा, खाँसी इत्यादि इन्हीं से पैदा होती हैं।

३—तीसरी भाँति के कीटाणु वह हैं जो मक्खी, खटमल, जूँ, पिस्सू प्रभृति जीवों के उदर में पलते हैं। यह जीव रक्त चूसने के लिए हमारे शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और रक्त में मिलकर विविध भाँति की व्याधियाँ मलेरिया और प्लेग आदि उपजाते हैं।

४—चौथे कीटाणु वह हैं, जो रोगी की देह में पलते हैं और शरीर की आर्द्रता के साथ निकलकर वस्त्रों में लग जाते हैं। दाद खुजली, गंज, श्वेत दाग कुष्ट या कोढ़ इत्यादि का इसी प्रकार विस्तार होता है।

स्वास्थ्य और कीटाणु—जिस प्रकार एक सम्राट् अपने साम्राज्य का प्रबन्ध करता है, ठीक उसी प्रकार प्रकृति सारे शरीर का प्रबन्ध करती है। तुम पढ़ चुके हो कि हमारे रक्त में दो प्रकार के "रुधिर-कण" होते हैं एक लाल और दूसरे सफेद। श्वेताणु शरीर की सेना हैं, जिससे शरीर की रक्षा होती है। नसें व नाड़ियाँ सड़कें हैं जिनमें से फौज और पुलिस के सिपाही एक स्थान से दूसरे स्थान को आना-जाया करते हैं। शरीर की लसीका ग्रन्थियाँ तिल्ली और गिल्टियाँ इत्यादि गढ़ हैं, जिनमें रक्त के श्वेताणुओं के सैनिकों के दल के दल विद्यमान रहते हैं और सैनिक-शिक्षा प्राप्त करते हैं। अस्थि की मज्जा शस्त्रागार है जहाँ से युद्ध की लावन सामग्री तैयार होती है।

रोगों के कीटाणु बाहरी शत्रु-सेना हैं जो हमारे शरीर पर चढ़ाई करते हैं। जब रोगाणु हमारे शरीर में प्रवेश करता है तब नाड़ियों के तार उसकी सूचना मस्तिष्क को देते हैं, वहाँ से रोक-थाम करने की आज्ञा होती है। श्वेताणुओं की सेना रक्तरूपी समुद्र के मार्ग से उस स्थान पर उतार दी जाती है और वह रोगाणुओं की सेना को चारों ओर से घेर लेती है, यदि श्वेताणु प्रबल हुए तो वह रोगाणुओं का संहार कर डालेंगे और यदि रोगाणु विजयी हुए तो रोग प्रबल हो जायगा।

क्वारन्टाइन (छूतहे रोग से रक्षा)—छूत की बीमारियों के प्रकट होने में कुछ समय लगता है यद्यपि रोगाणु शरीर में बहुत पहले प्रवेश कर चुके होते हैं। इसी कारण छूत की बीमारियों के लिए क्वारन्टाइन की अवधि हुआ करती है। क्वारन्टाइन अवधि वह होती है जब किसी व्यक्ति को जिसके विषय में किसी सीमातीत रोग की आशंका होती है, अन्य लोगों से पृथक् रखते हैं ताकि इतने समयान्तर में यह निश्चित हो जावे कि उसे कोई सीमातीत रोग है या नहीं।

जिस प्रकार प्रत्येक सीमातीत रोग के गुप्त रहने का एक विशेष समय होता है, उसी प्रकार छूत लगने की भी एक अवधि रहती है। इस समय

के समाप्त होने पर कीटाणु मर जाते हैं और छूत लगने का भय नहीं रहता।

परन्तु, यह बात सब लगती व्याधियों के साथ नहीं होती, अनेक बीमारियाँ यथा—यक्ष्मा, फुस्फुसक्षति इत्यादि ऐसी भी हैं, जिनकी छूत कभी जाती ही नहीं और न उनके छूत लगने और प्रकट होने का कोई समय ही नियत है। बहुधा पचीस-पचीस तीस तीस वर्षों के उपरान्त ऐसे रोगों का आविर्भाव होता है, यद्यपि छूत लगने का इनका काल व्यतीत हो चुका होता है। उसका कारण यह होता है कि जब तक स्वभाव बली रहा कीटाणुओं ने अपना प्रभाव नहीं किया, परन्तु जहाँ शरीर में किसी प्रकार की शिथिलता उत्पन्न हुई उन्होंने भी अपना आक्रमण कर दिया और रोग प्रकट हो गया। इन रोगों की छूत पीढियों तक चली जाती है, और यह रोग असाध्य होते हैं।

१. महामारी या ताऊन—मच्छरों की भाँति पिस्सुओं ने भी रोग फैलता है। यहाँ हम उस संहारकारी बीमारी का वर्णन करेंगे जो विशेष प्रकार के पिस्सुओं से, जो चूहों की देह में व्याप्त रहते हैं, उत्पन्न होती है। इस रोग को "महामारी या (ताऊन)' कहते हैं। यह रोग संसार के समृद्धिशाली देशों की हानि कर चुका है।

महामारी फैलने की विधि शरीर में—महामारी एक भीषण बीमारी है, जो भूमि के कीटाणुओं से चूहों में उत्पन्न होती है। चूहों के सूक्ष्म सूक्ष्म कुटकियाँ होती हैं, जो "मूसों के पिस्सू" कहलाती हैं। यह कुटकियाँ चूहों के शरीर में चिपटी हुई उनका रक्त पिया करती हैं। जो चूहे महामारी की बीमारी में ग्रस्त होते हैं, उनकी कुटकियों में भी यह विषैले कीटाणु आ जाते हैं। चूहों का नियम है कि जहाँ किसी स्थान पर महामारी के रोगाणु उत्पन्न हुए और उनके सहचर पीडित हुए, वह तुरन्त उस स्थान को तज दूसरे स्थानों को भाग जाते हैं। इसलिए जब रोग-पीडित चूहा मर जाता है और उसके शरीर में

चुओं को विशेष करके महामारी के कीटाणु प्रभाव कर भी नहीं सकते।

महामारी-पीड़ित के लक्षण—जब महामारी के रोगाणु शरीर में प्रवेश कर जाते है तब रोग वेग से प्रकोप करता है। यदि रोगी बलवान हुआ और रोग के दुर्गुण दूर करने की शक्ति उसमें विराजमान हुई तो रोग का सामना करता है और बच भी जाता है। अन्यथा २४ घंटे से लेकर ३-४ दिन के समय में समाप्त हो जाता है। रोग का प्रकोप अकस्मात आरम्भ हो जाता है। पहले सूक्ष्म फुरफुरी बोध होती है, इसके बाद बहुत जोर से ज्वर चढ़ता है और तापमान १०४ अंश तक पहुँच जाता है, सिर व पीठ में पीडा मालूम होती है। अंग टूटते हैं। कभी-कभी दस्त कै भी होते हैं। आँखें लाल या कुछ पीली हो जाती है। नेत्रों के चारों ओर घेरा पड़ जाता है। तृषा बहुत बढ़-जाती है, मुँह उतर जाता है। तंद्रा छा जाती है। यदि ज्वर १०४ अंश से आगे बढ़ गया तो रोगी की जीवन लीला समाप्त हो जाती है। अधिकतर जंघा, काँख, या ग्रीवा में गिल्टियाँ उभर आती है। इनमें घोर पीड़ा होती है। रोगग्रस्त की शारीरिक शक्ति शनैः शनैः क्षीण हो जाती है और सन्निपात की अवस्था प्रकट होती है। यदि रोग सूक्ष्म हुआ तो उपचार गिल्टियाँ पक जाती हैं, उनमें मवाद पड़ जाता है। पककर बहने लगता हैं। कभी रोग की प्रखरता से देह में त्वचा के नीचे रक्त दूषित से काले काले धब्बे पड़ जाते हैं। कभी-कभी मूत्र भी अवरुद्ध हो जाता है, मुख और नासिका से रक्त स्राव होने लगता है। यह सब अवस्था असाध्य हैं। परन्तु महामारी का सबसे भयानक प्रकार निमोनियाई ताऊन है जिसमें विरला ही बचता है।

महामारी से सावधानी—महामारी से बचने के लिए कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए। पहली बात यह है कि चूहों से निस्तार पाने का दृढ़ प्रबंध करो, गृह के गच्च जहाँ तक हो सके पक्के हों। रहने-सहने

के स्थानों पर अन्न की राशि न रक्खा जाये। चूहों को चूहेदानी के द्वारा पकड़कर जल में डुबो दो और जब वह मर जाये तो उनको फूँक दो ताकि महामारी के रोगाणु जल भुनकर भस्म हो जावें। दूसरे यह कि महामारी-पीड़ित को नीरोग मनुष्यों से पृथक् रक्खो। तीसरे यह कि जब किसी स्थान पर चूहे मरने लगें, तब उस स्थान को तुरन्त परित्याग कर और बस्ती से बाहर खुले चौगान में मास दो मास निवास करो। गृह के गच व दीवारों को मिट्टी के तेल के मिश्रण से जिसमें एक भाग तेल और सहस्र भाग जल हो, यदि दीवारों की दरज और दरज की प्रदरों और बिलों में महामारी के रोगाणु हुए तो मर जावेंगे। इसके बाद दीवारों पर सफ़ेदी कर दो। चूना कीटाणु-नाशक है। चौथे यह कि महामारी के रोगों के बिछौने, कपड़े व खटिया, मल-मूत्र, नाक, थूक सारांश यह है कि प्रत्येक चिन्ह की मिट्टी का तेल डालकर जला दो। कपड़ों को औषधि-वाष्प से स्वच्छ कर दो। पाँचवीं मुख्य बात यह है कि महामारी से निवृत्त होने के लिए ताऊनी टीका लगवा लो। उससे मनुष्य सुरक्षित रहता है।

महामारी के रोगी की सेवा सुश्रूषा—महामारी-पीड़ित को एक एकान्त स्थान पर रक्खो जहाँ वायु व प्रकाश पहुँच सके। रोगी के विश्राम व सुख का पूरा विचार रक्खो। उसे बिस्तर पर लेटाये रक्खो। भोजन में शीघ्रपाची आहार दो, यथा—दूध, यखनी, अट अंगूर, अनार, सेब इत्यादि। जल जितना माँगे धड़ल्ले से दो। गिल्टीदार ताऊन में भीतरी औषधियों के सिवा बाहरी औषधियाँ भी करो। इसमें थोड़ा सा लहसुन कूटकर अँगूठे और अँगुली के बीच के अंश में रख दो। इससे एक नीले रंग का छाला पड़ जायगा और गिल्टी का विष इसके द्वारा निकल जायगा। यदि गिल्टी काँख या ग्रीवा से निकले तो लहसुन को हाथ में लगाना चाहिए और यदि जंघा में हो, तो पैरों के अँगूठे और अँगुली के बीच में लगा दो।

२. श्लैष्मिक ज्वर (इनफ्लुएंजा)—इनफ्लुएंजा मरीवाला बुख़ार है। इसके साथ श्लेष्मा की व्याधि भी लग जाती है। देह में पीड़ा होती है और रोगी शिथिल हो जाता है।

प्राचीनकाल में रोम के निवासी इस व्याधि को क्रूरग्रहों का उत्पीड़न या शनि दृष्टि समझते थे और इसी धारणा के कारण इसको "इनफ्लुएंजा" (अर्थात् ग्रहबाधा) कहते थे। लगभग १००० वर्ष हुए यह रोग पहले-पहल इराक़ (अरब) में हुआ था, परन्तु इसके पश्चात् ६०० वर्ष तक लुप्त रहा। सन् १५१० ई० में यह रोग फिर भड़का, परन्तु इस समय इसका प्रभाव वेगवान था और यह व्याधि समस्त यूरोप में फैल गई। इससे उपरान्त ३७० वर्ष तक यह एक दो बार और आई और लाखों मनुष्यों का क्षय हो गया, परन्तु सन् १८८९ ई० में इसका बड़ा प्रकोप हुआ, क्योंकि अब की बार संसार का कोई खंड ऐसा नहीं बचा जहाँ इसका श्रीचरण न पहुँचा हो। अब की बार यह रोग भारत में भी आया और अनेकानेक जन-संहार हुए।

युद्ध-ज्वर—इनफ्लुएंजा को बहुत से लोग "लड़ाई का बुख़ार' भी कहते हैं। कारण यह कि यह बहुधा किसी घनघोर संग्राम के पीछे फैलता है। महा समर के अन्त में जब लाशें सड़ती हैं, उनमें इनफ्लुएंजा के कीटाणु उत्पन्न होते हैं और चहुँ ओर के वातावरण को विषैला बना देते हैं। पहले पहल यह रोग आस-पास के देशों को तबाह करता है पश्चात् इधर-उधर छूत के द्वारा फैलता है सन्। १९१८ ई० में भी यह संक्रामक रोग जर्मन युद्ध से लौटनेवाले सैनिकों के द्वारा भारत में पहुँचा था।

इनफ्लुएंजा की छूत—इनफ्लुएंजा छूतवाली व्याधि है। कीटाणु उसकी नाक, खँखार, थूक, और बात-चीत करने से उसके शरीर से निकल वायु से मिल जाते है और उसे विषाक्त बना देते है।

जिन लोगों तक यह विषैली वायु पहुँचती है वह इस रोग में ग्रस्त हो जाते हैं। इस रोग के तीव्रता से प्रचलित होने का कारण यही है।

अलबत्ता, कुछ लोगों का स्वभाव इनफ्लुएञ्जा के कीटाणुओं को दबा देता है और उन पर इसका प्रभाव नहीं होता, परन्तु ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं। यों तो यह रोग प्रत्येक ऋतु में होता है, परन्तु शीत प्रधान देशों में शिशिर काल में ऋतु परिवर्त्तन के समय इसका प्रकोप अधिक होता है।

इन्फ्लुएञ्जा के लक्षण—श्लैष्मिक ज्वर में शीश, कटि, नेत्रों और शरीर में वेदना उठती है। कभी ज्वर जाड़ा देकर आता है और कभी जाड़े के बिना, कभी बहुत जोर से सर्दी होती है। नाक व आँखों से जल बहने लगता है। साँस तेज हो जाती है, ग्रीवा और वक्ष में पीड़ा होने लगती है। आवाज बैठ जाती है। खाँसी आने लगती है जिससे निरन्तर कफ निकला करता है। कभी नजला भी आ जाता है, ज्वर में नाड़ी वेग से धड़कती है। मूत्र का रंग लाल हो जाता है, मूत्र थोड़ी मात्रा में गिरता है, श्वास में दुर्गन्धि निकलती है और रोगी को व्याकुलता और दुर्बलता बढ़ने लगती है।

खाँसी—रोगी की खाँसी के कफ में रक्त की फुटकियाँ और पीप की मिलावट होती है। यह इस बात का प्रमाण है कि कीटाणुओं ने फेफड़ों में घाव कर दिया है और रोग असाध्य हो गया है। यदि इनफ्लुएञ्जा से बच भी गया तो क्षय का ग्रास हो जायगा।

वक्ष वेदना—जिस रोग के वक्ष में पीड़ा उठने लगती है उसको निमोनिया (फुस्फुसदाह) हो जाती है। क्षीणता के कारण श्वास और ज्वर वेगवान हो जाते हैं। यह भी फेफड़ों के प्रभावित होने के लक्षण हैं।

ज्वर या तप—इनफ्लुएंज़ा का ज्वर सामान्यत. १०२ से १०४ अश होता है; परन्तु जर्जरता बढ़ जाने से अथवा ज्वर प्रचण्ड हो जाने से मस्तिष्क पर कठिन प्रभाव पडता है। रोगी को सन्निपात हो जाता है। वह दुर्वाद बर्राने लगता है। यह अवस्था भयानक है। कभी-कभी ज्वर के कोप में शरीर पर महीन-महीन दाने निकल आते हैं, जिनसे शीतला का सन्देह होता है, परन्तु ऐसी दशा में प्राण-शक्ति निपट लोप हो जाती है। यह बात निकास में नहीं होती।

इनफ्लुएज़ा से त्राण पाने के उपाय—सर्वदा शुद्ध और खुली हवा में रहो। चित्त को प्रसन्न रखो, रोग से न डरो न उसकी चिन्ता करो। सोते समय कमरे की खिडकियों और झरोखों को खुला रखो। शीत से बचो। शरीर को ठडी वायु से सुरक्षित रखो। आहार सूक्ष्म खाओ, मन्दाग्नि न होने दो। ठडा जल, लेमोनेड और बर्फ़ की कुलफी इत्यादि न खाओ। जिस स्थान का वातावरण भीड और जन-समूह के कारण उष्ण और दूषित हो, वहाँ न जाओ। घरों को शुद्ध पवित्र रखो। उनमें लोबान, धूपीक, गोंद, अगर और सुगन्धित वनस्पति जलाओ। भोजन के साथ दारुचीनी, काला जीरा, अदरक, अजवाइन, सोंठ और अन्य उष्ण द्रव्यों का सेवन करो। रुमाल में कपूर की डली अथवा यूकलिप्टस आइल लगाकर सूँघो।

रोगी के लिए सावधानी—इनफ्लुएजा के रोगी को एकान्त में स्वच्छ और हवादार स्थान पर रखो। स्वस्थ मनुष्यों को रोगी के पास न जाने दो। रोगी के उच्छिष्ट को न खाओ। उसका तौलिया तथा अन्य वस्त्र उपयोग में न लाओ। जिस स्थान पर इनफ्लुएज़ा का रोगी हो वहाँ कुछ न खाओ-पिओ। रोगी के थूक व कफ़ को एक बन्द उगालदान में रक्खो और जला दो। जो व्यक्ति इनफ्लुएज़ा से ग्रस्त हो, उसको आरोग्य लाभ करने के पश्चात् भी दस-बारह दिन तक लोगों से न मिलने दो। उसके घर-बार तथा कपडे आदि को साफ़ कर दो।

होता है। नवें-दसवें दिन दाने मुरझाने लगते हैं। इस प्रकार दो सप्ताह के समय में पपड़ी बँधकर उतरने आरम्भ होते हैं। जब पीप सूखने लगता है, तो दानों में खुजलाहट होती है। बच्चे तो खुजला खुजलाकर घाव कर लेते हैं।

शीतला का प्रभाव शरीर पर—पपड़ी उतर जाने पर त्वचा पर लाल पीले वर्ण के धब्बे रह जाते हैं, परन्तु यदि शीतला प्रचण्डता से हुई तो पीप के कारण दाने के नीचे का मांस गल जाता है और शरीर में गड्ढे पड़ जाते हैं। स्मरण रखो शीतला केवल बाहर ही के भाग में नहीं निकलती, वरन् नाक, कान, आँखें, मुँह आँतें, ग्रीवा और आहार की नलिका इत्यादि, देह भर के सभी अंगों में निकलती है। कठिन शीतला के रोगी की आँखें सूज जाती हैं और प्रकाश में खुलने नहीं पातीं। गले के भीतर भी शीतला के कारण सूजन हो जाती है। किसी वस्तु के खाने पीने में कष्ट होता है। भीतरी दानों की तरलता आँख, नाक और मुँह से निकला करती है। कभी-कभी तो आँख जलकर बह जाती है। अँतड़ियों की शीतला के कारण दस्त आने लगते हैं और मुख से विशेष प्रकार की दुर्गन्धि आने लगती है। मूत्राशय में दानों के कारण मूत्र में पीप और रुधिर आने लगता है और मूत्र-त्याग करने में पीड़ा होती है। नाक की आन्तरिक शीतला बांसे को गला देती है और नाक बैठ जाती है। मस्तिष्क की शीतला से विक्षेप और उन्माद रोग हो जाता है। आँख व कान पर भी दानों का प्रभाव होता है। रोगी की दृष्टि और श्रवण-शक्ति मन्द पड़ जाती है।

शोणित शीतला (खूनी चेचक)—शीतला का एक प्रकार खूनी चेचक कहलाता है। यह बड़ा सांघातिक होता है। इसमें रोगी बहुत कम बचता है। यह रोगी को असीम निर्बल और जर्जर कर डालती है। विकलता, अचेतनता और सन्निपात हो जाता है। श्वास वेगवान हो

जाता है। दाने बहुत काल में निकलते हैं। बहुधा बैठ जाते हैं। दोनों में पीप के ठौर श्यामता-सहित रक्त हो जाता है। वृक्क व वस्ति से रक्त बहने लगता है।

शीतला में रोगी की सेवा-सुश्रूषा—रोगी का कमरा स्वच्छ तथा वायुमय हो। कमरे की उष्णता मध्यम दशा में रहे। ठंडी वायु के झोंके भीतर न आने पावें। शीश पीड़ा के लिए तर रुमाल सिर पर रक्खो। तसल्ली के लिए बर्फ के टुकड़े चूसने को दो। कटि वेदना और शरीर की टरस के लिए जल एक टब में भरकर उसमें रोगी को बिठा दो और १५-२० मिनट तक इसी प्रकार स्नान कराओ। तत्पश्चात् १० ग्रेन "डोवर्स पाउडर" का सेवन कराओ। बच्चों को इस औषधि की आधी मात्रा दो। कटि-पीडा के लिए सेंक गुणकारी है। मंदाग्नि दूर करने के लिए थोड़ा सा रेंडी का तेल तप्त दूध में मिलाकर पिलाओ। आहार सूक्ष्म और शीघ्रपाची यथा—दूध, यखनी, आशजौ, मूँग का जूस इत्यादि लेशमात्र ग्लेसरीन के साथ मिलाकर दो। कारबोलिक एसिड २ माशा या पोटासियम परमैंगनेट १० ग्रेन पाव डेढ़ पाव जल में घोल-कर दानों को दिन में तीन-चार बार इस अर्क से धोया जाये। इससे दानों का पीव नहीं सड़ेगा और खाल पर शीतला के दानों का प्रभाव कम होगा। दानों की कलबलाहट और जलन रोकने के लिए पपटी उतर जाने के उपरान्त जैतून का तेल और चूने का जल सम भाग मिलाकर या २ माशा कारबोलिक एसिड ४ माशा गर्म जैतून के तेल में मिलाकर लगाओ। बच्चों के हाथों में रुई के पहल बाँध दो जिससे वे खुजला न सकें। सूजे हुए गले में तोला भर शहद पाव भर गुलाबजल में घोल करके गरगरा करवाओ। बच्चों के कण्ठ में लेप ही कर देना पर्याप्त है। सूजी हुई आँखों पर फाहे रखो और कुछ बूँदें आँखों में भी टपका दो। रोगी जब स्वस्थ हो जाय तब प्रति तीसरे दिन कारबोलिक एसिड मलकर तीन बार नहलाओ।

शीतला से रक्षा—शीतला से बचने का उत्तम उपाय टीका लगवाना है। जिन लोगों के चेचक का टीका लगा है, उनके शीतला नहीं निकलती। यदि निकलती भी है तो हलकी। छूत लगने के पाँच दिन के भीतर भी यदि टीका लग जाये तो प्रकोप घट जाता है। टीका उत्तम लगना चाहिए। बच्चों को एक बार दो-तीन मास की अवस्था में और फिर दश ग्यारह वर्ष की आयु में टीका लग जाय तो रक्षा हो जाती है। उत्तम टीके की पहचान यह है कि टीका लगाने के तीसरे दिन वह स्थान उभर जाय, चौथे दिन उनमें दाने पड़ जायँ, पाँचवें दिन सूक्ष्म ज्वर चढ़ आये और छठे दिन दानों में रस भरकर उनकी नोकें दब जायँ और प्रत्येक दाने के चारों और लाल घेरा पड़ जाय। इसी दशा में ज्वर वेगवान होता है, सातवें दिन से दानों में पीप पढ़ने लगता है। दो सप्ताह के भीतर दाने सूख जाते हैं और तीन चार सप्ताह में पपड़ी उतर जाती है। यदि यह लक्षण न उत्पन्न हों, तो समझ लो कि टीका अच्छा नहीं लगा और दोबारा टीका लगाने की आवश्यकता है।

शीतला में सावधानी—रोगी के घर में उपचारकों के सिवा और लोगों को न आना चाहिए, विशेषत. बच्चों को। कमरे के कोनों में कपूर के खण्ड रख दिये जायँ, यूकलिप्टस आयल कपड़े में लगाकर रख दिया जाये। उपचारक ऐसा व्यक्ति हो, जिसके शीतला निकल चुकी हो अथवा उनने हाल ही में टीका लगवाया हो। रोगी का मूत्र, पुरीष, थूक कारबोलिक लोशन में डालकर बस्ती से बाहर गड़वा देना चाहिए। रोगी के वस्त्रों को २ सेर कारबोलिक एसिड, एक पीपा उष्ण जल में भिगोकर आध घंटा तक खौलते जल में उबालो और तब धोबी को दो। रोगी के प्रयोग में काँच व चीनी के जो बर्तन रहे हों, उनको खौलते जल में डालकर व्यवहार में लाओ। पश्चात् रोगी के कमरे को धुलवाकर उसमें गन्धक सुलगाओ।

५. **खसरा**—खसरा भी शीतला की भाँति एक लगती बीमारी है। इसमें प्रथम प्रथम श्लेष्मा होता है। फिर ज्वर चढ़ता है। ज्वर के चौथे दिन शरीर पर छोटे-छोटे पोस्त के बराबर लाल दाने दिखाई देते हैं। खसरा साधारणतया बच्चों को निकलती है और जीवनकाल में केवल एक बार होती है। यह लगती बीमारी है। छुक मात्र छूत में यह एक से दूसरे को हो जाती है। इसकी छूत बर्तनों, पुस्तकों, चिट्ठी इत्यादि से लग जाती है। छूत लगने से १०-१२ दिन के पश्चात् यह प्रकट होती है। यह इतनी साघातिक नहीं होती जैसी शीतला है। यदि बच्चे के आन्तरिक अंग पीडित हो जायें तो यह भयंकर हो जाती है।

खसरा के लक्षण—खसरा का लक्षण प्रायः वैसे ही होता है जैसा कि शीतला के वर्णन में लिखा जा चुका है। ज्वर के चौथे दिन मुँह पर महीन दाने दीखते हैं और दो-तीन दिन में सम्पूर्ण शरीर में दीखने लगते हैं। उनका रंग पीत मिश्रित लाल श्यामयुक्त लाल अथवा गुलाबी रंग का होता है। दाने निकलते समय ज्वर भीषण हो जाता है। सर्दी प्रबलता से बढ़ने लगती है। दाने भली भाँति निकल आने पर दोनों रोगों का वेग घट जाता है। छठे-सातवें दिन दाने मुरझाने लगते हैं और एक सप्ताह के पश्चात् उनकी भूसी झड़ जाती है।

छूत की अवधि—ऐसे तो खसरा की छूत रोग के आदि से लेकर भूसी उतर जाने के तीन सप्ताह तक रहती है, परन्तु यदि इस समय में खाँसी प्रकोप करे या कान बहने लगे, तो छूत का प्रभाव अधिक हो जाता है।

खसरा का प्रकोप-काल—खसरा भी सामान्यतः जाड़े में अथवा हेमन्त के अन्त में होती है। प्रचुर रूप से यह ऐसे नगरों में हुआ करती है जहाँ की बस्ती सघन हो और जहाँ शुद्ध वायु का आगमन न हो। बच्चों को माता के गर्भ से भी यह रोग लग जाता है। वर्षा-ऋतु समाप्त

होने पर जाड़ों के आरम्भ में यह रोग अधिक भीषण रूप धारण करता है।

खसरा का भीषण प्रकार—नीले दानोंवाली खसरा भयानक होती है। उसके दाने कभी कभी पूरे नहीं निकलते और बैठते जाते हैं। रोगी को क्षीणता व दुर्बलता हो जाती है। इसमें सामान्यतः खाँसी और निमोनियाँ हो जाता है। रोगी अधिकतर मर जाता है। इसमें बहुधा दस्त भी आने लगते हैं।

रोगी की सेवा सुश्रूषा और उपचार—खसरा के रोगी की सेवा सुश्रूषा ठीक उसी प्रकार करनी चाहिए, जैसी कि शीतला के रोगी की। खसरा के दस्तों में शर्बत हब्बुलआस ६ माशा जल में देना लाभ करता है। इसमें फेफड़ों में क्षति हो जाने और निमोनियाँ होने का भय रहता है, अतः रोगी के वक्ष की रक्षा करना तथा उसे शीत से बचाना चाहिए। उष्ण जल पिलाना चाहिए। उष्ण जल से स्नान भी कराना चाहिए। उष्ण-प्रधान वस्त्र भी पहनाने चाहिए। बादाम की गिरी और कतीरा एक भाग कद्दू के बीजों की गूदी २ अंश और मिश्री ३ अंश लेकर सूखे ही पीस लिया जाये, बेहीदाना के लुआब में मिलाकर चटनी की भाँति रोगी को चटाया जाये। शर्बत बनफ़शा तथा जूफ़िया उष्ण जल में घोलकर पिलाया जाये। इससे वक्ष की रक्षा होती है। छाती पर तारपीन का तैल मलना तथा मछली का तैल पिलाना गुणकारी है।

६. हैज़ा—हैजा भी कीटाणुओं से होनेवाला रोग है। इसके कीटाणु विशेषकर गन्दे जल, जल मिले हुए दूध और अशुद्ध भोजन के द्वारा शरीर में पहुँचते हैं। ये कीटाणु आरम्भ में किसी हैजे के बीमार से ही चलते हैं, रोगी के कै और दस्तों में होते हैं और वहाँ से या तो मक्खियों के द्वारा या रोगी को देख भाल करनेवाले लोगों की अशुद्धता के कारण जल और भोजन तक पहुँच जाते हैं। इसलिए

हैजे से बचने के लिए सबसे अच्छा उपाय शुद्ध जल, शुद्ध दूध और शुद्ध भोजन के अतिरिक्त और कुछ मुँह में न पहुँचने देना ही है। जो लोग हैजे के रोगी की देख भाल करते हों, उन्हें खाने-पीने से पहले अपने हाथ साबुन से खूब अच्छी तरह धो लेने चाहिए, अन्यथा रोग होने की आशङ्का रहती है।

हैजे का मुख्य लक्षण यह है कि रोगी को खूब कै आती है और चावलों के मांड जैसे दस्त जल्दी-जल्दी आने लगते हैं। पेट और टाँगों में दर्द होता है, खाल ठंडी हो जाती है और रोगी अधमरा-सा दीखने लगता है।

हैजा बड़ा घातक रोग है। इससे प्राय गाँव के गाँव तबाह हो जाते हैं। इसके होने पर कठिनता से १०० में ६० या ८० रोगी अच्छे हो पाते हैं। हैज़े का शक होने पर किसी अच्छे डाक्टर से चिकित्सा कराना अत्यन्त आवश्यक है। नीचे लिखे नियम इस रोग के विषय में याद रखने चाहिए :—

(१) रोगी की कै और उसके दस्त, जहाँ तक हो सके, जला डालना उचित है। कै और दस्त, राख और चूने से भरे हुए मिट्टी के बर्तन में कराना ठीक है। यदि इन्हें जलाना सम्भव न हो, तो कुओं और नलों से दूर एक गहरा गढा खोदकर उसमें दाब देना चाहिए।

(२) हैज़ा फैल रहा हो, तो सब कुओं में "पोटैशियम परमैंगनेट" नामक दवा डाल देनी चाहिए। इससे जल तो अवश्य लाल हो जायगा, परन्तु हैजे के कीटाणु मर जायँगे।

(३) रोगी के कपड़े धोबी को देने से पहले या तो जल में खूब उबाल डालने चाहिए, या उन्हें "कार्बोलिक लोशन" में कुछ देर भिगो देना चाहिए। ऐसा न करने से हैजा फैलने का डर रहता है। रोगी के कपडे नहर, नदी, कुएँ या तालाब में धोने ठीक नहीं।

(४) हैजा फैला हो तो बाजार की कोई चीज मत खाओ।

(५) बहुत अधिक पके हुए या कच्चे फल खाना ठीक नहीं। फल खाओ तो उन्हें "पोटैशियम परमैंगनेट" के जल में अच्छी तरह धो लो।

(६) हैजा होने पर "पोटैशियम परमैंगनेट" की गोली खाना लाभदायक है।

७ पेचिश—पेचिश होने पर, पेट में दर्द (मरोड़) होकर, पतले दस्त आने लगते हैं। दस्तों में आँव और खून मिला निकलता है। पेचिश कई प्रकार की होती है, परन्तु सबका कारण प्रायः निकृष्ट भोजन, गन्दे निवास-स्थान, बेहद थकान, ठंड लग जाना, बदहज़मी आदि ही होते हैं। पेचिश के कीटाणु भी, हैजे की तरह जल के द्वारा फैलते हैं। पेचिश से बचने के लिए खाने-पीने में लापरवाही न करना बहुत आवश्यक है। ठंड से बचना और शुद्ध हवा में यथासम्भव रहना चाहिए। साफ़ रहना भी बहुत ज़रूरी है। पेचिश हो जाये तो उसकी चिकित्सा किसी अच्छे डाक्टर से करानी ठीक है।

८. तपेदिक (क्षय-रोग)—यह रोग भी कीटाणुओं द्वारा होता है। इसके कीटाणु शरीर के किसी भी भाग—फेफड़ों, पाचन यन्त्र, हड्डियों, जोड़ों, गिल्टियों, पेट आदि—पर आक्रमण कर सकते हैं। इनमें से फेफड़ों से होनेवाला तपेदिक सबसे अधिक होता है। रोगी के कफ़ में कीटाणुओं की संख्या बेहद रहती है। वैज्ञानिकों ने पता चलाया है कि २४ घण्टों में कफ़ के द्वारा ४,००,००,००,००० कीटाणु तक निकल जाते हैं। कफ़ के प्रति घन सेन्टीमीटर में १० करोड़ कीटाणु तक हो सकते हैं। ये कीटाणु रोगी के खाँसने, बोलने, साँस लेने और थूकने से हवा में जा मिलते हैं। रोगी का थूक जब सूख जाता है, तब कीटाणु धूल के कणों में लगकर हवा में इधर-उधर घूमने लगते हैं और साँस के द्वारा अन्य पुरुषों के फेफड़ों में जा पहुँचते हैं। बिछौनों, पहनने के कपड़ों और रुमालों द्वारा तपेदिक का रोग ख़ूब फैलता है और मक्खियाँ भी इसके

कीटाणु फैलाने में सहायता करती हैं। रोगी के बर्तनों में खाना, तपेदिक-वाली गायों का दूध पीना और मक्खियों और धूल द्वारा अशुद्ध हुआ भोजन करना अपने मेदे में जान बूझकर इस रोग के कीटाणु पहुँचाना है। इससे आँतोंवाला तपेदिक हो जाता है।

कुछ समय हुआ, तपेदिक को लोग बिलकुल असाध्य रोग समझते थे, परन्तु इसके आरम्भ होते ही यदि ठीक चिकित्सा की जाय, तो यह अच्छा हो जाता है। यह रोग धीरे-धीरे शरीर पर अपना अधिकार जमाता है। कभी-कभी कई साल तक तपेदिक रहने के बाद रोगी की मृत्यु होती है। प्राय आरम्भिक दशा में रोगी अपने को स्वस्थ समझते रहते हैं और इसलिए रोग असाध्य होने पर ही उन्हें इसका पता चलता है।

इस रोग के मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं :—रोगी का वज़न घटने लगता है, उसका रङ्ग पीला पड़ जाता है और कभी-कभी उसके गाल लाल से हो जाते हैं। काम करने की शक्ति ऐसी कम हो जाती है कि रोगी शीघ्र ही थक जाता है। दोपहर के बाद हल्का बुख़ार आने लगता है और साँस लेने में कष्ट होता है। खाँसी, थूक में लाली, चिड़चिड़ा और निराश रहने का स्वभाव, बार-बार ज़ुकाम हो जाना भी इस रोग के चिह्न हैं।

भारतवर्ष में असंख्य मनुष्यों की मृत्यु तपेदिक के द्वारा होती है। हमारे देश में यह रोग कई कारणों से अधिक होता है। थोड़े स्थान में बहुत लोगों का रहना, मकान हवादार न होने, खाने की कमी, बुरा खाना, बेहद थकान, निवास स्थानों में नमी, नालियों और ज़मीन की गन्दगी, शराब की अधिकता, मूत्र-रोग, प्रकाशहीन जगह रहना, थूकने का स्वभाव, बाल-विवाह और पर्दे की प्रथा आदि अनेक बातें इस रोग के होने में सहायता देती हैं। चिन्तित या दु:खी रहना, बल से अधिक काम करना और नित्यप्रति रोगों के चगुल में फँसना—वास्तव में

कोई भी बात, जिससे शरीर की शक्ति हीन हो, तपेदिक के कीटाणुओं का देह में बसना सरल बनाती है।

तपेदिक से बचने का सबसे अच्छा उपाय अपने शरीर को स्वस्थ और बली बनाना है। सदा अच्छा और काफी भोजन करना चाहिए। हवादार और धूपवाली जगहों में रहना ठीक है। व्यायाम थोड़ा-बहुत प्रतिदिन करना अत्यन्त आवश्यक है। जहाँ तक हो सके तपेदिक के रोगी से बचना चाहिए। इस रोग की प्रारम्भिक दशा में स्वास्थ्य के नियमों का पूरा पालन किया जायगा तो यह रोग जाता रहेगा।

९. कर्णमूल—इस रोग में कान के नीचे पीड़ा होती है, थोड़ा-बहुत ज्वर आता है और कानों के नीचे और सामने की ओर सूजन हो जाती है। सूजन केवल एक ओर भी हो सकती है। पीड़ा के कारण भोजन चबाने और निगलने में बड़ा कष्ट होता है। यह रोग बहुधा ५ या ६ दिन तक रहता है और प्राय एक सप्ताह में बिलकुल जाता रहता है।

कर्णमूल रोग छूत से हो जाता है। इसलिए यदि किसी को यह रोग हो जाये तो उसे स्वस्थ मनुष्यों से अलग रखना उचित है। रोग की दशा में ठंड से बचना चाहिए। सूजन को बार-बार सेंकने से बड़ा लाभ होता है।

१० आँखें दुखना—आँखों में धूल या मैल पड़ जाने से, किसी प्रकार की नेत्र-सम्बन्धी छूत लगने से और बेहद सख्त धूप या लू में घूमने से प्राय नेत्र दुख आते हैं। नेत्र दुख आने पर फौरन उसकी उचित चिकित्सा करनी चाहिए, नहीं तो कष्ट बढ़ जाने का भय रहता है। इस रोग के आरम्भ होते ही नीचे लिखे उपचार करने लाभकर हैं। ये उपचार आँखें आने से पहले किये जायें, तो आँखें दुखें ही नहीं।

(१) आँखों को बोरिक ऐसिड के लोशन से दिन में दो तीन बार धोओ। लोशन बनाने के लिए एक प्याले जल में दो बड़े चम्मच बोरिक ऐसिड को मिला लो। जल बिलकुल साफ होना और लोशन को साफ बर्त्तन या शीशी में रखना आवश्यक है। आँखें धोने के लिए "आँख धोने का काँच या प्याला" (आई गिलास) बाजार से मिल सकता है, जो अत्यन्त उपयोगी है।

(२) बोरिक लोशन से धोने के पश्चात् एक एक बूँद आर्जिरोल लोशन (१० प्रतिशत) आँखों में डालना चाहिए।

(३) बोरिक एसिड या आर्जिरोल लोशन न मिल सके तो नमक के पानी से आँखें धोई जा सकती हैं। एक गिलास जल में आधा छोटा चम्मच साफ नमक को मिलाकर, जल को उबालना और फिर ठंडा कर लेना चाहिए। यह जल भी विशेष रूप से लाभकर है।

आँखें दुखने में यह सावधानी सदा रखनी चाहिए कि जो कोई दवा भी प्रयोग की जाय, बिलकुल स्वच्छ हो।

११. जुकाम—कदाचित् कोई भारतवासी ही ऐसा होगा, जिसे जुकाम ने कभी न कभी न सताया हो। साधारण तौर पर तो प्रत्येक मनुष्य को वर्ष में दो-तीन बार जुकाम हो ही जाता है। बहुत से लोग समझते है कि जुकाम का कारण ठंड लग जाना है। यह भूल है। जुकाम भी कीटाणुओं द्वारा होता है। इसके कीटाणु साँस के द्वारा हमारे शरीर में पहुँचते है। बहुधा घर में एक आदमी को जुकाम होता है, तो कुछ समय बाद सबको ही हो जाता है।

एक डाक्टर कहता है कि "जुकाम का रोकना कई बातों पर निर्भर है। इनमें से एक मुख्य बात यह है कि उचित भोजन और प्रतिदिन व्यायाम द्वारा शरीर को भली दशा में रक्खा जाय। उस मनुष्य को जो, प्रतिदिन उचित व्यायाम कर [illegible] परन्तु खाता खूब है, जुकाम अक्सर ब

और व्यायाम न करना ये दो साधारण बातें हैं, जिनसे जुकाम होता है। सम्पूर्ण शरीर का प्रतिदिन ठंडे जल में स्नान करना एक उत्तम उपाय है, जिससे शरीर ऐसी दशा में रहता है कि जुकाम नहीं लगता। उन लोगों से जिन्हें जुकाम है, न मिलो। वह स्थान जहाँ पर मनुष्य को जुकाम सुगमता से हो जाता है, वह कोठरी है जिसमें और भी लोग हैं और जिसके द्वार बन्द हैं और ट्रामकार में और ऐसे स्थानों में जहाँ पर साधारण सभाएँ होती हैं, जुकाम लग जाता है। यदि वह रोगी जिसे जुकाम है दूसरे मनुष्य के मुख पर छींक या खाँस दे तो उस दूसरे मनुष्य को जुकाम होने का भय है।"

"एक ही प्याले में जल पीने से और एक ही तौलिये को मुँह और हाथ पोंछने में उपयोग करने से यह रोग फैल सकता है। किसी का पिया हुआ हुक्का पीना ठीक नहीं। कम प्रकाशित और कम वायु संचारवाली कोठरी में रहना, धूल पूरित वायु में साँस लेना, ठण्ड में खुले रहना या भीगना, पसीने से गीले हुए कपड़ों की दशा में हवा में बैठना, कम सोना और अधिक परिश्रम करना—इन सब कारणों से जुकाम लगता है। उन लोगों को जो मुँह द्वारा साँस लेते हैं या जिनके दाँत सड़ गये हैं बहुधा बार-बार जुकाम होता रहता है।"

१२ हुकवर्म—यह एक छोटा कीड़ा होता है जिसका शरीर एक हुक या कटिया की भाँति मुड़ा होता है। इसी कारण इसको हुकवर्म कहा जाता है। यह शरीर के भीतर आँतों में पहुँचकर अपने मुँह द्वारा चिपक जाता है। इसके मुख के भीतर तीखे आँकड़े की भाँति अंग होते हैं जिससे वह आँतों को काटता है और रक्त को चूसता है। इस प्रकार जिस व्यक्ति के शरीर में यह पहुँच जाता है उसकी आँतों से यह बराबर रक्त चूसता रहता है।

रोग उत्पन्न होने का कारण—यह पाया गया है कि कीड़े आँतों में अंडे दिया करते हैं, जो रोगी के साथ उसके शरीर से बाहर

निकलते रहते है। जब तक यह अडे आँतों के भीतर रहते हैं तब तक कीडे नहीं बनते। किन्तु आँतो से बाहर निकलने पर एक या दो ही दिन में अडों के भीतर कीडे बन जाते हैं। प्रथम यह कीड़े अडों के भीतर रहते हैं, किन्तु जब वे और बड़े हो जाते हैं तब वह अडों को तोड़कर बाहर निकल आते हैं। जब धूल या मिट्टी के साथ यह कीडे मनुष्य के शरीर पर पहुँच जाते हैं तब वह तुरन्त चर्म को काटकर भीतर घुस जाते है। वहाँ से कीडे रक्त में पहुँचते हैं और तत्पश्चात् फिर आँतों में पहुँच जाते है।

इस कारण खेतो या दूसरे स्थानों में नगे पाँवों फिरना उचित नहीं। खेतो में लोग प्राय शौच के लिए जाया करते हैं। यदि उनके मल मे इन कीड़ों के अडे उपस्थित होते है तो वह वहाँ की मिट्टी में मिल जाते हैं और समय पाकर कीडे बनकर जो लोग भी वहाँ नगे पाँव फिरते है उनके पाँवों या टाँगो के चर्म को काटकर उनके शरीर में पहुँच जाते हैं और अन्त में आँतों में पहुँचकर रोग उत्पन्न कर देते है। बगाल और बिहार में चाय की खेती में काम करनेवालों को यह रोग बहुत होता है।

रोग के लक्षण—जिस व्यक्ति के शरीर मे यह कीडा प्रवेश करता है वह कुछ समय के पश्चात् दुर्बल हो जाता है। उसका रग पीला पड़ जाता है, क्योंकि शरीर में रक्त की कमी हो जाती है और भीतर की ओर मे पलक सफेद दिखाई देते है। मुँह पर हलकी सी सूजन आ जाती है। पलक भारी दिखाई देते हैं, पेट बढ़ जाता है, चित्त में उत्साह नहीं रहता और न काम करने की शक्ति ही रहती है। यदि उचित चिकित्सा न की जाय तो अन्त को रोगी की मृत्यु हो जाती है।

रोग से बचने के उपाय—इस बात को याद रखना चाहिए कि रोग सदा रोगी के मल ही के द्वारा फैलता है। इस कारण जहाँ-तहाँ

मल त्याग करने की मनाही होनी चाहिए। गाँवों में विशेषकर इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

नंगे पाँवों फिरना उचित नहीं। गन्दा जल पीने के साथ भी रोग के कीड़े आँतों में पहुँच सकते हैं, इसलिए सदा शुद्ध जल का नहाने और पीने तथा दूसरे कामों में भी प्रयोग करना उचित है। रहन के मकान, कुएँ या तालाब इत्यादि के चारों ओर कहीं भी मैला एकत्र न होने देना चाहिए। यदि रोग का सन्देह हो तो किसी डाक्टर द्वारा मल की परीक्षा करवा के रोग की पूर्ण चिकित्सा कराना आवश्यक है।

१३ दाद—यह एक छोटे से गोल वृत्त के रूप में प्रकट होता है। इसमें भी खुजली बहुत उठती है। इसके वृत्त के चारों ओर छोटी छोटी फुंसियों की एक पंक्ति सी बन जाती है। धीरे धीरे यह वृत्त बढ़ता जाता है। यह रोग सिर तथा चेहरे अथवा शरीर के और किसी अन्य भाग में भी हो सकता है। यह भी एक प्रकार का संक्रामक रोग है जो कीटों से उत्पन्न होता है। दाद के कीड़े खाज के कीटों से भिन्न होते हैं। यह रोग शीघ्रता से एक से दूसरे को लग जाता है और दाद को छूने तथा रोगी के पास की वायु को साँस के साथ लेने में तथा दादवाले के वस्त्र को छूने अथवा पहनने से भी उत्पन्न होता है।

निस्संक्रमण और निस्संक्रामक द्रव्य—जो कुछ रोग मनुष्य को ग्रसित करते हैं, उनमें से सबसे अधिक भयङ्कर संक्रामक रोग होते हैं। तुम पढ़ चुके हो कि संक्रामक रोग भिन्न भिन्न प्रकार के कीटाणुओं द्वारा फैलते हैं। इन कीटाणुओं के उत्पन्न होने के लिए और उनके पालन-पोषण के लिए ऐसे स्थान बहुत अनुकूल होते हैं, जहाँ दूषित वायु, गन्दा जल, सड़ा गला भोजन, कनवार और मैला इत्यादि पाये जाते हैं। जिस स्थान की वायु शुद्ध होती है और जहाँ सूर्य की गर्मी उचित मात्रा में पहुँचती है, वहाँ रोग के कीटाणु अपना घर नहीं बना सकते।

इसलिए कीटाणुओं से बचने के लिए अपने घरों में और उनके चारों ओर खूब सफ़ाई रखनी चाहिए।

जब किसी प्रकार प्रकृति के नियमों का उल्लंघन होता है, तब कीटाणु अधिक मात्रा मे उत्पन्न हो जाते हैं और सक्रामक रोग ज़ोर से फैलते हैं। ऐसे समय मे सफ़ाई के लिए कुछ विशेष उपचार करने पड़ते हैं। कुछ द्रव्यों की सहायता से इस बात का प्रबन्ध किया जाता है कि रोग के कीटाणुओं का नाश किया जाय। रोग के कीटाणु के नाश करने को जो उपाय काम में लाये जाते हैं, उन्हे निस्सक्रमण कहते हैं। जिन पदार्थों को काम में लाया जाता है, उन्हें निस्सक्रामक द्रव्य कहते हैं।

कुछ निस्सक्रामक उपाय ऐसे हैं, जिनका प्रबन्ध प्रकृति ने स्वयं किया है। जैसे स्वच्छ वायु और धूप। स्वच्छ वायु में कीटाणु अपना घर नहीं बना सकते। जहाँ सूर्य का प्रकाश और तेज धूप पडती है, वहाँ के कीटाणु मर जाते हैं। धूप में सूखने से हैजे के कीटाणु तीन-चार घंटे में नष्ट हो जाते हैं। मोतीझरा के कीटाणु घंटे अथवा डेढ़ घंटे में ही समाप्त हो जाते हैं। पहनने और ओढ़ने बिछाने के वस्त्र और कमरे का अन्य सामान कभी-कभी धूप में रख देने से जो कुछ कीटाणु उन पर आ जाते हैं, उनका नाश हो जाता है। कमरे की खिड़कियाँ और दरवाजे खोलकर स्वच्छ हवा का प्रवेश खूब होने देना चाहिए। आँधी और लू के चलने मे भी बहुत लाभ होता है। इनके चलने से कीटाणु उडाकर मार डाले जाते हैं। गर्मियों में प्राय लू के चलने से चेचक इत्यादि के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

सक्रामक रोग के कीटाणुओं का नाश करने के लिए बहुत-से कृत्रिम उपाय भी निकाले गये हैं। इनमें से कुछ भौतिक हैं और कुछ रासायनिक।

यन्त्रों-द्वारा बिस्तरों में भाप पहुँचाई जाती है। भाप किसी प्रकार वस्त्रों को हानि नहीं पहुँचाती।

रासायनिक—रासायनिक पदार्थ कुछ वायुरूपी, कुछ द्रवरूपी और कुछ ठोसरूपी होते हैं। बहुत-से पदार्थ काम में लाये जाते हैं, परन्तु हम यहाँ केवल उन्हीं का वर्णन करेंगे, जो बहुत उपयोगी समझे जाते हैं और सस्ते पड़ते हैं।

(१) गन्धक का धुआँ—गन्धक को हवा में जलाने से एक धुआँ उत्पन्न होता है, जो कीटाणुओं को नष्ट कर देता है। जिस कमरे का निस्संक्रमण करना होता है, उसमें एक तश्तरी में गन्धक का चूरा रखकर उसे जला देते हैं। अगर कमरे की वस्तुओं को तनिक गीला कर दिया जाय तो गन्धक का धुआँ अच्छी तरह से काम करेगा।

(२) फारमेल डिहाइड—यह पदार्थ वायु-रूप में और द्रव-रूप में भी काम में लाया जाता है। द्रव-रूप में इसे फार्मलीन कहते हैं। एक पाइंट फार्मलीन को दस आउंस परमैंगनेट अथवा लाल दवाई पर डालने से जो वायु निकलेगी वह करीब दो हजार घन फुट स्थान को स्वच्छ कर डालेगी। अगर कमरे में कुछ तरी होगी और थोड़ी-सी गर्मी तो फारमेल डिहाइड जल्दी असर करेगा।

(३) क्लोरीन—क्लोरीन बहुत तेज़ निस्संक्रामक है, परन्तु इसको सोच-समझकर काम में लाना चाहिए, क्योंकि इससे वस्तुओं के रंग इत्यादि बहुत जल्द ख़राब हो जाते हैं।

(४) कार्बोलिक एसिड—यह द्रव पदार्थ है और कुछ महँगा मिलता है। यह कीटाणुओं का नाश बड़ी जल्दी करता है, परन्तु किञ्चित् ज़हरीला है। इसलिए इसका प्रयोग भी सोच-समझकर किया जाता है।

(५) फार्मलीन—यह जल में घुला हुआ फारमेल डिहाइड होता है। इसकी दुर्गन्ध बहुत तेज होती है। यह सस्ता पड़ता है और

कीटाणुओं को जल्दी मारता है। लोहे की वस्तुएँ इससे कुछ खराब हो जाती हैं।

(६) फिनाइल—यह द्रव पदार्थ जल में घोलकर साधारणतया नाली पनालों में डाला जाता है। यह सस्ता पड़ता है, परन्तु अधिक तेज़ नहीं होता और इससे कीटाणु धीरे धीरे मरते हैं।

(७) चूना—चूना एक बहुत सस्ता निस्सक्रामक है। ताजे फुँके हुए चूने से सफेदी की जाती है। तुम पढ़ चुके हो कि कमरों में चूने की सफेदी करने से कीटाणुओं का नाश हो जाता है।

बीमारी समाप्त होने पर अथवा जिस कमरे में बीमार मनुष्य रहा हो, उसकी चूने से खूब सफ़ाई करा देनी चाहिए।

(८) परमेंगनेट अथवा लाल दवाई—जल के निस्संक्रमण के लिए यह बड़ा उत्तम पदार्थ है। यह प्राय कुओं के जल को स्वच्छ करने के लिए उनमें डाला जाता है। जिन दिनों में हैजे की बीमारी फैली हो, तरकारी और फलों को परमेंगनेट घुले हुए जल से धो लेना चाहिए।

जिन दिनों में बीमारी फैली हुई हो, निस्सक्रमण पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(१) कमरों की वायु का निस्सक्रमण—कमरे की वायु स्वच्छ करने लिए वेंटीलेशन का उचित प्रबन्ध होना चाहिए। कोयला कमरे में रखने से नाली से निकली हुई गन्दी वायु उसमें सोख जाती है। गन्धक जलाने और अन्य प्रयोगों से हवा कीटाणुओं से स्वच्छ हो जाती है।

(२) कपड़े-बिस्तरे तथा दरी आदि का निस्संक्रमण—साधारणतया धूप में रखकर ये वस्तुएँ साफ की जाती हैं। रोगी के कपड़े इत्यादि उबालकर साफ किये जाते हैं। बिस्तरे में भाप पप करके उसे स्वच्छ किया जाता है। कभी-कभी कुछ दवाइयाँ भी उन पर

कमरे का निस्संक्रमण

छिड़क दी जाती हैं। रोगी के बर्तन अलग रक्खे जाते हैं और वे उबालकर स्वच्छ किये जाते हैं। परमेंगनेट के जल से उनको धो दिया जाता है।

(३) सेवा करनेवाले के हाथों की सफ़ाई—जिन हाथों से रोगी के वस्त्र इत्यादि छूना पड़ता है, उनका निस्संक्रमण भी आवश्यक है। हाथों को परमेंगनेट के जल अथवा हलके कार्बोलिक लोशन से धो डालना चाहिए।

(४) रोगी के शरीर से निकला हुआ मल—थूक, मल, पेशाब इत्यादि की सफ़ाई का यदि उचित प्रबन्ध न किया जाय तो बीमारी के फैलने की अधिक सम्भावना है। जिन बर्तनों में यह मल गिरता हो, उनमें थोड़ा-सा कार्बोलिक एसिड अथवा हरा कसीस डाल देना चाहिए। फिर चूना मिलवाकर मल को या तो जलवा देना चाहिए या धरती में खूब गहरा गड़वा देना चाहिए।

(५) रोगी के कमरे से चले जाने के उपरान्त कमरे की दीवार और सारी वस्तुओं का निस्संक्रमण उचित रीति से होना चाहिए। पब्लिक हेल्थ-विभाग के लोगों को बुलाकर सफ़ाई करा देनी चाहिए।

प्रश्न

(१) मलेरिया कैसे फैलता है? इस रोग के लक्षण बताओ।

(२) मच्छर का जीवन वृत्तांत बताओ।

(३) मलेरिया से बचने के उपाय विस्तारपूर्वक बताओ।

(४) हुकवर्म कैसे पैदा होता है?

(५) हुकवर्म रोग के लक्षण बताओ। इस रोग से बचने के उपाय बताओ।

(६) प्लेग क्या है ? इससे कैसे बचना चाहिए।

(७) छूत की बीमारियाँ बताओ। उनके लक्षण भी लिखो।

(८) निस्संक्रमण किसे कहते हैं ?

(९) निस्संक्रमण की आवश्यकता कब अधिक पड़ती है ?

(१०) निस्संक्रमण के कौन कौन-से भौतिक उपाय उत्तम हैं ?

(११) पहनने और बिछाने के कपड़ों का निस्संक्रमण किस प्रकार करना चाहिए ?

(१२) रोगी की सेवा करनेवाले को अपने को रोग से बचाने के लिए क्या-क्या उपाय करने चाहिए ?

अध्याय १२

फोड़े-फुंसी तथा असाधारण घटनाएँ

१ फोड़े-फुंसी—तुम पढ़ चुके हो कि मलिनता और दु
स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। साधारणतया देखा जाता है कि फ
फुंसियाँ उन्हीं लोगों को निकलती हैं जो अस्वच्छ रहते हैं।

उपर्युक्त दशाओं के अतिरिक्त कभी यह भी होता है कि एक फ
की पीप या मवाद दूसरे अङ्ग में लगकर उस अंग को अपने समा
कर देता है और पीप के कीटाणु स्वस्थ खाल में बैठकर उसको पक
देते हैं।

इन बहिरंग कारणों के सिवा कभी कभी रक्त के विकार के कारण भी
फोड़े-फुंसी निकलते हैं। इसका कारण रक्त में शक्कर की प्रचुरता
हुआ करती है। जो लोग मिठाई अधिक खाते हैं उन्हें यह व्याधि सताती
है। बच्चे मिठाई अधिक खाते हैं। उनके फुंसियाँ निकला करती हैं।
फुंसियाँ कई प्रकार की होती हैं।

२ बरसाती दाने—वर्षा काल में रक्त में उष्णता के कारण उद्वेलन
उत्पन्न होता है तो बरसाती फुंसियाँ उन लोगों के निकलती हैं जो मिठाई
का सेवन अधिक करते हैं।

३ मच्छर दाने—मच्छर-दाने भी अधिकांश वर्षा-ऋतु की
सन्ध्यावधि में रात के समय मच्छर व डाँस के काटने से उत्पन्न होते हैं
और कभी कभी खुजलाने से बढ़कर बड़ी फुंसियों का रूप धारण कर लेते
हैं। इन दानों में जलन बहुत होती है। जिस शरीरांग पर वह सतापदायी
जीव काटते हैं वह सूज जाता है।

फोड़ा—जब किसी स्थान पर फोडा निकलता है तब प्रथम उस स्थल पर पीड़ा उत्पन्न होती है जो दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है। त्वचा में कठोरता हो जाती है। और ज्वर जान पडता है। ज्यो-ज्यों दिन व्यतीत होते हैं प्रत्येक बात मे अधिकता होती रहती है और आस-पास का अश सूज जाता है। फोड़े के स्थान में जलन और प्रदाह प्रकट हो जाती है और ऊपर से हाथ रखने से त्वचा में ताप मालूम होता है। जब रक्त अधिक गाढा होकर कठोर हो जाता है तब उसमें पीप पडनी आरम्भ हो जाती है। उस समय कष्ट और भी बढ जाता है। फोड़े में टीस और पैदा हो जाती है। यदि तत्क्षण फोड़े को चिरवा दिया जाय तब तो तुरन्त आराम मिलता है नहीं तो कुछ समय के बाद फोड़ा फूट जाता है और मवाद बहने लगता है।

फुंसियो पर बँगला पान भी बाँधते हैं और यूरिक एसिड का सेक देते है।

फोडा बिठाने की विधियाँ—जब फोडा निकलनेवाला होता है, तब त्वचा में उभार और पीडा होने लगती है। उस पर बहुधा ऐसी औषधियाँ लगाई जाती हैं, जिससे विषैले द्रव्य लय हो जायें और फोड़ा बैठ जाये, परन्तु यह सब उपाय उसी समय तक लाभ करते हैं, जब तक फोड़े में मवाद न पडा हो और फोडा अभी पहली अवस्था में हो।

फोड़ों को प्रात सन्ध्या दोनों समय धोना चाहिए। घाव धोने के लिए निम्नलिखित मिश्रणो का सेवन लाभकारी है :—घाव पर यूरिक एसिड छिडककर मरहम का फाहा लगा दो। नीम की पत्ती को उबालकर उसके जल मे घाव को धोओ। नीम की लकड़ी को घिसकर उसमें कर्पूर, मुर्दासंग और जहरमोहरा, समभाग नारियल अथवा तिल के तैल में मिलाकर मरहम के सदृश लगाना घाव को लाभकारी है। यदि किसी व्यक्ति के ऊपर फोड़े बारम्बार प्रकोप करते हों, तो रक्त को शुद्ध करने के

लिए चतुर्थांश ग्रेन कैलीसियम सलफ़ाइड का प्रयोग दिन में तीन बार करना चाहिए। रक्त शोधक औषधियाँ और भी हैं, उनका सेवन किया जा सकता है। सुलफेट आफ आयर्न (अयस गन्धक) ३६ ग्रेन, सुलफेट ऑफ़मैगनीसियन (मगनीश गन्ध) अर्द्ध औंस, सुलफ़ूरिक एसिड (गन्धकिकाम्ल) जल में घुली हुई दो ड्राम और कम्पाउण्ड टिंचर ऑफ़ कार्डमस्स (एलाक्क यौगिक टिंचर) तीन ड्राम इन चारों द्रव्यों में जल इस अनुमान से मिलाओ कि ६ औंस मिश्रण तैयार हो जाये। नित्य बासी मुँह एक गिलास जल में एक चमचा अर्क मिलाकर पी लो।

गर्मी के दानों की चिकित्सा—जो लोग दोनों समय शरीर को साबुन से मलकर नहाया करते हैं, वह अँधौरी से सुरक्षित रहते हैं। अँधौरी में मुलतानी मिट्टी जल में भिगोकर देह पर मलनी चाहिए और शुष्क होने पर नहा डालना चाहिए। दाने दो-चार दिन में जाते रहते हैं अथवा पहले साबुन मलकर भली भाँति नहाओ फिर तौलिए से देह को खूब रगड़कर साफ करो। इसके बाद बूरिक एसिड एक अंश, जिंक औग्जाइड दो अंश और निशास्ता ४ अंश मिलाकर काँख और गर्दन में भली भाँति मलो।

जल जाना—कभी-कभी जलते हुए तवे पर हाथ पड़ जाने से या जलती हुई वस्तु उठा लेने से मनुष्य जल जाता है। इस दशा में जला हुआ अंश लाल हो जाता है और उसमें जलन होने लगती है। दो-एक दिन के उपरान्त स्वयमेव अच्छा हो जाता है। यदि कपड़े में आग लग जाय तो कपड़े को चीरकर शरीर से उतार देना चाहिए और भूमि पर लेटना चाहिए। इससे ज्वालाएँ भड़कने नहीं पातीं और आग शान्त हो जाती हैं। ऐसी दशा में आहत के कपड़ों को सावधानी से उतारकर जले हुए भाग की मरहम पट्टी कर दो जिससे वायु न लगे। मरहम-पट्टी कर चुकने के पश्चात् रोगी को विश्राम से लिटा दो। यदि आबले

पड़ गये हों तो उनको खोदने तथा जल निकालने का प्रयत्न कदापि न करे।

यदि मुख जल गया हो तो चेहरे के नाप का एक रुई के पहल का चेहरा बना लो जिसमें आँख, नाक और मुँह के छिद्र बने हों अथवा उस माप का कपड़े का चेहरा बना लो।

लोग जले हुए स्थान पर तैल मलते हैं, परन्तु यह हानिकारक है। तैल कदापि न लगाना चाहिए। तैल से घाव पक जाता है और मवाद पड़ जाता है। अलबत्ता, यदि कोई दवा न मिल सके तो नारियल के तेल को चूने के निथारे पानी में फेंटकर लगा सकते हो। इससे घाव में शीतलता पड़ेगी और घाव के पूरने में भी सहायता मिलेगी। कच्ची शक्कर और नमक सम भाग लेकर चूने के निथारे हुए पानी में घोलकर लगाना भी लाभदायक है। यूरिक ऐसिड को उसकी द्विगुण मात्रा भर वैसलीन में मिलाकर फाहों पर लगाकर घावों पर उपयोग करना जले हुए घावों के लिए लाभदायक मरहम है। यदि इनमें से कोई भी वस्तु समय पर प्रस्तुत न हो तो थोड़ा-सा सोडा लेकर जल में डाल दो और कुछ टुकड़े स्वच्छ कपड़े के जल में डालकर उबाल लो। पश्चात् पात्र को आग से उतारकर ठंडा करो। जब तापमान शीतोष्ण रह जाये तब खण्डों को जल से निकाल लो और फाहे बनाकर घाव पर फैला दो। फाहों के ऊपर स्वच्छ रुई लगाकर रस्सियों से बाँध दो।

४. बेहोशी—मनुष्य कई कारणों से बेहोश हो सकता है। शरीर से अधिक रक्त निकल जाने से या किसी अंग में चोट लगने से या ख़राब हवा में साँस लेने से या दूषित पदार्थ के खाने से अथवा मस्तिष्क पर विशेष प्रभाव से मनुष्य बेहोश हो जाता है। बेहोशी का सम्बन्ध मस्तिष्क से है। जब मस्तिष्क को अधिक रक्त नहीं पहुँचता तब वह

अपना काम ठीक नहीं कर सकता और मनुष्य बेहोश होने लगता है। अधिक काम करने से अथवा अधिक चिन्तित रहने से मस्तिष्क थक जाता है। ऐसी दशा में मस्तिष्क में जो हानिकारक पदार्थ जमा हो जाते हैं उनको दूर करने के लिए रक्त अधिक मात्रा में वहाँ नहीं पहुँचता और मूर्च्छा आने लगती है।

मूर्च्छना के पहले मनुष्य को चक्कर आता है। शरीर उसके अधिकार के बाहर हो जाता है। चेहरा पीला पड़ जाता है और तमाम शरीर पर पसीना आता है। बेहोशी दूर करने के लिए निम्नलिखित बातें काम में लाओ।

१—रोगी के आस-पास लोगों की भीड़ मत होने दो। इस प्रकार साफ हवा आने दो।

२—रोगी को खुली और साफ हवा में ले जाकर लिटा दो। सिर कुछ नीचे रहे और पैर कुछ उठे रहें। ऐसा करने से साँस लेने में आसानी होती है।

३—रोगी के कपड़े खोल दो ताकि साँस लेने में आसानी हो।

४—रोगी के चेहरा और माथे पर ठंडे जल के छींटे दो और उसको पखा करो।

५—कोई होश में लाने की दवा रोगी को सुँघाओ। चूने में नौसादर मिलाने से एक गैस बनती है जिसे अमूनिया कहते हैं। मरीज को अमूनिया सुँघाओ।

६—होश आ जाने पर रोगी को शीत से बचाओ। उसके शरीर का पसीना पोंछकर उसको मामूली गर्म दूध या चाय पिलाना चाहिए।

५ नकसीर फूटना—बहुधा गर्मी के दिनों में नाक से अपने आप ही रक्त निकलने लगता है। इसको नकसीर फूटना कहते हैं।

यह कोई ख़ास रोग नहीं है, परन्तु इसे शीघ्र रोक देना चाहिए, क्योंकि यदि शरीर में से अधिक रक्त निकल जायगा तो शरीर कमज़ोर हो जायगा।

नकसीर फूटने पर नाक में उँगली न देनी चाहिए, न नाक को साफ़ ही करना चाहिए। बल्कि रोगी को ऐसे स्थान पर बिठा देना चाहिए जहाँ उसको साफ़ हवा मिल सके। उसका सिर थोड़ा पीछे झुका देना चाहिए। उसके बाद सिर और रीढ़ पर बर्फ़ और सर्द जल रखना चाहिए।

६ **जल में डूबना**—जब मनुष्य जल में डूबता है तब उसकी साँस रुक जाती है। यदि उसे जल से जल्द न निकाला जाये तो उसके पेट और फेफड़ों में जल भरने लगता है और वह बेहोश हो जाता है।

जल में जो मनुष्य डूब गया है उसे बाहर निकालकर सिर के बल लटका दो। इस तरकीब से उसके पेट का बहुत-सा जल निकल जायेगा। इसके बाद उसके कपड़े उतार दो और साफ़ हवा में ले जाओ ताकि आसानी से साँस ले सके।

यदि रोगी सरलता से साँस नहीं ले सकता तो कोई ढंग सोचना चाहिए जिससे वह साँस ले सके। आसान तरकीब यह है कि उसकी नाक के सामने सूँघने की दवाई की शीशी रक्खी जाये। यदि फिर साँस ठीक नहीं आती है तो और दूसरी तरकीब करनी चाहिए।

रोगी को खाट पर लिटा दो और उसका सिरहाना ऊँचा कर दो। रोगी के सिर और पीठ के नीचे मोटे और गदीले तकिये रख दो। फिर उसकी जीभ बाहर खींचो। यदि जीभ बाहर निकली न रह सके तो उसको किसी तरह धागा से बाँधकर बाहर निकाले रक्खो। उसके बाद हाथों को पकड़कर ऊपर की तरफ़ खींचो। हाथ खींचने से पसलियाँ ऊपर को उठती हैं और हवा भीतर जाती है। इसके बाद रोगी के हाथों

को एक तेज़ चाकू से उड़ा दो और उससे कुछ दूर ऊपर के भाग को मजबूत धागे से कसकर बाँध दो ताकि खून का दौरा रुक जाये और ज़हर दिल तक न पहुँच सके। इसके साथ शरीर में लाल दवा भर दो। साँप के काटने पर मनुष्य को नींद बहुत आती है और नींद में विष शरीर में बहुत फैलता है। अतः रोगी को सोने न देना चाहिए।

१०. अन्य विषैले जानवरों का काटना—बिच्छू, बर्र तथा मक्खी के काटने पर बहुत अधिक जलन होती है। कभी-कभी कोई विषैला जानवर काट लेता मनुष्य है तो बेहोश तक हो जाता है। विषैले जानवरों के काटने पर अमोनिया या सिरका लगा देना चाहिए।

प्रश्न

(१) फोड़े-फुंसी का इलाज बताओ। वे क्यों होते हैं?
(२) आदमी बेहोश क्यों हो जाता है?
(३) बेहोश आदमी को होश में लाने के लिए तुम क्या करोगी?
(४) नकसीर फूटना किसे कहते हैं?
(५) यदि नाक से रक्त निकल रहा है तो तुम क्या करोगी?
(६) जल में डूबने पर आदमी क्यों बेहोश हो जाता है?
(७) जल से निकाले हुए बेहोश आदमी को किस तरह होश में लाओगी?
(८) डूबने से बचाये हुए मनुष्य के साँस लेने में किस प्रकार मदद दोगी?
(९) लू लगना किसे कहते हैं?
(१०) लू लगने पर तुम्हें क्या चिकित्सा करनी चाहि[illegible]

(११) कपड़ों में आग लग जाय तो तुमको क्या करना चाहिए ?

(१२) जले हुए शरीर की चिकित्सा कैसे करोगी ?

(१३) तेज़ाब से जलने की क्या चिकित्सा है ?

(१४) कोई मनुष्य बिजली के तार से चिपक जाय तो उसको किस प्रकार अलग करोगी ?

अध्याय १३

क्षत की प्रारम्भिक चिकित्सा

१—अस्थि के आघात

प्रारम्भिक चिकित्सा की आवश्यकता—बहुधा शारीरिक विद्या के स्वल्प ज्ञान से दुस्साध्य कार्य सरल हो जाते हैं। मान लो एक व्यक्ति जंगल में जा रहा है। दैवात् उसे ठोकर लग जाती है, वह गिर पड़ता है और उसका हाथ उखड़ जाता है अथवा पाँव की हड्डी टूट जाती है। उसके साथ एक व्यक्ति और भी है, परन्तु वह शारीरिक विद्या में निपट अनभिज्ञ है। अस्पताल या औषधालय आस-पास कहीं नहीं, न कोई जर्राह ही है जिससे चिकित्सा कराई जाय। परन्तु यदि आहत-जन का साथी प्रारम्भिक चिकित्सा का जाननेवाला होता तो फिर कोई कठिनाई न थी। साधारण कार्य वह स्वयं कर लेता और आहत को सुगमतापूर्वक अस्पताल पहुँचा देता।

अत तात्कालिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए प्रारम्भिक चिकित्सा के नियमों का जानना मनुष्य-मात्र के लिए आवश्यक है।

नर कंकाल या शरीर ढाँचे की चोट—तुमने पढ़ लिया है कि मनुष्य के शरीर का ढाँचा अनेक हड्डियों से बना है जो परस्पर एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। यदि इन पर कठोर आघात पहुँचता है, तो दो परिणाम होते हैं, या हड्डी जोड़ पर से उतर जाती है और या खंडित हो जाती है। दोनों दशाओं में केवल यही उपाय संभव है कि हड्डी को ठीक करके बाँध दिया जाये और आहत को किंचित् काल विश्राम

दिया जाये। प्रकृति स्वयं अपना उपाय कर लेगी और हड्डी स्वयं जुड जायेगी। परन्तु यदि तत्काल ही यत्न न किया गया तो प्रकृति किसी प्रकार की प्रतीक्षा नहीं कर सकती। प्रकृति की प्रेरणा से भग्न दशा ही में हड्डी का जुडना आरम्भ हो जायेगा। परन्तु उसमे क्षत की पीडा में कोई कमी नहीं होगी, प्रत्युत बढ जायेगी। यदि कहीं हड्डी नवीन स्थान में संयुक्त हो गई तो उसको वहाँ से उखाडना और पहली दशा मे बैठाना और भी अधिक दुखदायी और कष्टकर हो जायगा।

अस्थि-भंजन—हड्डी के टूटने के अनेक कारण हुआ करते है। इनमें ५ मुख्य हैं। (१) हड्डी पर बाहरी चोट पहुँचे, या आघात पडने से अथवा स्वय गिर पडने से, किसी अग की हड्डी टूट जाये। (२) किसी एक स्थान पर चोट लगने से किसी अन्य शरीराङ्ग पर आघात पडे और वहाँ की हड्डी टूट जाय। कभी हाथ के बल गिर पडने पर हथेली की हड्डी टूट जाती है अथवा पाँव के बल कूद पडने से गर्दन की हड्डी टूट जाती है। (३) किसी पेशी या ओले (मछली) के आकस्मिक और असाधारण खिंचाव से हड्डी पर आघात पहुँच जाता है अस्थि खंडित हो जाती है, यथा—जानु के ओले के खिंचाव से चिपनी का अस्थि-भंजन हो जाना। (४) वृद्धावस्था के कारण हड्डियाँ बलहीन हो जाती है। उनकी लचक कम हो जाती है और खनिज पदार्थ उनमें अधिक हो जाते है। इसका परिणाम यह होता है कि हड्डियाँ भुरभुरी हो जाती है और थोडी चोट से टूट जाती है। इसके विपरीत बच्चों की हड्डी पर यदि कोई प्रहार पडता है तो वह फैल जाती है और उनमें सूक्ष्म दरार पड जाती है, परन्तु टूटती नहीं। (५) विशेष रोग के कारण हड्डी टेढी पड जाती और साधारण आघात से टूट जाती है।

अस्थि भंग के रूप—हड्डी लम्बाई और चौडाई में चार रूपों में टूटा करती है। एक रूप वह है जिसमें बीच से टूट जाये, ऊपर की खाल पूर्ववत् रहे और किसी अन्य अंग को किसी प्रकार की चोट न पहुँचे।

इस दशा में अधिक जोखिम नहीं होती, क्योंकि ऐसी दशा में हड्डी के दोनों खंडों को बैठाकर बाँध देने से हड्डी जुड़ जाती है। दूसरा रूप वह है जिसमें हड्डी इस प्रकार टूटे कि उसके साथ उसके ऊपर के ओते और खाल पर भी आघात पड़े। ऐसी दशा में दो आकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, या तो हड्डी का टूटा हुआ सिरा माँस को फोड़कर बाहर निकल आता है। अथवा इसी दशा में भीतर बैठ जाता है। अस्थि का बाहर निकल आना इतना आतङ्कजनक नहीं जितना हड्डी का भीतर चला जाना विशेषत वक्ष अथवा मस्तिष्क की हड्डियों का, क्योंकि ऐसी दशा में हृदय, फेफड़े, यकृत अथवा मस्तिष्क में घाव हो गया तो साघातिक दशाएँ प्रकट हो जावँगी और क्षति की पूर्ति दुस्तर ही नहीं वरन् असम्भव हो जायगी। तीसरा रूप यह है जिसमें हड्डी के टूटने पर उसका चूर्ण या किरचें हो जाती हैं, परन्तु खाल के ऊपर से ज्ञात नहीं हो पाती यह भी चिन्ताजनक दशा है, क्योंकि इन किरचों के कारण घाव बढ़कर मवाद बहने लगता है और आस पास का खंड भीतर ही भीतर सड़ जाता है। चौथा रूप यह है जिसमें अस्थि केवल दब जाय अथवा बीच से चिर जाय।

अस्थि-भंग के लक्षण—कुछ स्थानों की उद्धित हड्डी ऊपर से दिखाई पड़ने लगती है अथवा उँगलियों से टटोलकर जानी जा सकती है। यदि इन दोनों प्रकारों से उसका ज्ञान न हो सके तो निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए —

(१) जब किसी अंग की हड्डी टूट जाती है तब उसमें बहुत कठिन पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। (२) जिस स्थान पर हड्डी टूटती है वह अंश सूज जाता है। (३) हड्डी के टूट जाने से अंग का नीचे का भाग झूलने लगता है और बेकाम हो जाता है। (४) जिस अंग की हड्डी टूट जाती है उसकी तुलना यदि अन्य स्वस्थ अंगों से की जाय तो वह कुरूप और बेडौल लगता है। (५) टूटी हुई हड्डी में एक असाधारण प्रकार

की गति उत्पन्न हो जाती है। (६) टूटी हुई हड्डी को यदि हिलाया जाय तो टूटे हुए खंडों के परस्पर संघर्ष से उनमें कडकडाहट का शब्द सुन पडता है। (७) हड्डी टूटने के २४ घंटे पश्चात् सूक्ष्म ज्वर चढ जाता है जिसकी अवधि एक या दो दिवस है।

अस्थि का जुड़ जाना—ध्यान देने से ज्ञात होगा कि प्रकृति ने जहाँ हमको उत्पन्न किया है, वहाँ साथ ही हमारे लालन-पालन और सुरक्षा-शुश्रूषा का भी प्रबन्ध किया है। इसलिए जब भी अस्थि-भञ्जन होता है तब प्रकृति की प्रेरणा से अस्थि-संयोजन या हड्डी के जोडने के लिए एक आस्थिक पदार्थ हड्डी के खंडित अंशों से रिसने लगता है, जोड के किनारों पर जमकर जोड़ के चारों ओर घेरा बना लेता है और चार से छः सप्ताह के भीतर ही भीतर जोड़ को सुदृढ़ कर देता है। यदि हड्डी का जोड शरीर के अधोवर्ती अंश में हुआ तो दो सप्ताह और अधिक लग जाते हैं।

भग्न अस्थि को सुधार लेने के उपाय—टूटी हुई हड्डी को ठीक करने से पहले रोगी की दशा को जाँचना चाहिए। यदि घाव से रक्त स्रवता हो तो पहले रक्त रोकने के उपाय करने चाहिए। रक्त-रोधन के उपायों का वर्णन आगे है। जब तक अस्थि पर पट्टी न बाँध दी जाय, रोगी को उसके स्थान से हिलने-डुलने न देना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने में अधिक कष्ट और हानि पहुँच जाने की आशंका रहती है।

यदि अस्थि के टूटने में उलझन पड गई हो और जोड़ सरलता से न बैठ सकता हो तो पहले आहत मनुष्य को मूर्च्छाकारी औषधि सुँघा करके अचेत कर देना चाहिए। ऐसा करने से शरीर शिथिल हो जाता है, जोड ढीले पड जाते हैं और हड्डी अनायास अपने स्थान पर बैठ जाती है।

यदि चोट के कारण मनुष्य अचेत हो गया हो तो उसे चैतन्य में

लाने के लिए उपाय करना चाहिए। क्षत के पास से भीड़ हटा देनी चाहिए। वस्त्रों के बटन खोलकर छाती खोल देनी चाहिए। मुख पर पानी के छींटे देने चाहिए और पंखा बड़े वेग से झलना चाहिए। जब क्षत पुरुष होश में आ जावे तब उसके शरीर की ओर ध्यान देना चाहिए।

क्षत को तत्काल उष्ण वस्त्र ओढ़ा देना चाहिए। जिससे देह उष्ण रहे, अंग कोमल रहें और चोट में यन्त्रणा न हो। शरीर में ठण्डी वायु लगने से पीड़ा और कष्ट बढ़ जाता है। क्षत का मुख-मात्र खुला रखना चाहिए जिससे शुद्ध वायु पेट में जा सके। इन बातों के पश्चात् भग्न अस्थि और उसके बन्धन की ओर ध्यान देना चाहिए।

क्षत को इस प्रकार सीधा लिटा दो, जिससे शरीर शिथिल रहे। खण्डित हड्डी को यथा स्थान करने के लिए एक हाथ से टूटी हुई हड्डी का ऊपरी भाग दृढ़ता से पकड़ लो और दूसरे हाथ से हड्डी का निचला भाग धीरे से नीचे खींचो ताकि दोनों खण्ड ठीक बैठ जायँ।

हड्डी को सुधार करके उस स्थान के मांस को धीरे-धीरे ठीक कर देना चाहिए, परन्तु घायल अंग इस समय में निरन्तर तना रहना चाहिए जिससे हड्डी-स्थान भ्रष्ट न हो जाये।

जब हड्डी और मांस अपने ठीक स्थान पर आ जायें तो घायल अंग के योग्य खपच्च लगाकर पट्टी बाँध देनी चाहिए। यदि खपच्चें न मिल सकें तो लाठी, लकड़ी के टुकड़े, देशी जूते, छतरी, चौपर्ते हुए समाचारपत्र इत्यादि उपयोग में लाये जा सकते हैं।

अस्थि विच्छेद या हड्डी का उखड़ना—हड्डी के आघात की दूसरी दशा यह होती है कि उसका सिरा अपने वास्तविक स्थान से हटकर नीचे या ऊपर चला जाता है।

२—खपच्चों और पट्टियों के प्रकार और उनके बन्धन की विधियाँ

पट्टी—प्रत्येक चोट या घाव में पट्टी बाँधना आवश्यक है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को पट्टी बाँधने की विधि जाननी चाहिए। पट्टी बाँधना ऐसा सरल काम नहीं जिसे प्रत्येक मनुष्य स्वयं कर ले। क्षत की यातना और विश्राम तथा क्षत की प्रारम्भिक चिकित्सा की सफलता या विफलता बहुत कुछ पट्टी के बन्धन पर निर्भर है, इसलिए उसको जानना अत्यन्त आवश्यक है।

पट्टी सदा स्वच्छ और उजले वस्त्र की बनानी चाहिए। मैले और मवाद भरे कपड़ों का मैल और दूषित कीटाणु घाव में लगते हैं। घाव के द्वारा रक्त में प्रवेश कर जाते हैं और बहुधा भयंकर दशा उत्पन्न कर देते हैं। इन कारणों से पट्टी का पवित्र होना आवश्यक है। जब पट्टी की उपयोगिता न हो तब उसको लपेटकर एक कागज में बाँधकर रख छोड़ना चाहिए। हाथ या टाँग में बाँधनेवाली पट्टी लगभग २ इंच चौड़ी होनी चाहिए और उँगली में बाँधनेवाली पट्टी १ इंच से कुछ कम।

त्रिकोण पट्टी—तिकोनी पट्टी क्षत की प्रारम्भिक चिकित्सा के लिए लाभदायक होती है। इसमें एक लाभ तो यह है कि इसके बाँधने से रक्त-वाहिनी नसों में रक्त का संचार रुकने की आशंका थोड़ी होती है, दूसरे उसका बन्धन अन्यान्य पट्टियों की अपेक्षा सरल है।

तिकोनी पट्टी बनाने की सुगम रीति यह है कि एक वर्ग गज कपड़ा लेकर उसे बीच से मरोड़कर कतरनी से काट लो। आगे के चित्र के अनुसार दो त्रिभुज पट्टियाँ बन जायँगी। तिकोनी पट्टी के सबसे लम्बे किनारे के कोने 'सिरे या छोर' कहलाते हैं और स्वयं किनारा 'निचला किनारा' कहलाता है। ऊपर के कोने को 'नोक' कहते हैं

और दोनों ओर के किनारों को 'बाएँ दिशि का किनारा' व 'दाएँ ओर का किनारा।'
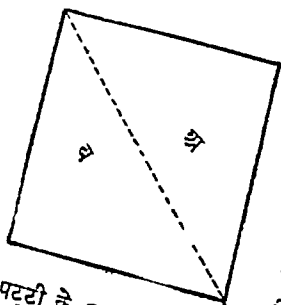
तिकोनी पट्टी को आवश्यकतानुसार चौड़ा, पतला बना सकते हैं। दोपर्ती पट्टी बनाने के लिए नोक को निकले किनारे से मिलाकर मोड़ लो। चौपर्ती पट्टी बनाने के लिए दोपर्ती पट्टी के ऊपर की दिशि के दोनों सिरों या छोरों को निचले किनारे से मिलाकर मोड़ लो। इसी प्रकार चौपर्ती पट्टी के ऊपरी कोनों को निचले किनारे से मिलाकर मोड़ने से आठ पर्ती पट्टी बन जायगी। यदि तिकोनी पट्टी प्रस्तुत नहीं, तो फिर कार्य के समय रुमाम टाई, तौलिया, पगड़ी, पेटी, कटिबन्ध इत्यादि जो भी वस्तु मिल सके, उससे काम निकाला जा सकता है।

कोने को आधार पर ले आने से दोपर्ती पट्टी बन जाती है।
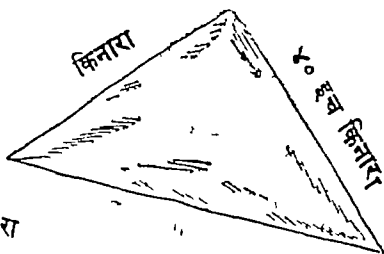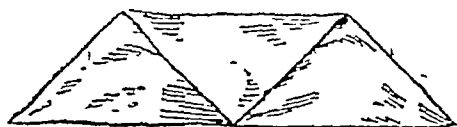
दोपर्ती पट्टी को दोहरा और लपेटने से चौड़ी पट्टी बन जाती है।
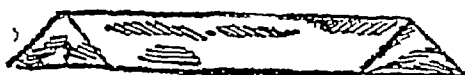
चौड़ी पट्टी को फिर दोहरा पलट देने से पतली पट्टी बन जाती है।
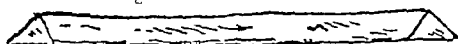
गाँठ और उसका बन्धन—वैसे तो गाँठ एक बच्चा भी बाँध लेता है, परन्तु नियमोचित ग्रन्थि में यह विशेषता होती है कि वह सुदृढ़ होती है। स्वयमेव खुल नहीं जाती। फन्दे ऐसे बेढंगे नहीं पड़ते कि जो एक पर एक बैठकर टेला सा बन जायँ, किन्तु पार्श्व सटते हुए समतल बैठते हैं जिस कारण गड़ने नहीं पाते।
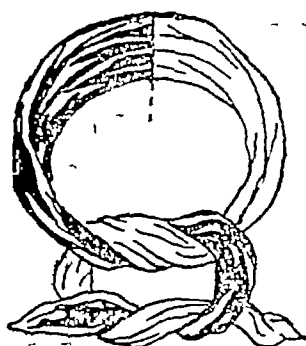
गरेनी गाँठ
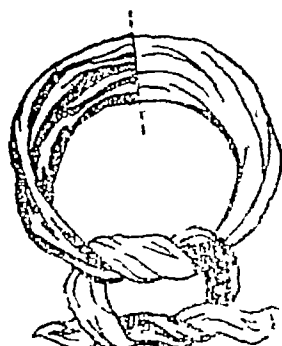
रीफ़ गाँठ

बन्धन के विचार से क्षत की प्रारम्भिक चिकित्सा में दो प्रकार की गाँठे प्रयुक्त होती हैं। एक तो गरेनी गाँठ दूसरी रीफ़ गाँठ। दोनों का रूप और बाँधने का ढग पीछे की आकृति में स्पष्ट है। बन्धन के विचार से रीफ़ गाँठ उत्तम है। उसके बाँधने की विधि यह है कि पट्टी का एक सिरा दाहिने हाथ में और दूसरा बाएँ हाथ में पकड़ा जाये। बाएँ सिरे को दाहिने सिरे के सम्मुख ले जाकर मिला दिया जाये और एक गाँठ दे दी जाये। इस प्रकार आधी गाँठ हो जायगी। दूसरी गाँठ के लिए बाएँ हाथवाले सिरे को ऊपर से दाहिने हाथ के नीचे ले जाकर दूसरी गाँठ बाँध दी जाय।

खपच्चें—खपच्चें बाँधने की उपयोगिता यह है कि इससे टूटी हुई हड्डी अथवा आहत अग को सहारा और विश्राम मिलता है। इस अभिप्राय को पूर्ण करने के लिए खपच बाँधने में कतिपय बातों का विचार रखना चाहिए।

खपच खंडित अस्थि या आहत अंग के अनुपात से हो और इतनी लम्बी हो कि भग्न अस्थि के जोड़ों से ऊपर और नीचे दोनों ओर बाहर निकली रहे।

खपच का धरातल दोनों बल रन्दे से परिष्कृत और चिकने कर देने चाहिए। खपच के भीतर की ओर कपड़े या रुई की गेटी लगानी चाहिए जिससे वह आहत अग पर भली भाँति जम जाय और रोगी को किसी प्रकार का कष्ट न हो। यदि रुई इत्यादि सुलभ न हो तो चिथड़ों, लत्तों, सन, या शुष्क घास को खपच पर रखकर उसे कार्योपयुक्त बना लेना चाहिए। खपच्चें कठोर होनी चाहिए और दृढ़ता से बाँधनी चाहिए जिससे उनमें लचक न रहे नहीं तो भग्न अस्थि के झुक जाने का भय है।

खपच्चें बाँधने में इस बात का ध्यान रहे कि ऊपर और नीचेवाली दोनों खपच्चों के सिरे क्षत अग पर खूब कसकर बँधे हुए हों और अपनी

स्थिति से टस मस न हो-सकें। उदाहरणार्थ यदि वक्ष या कटि के जोड़ पर पट्टी बाँधना हो तो कटि के नीचे के खाली स्थान में से किसी लकड़ी या चिमटी के द्वारा पट्टी को निकाल लिया जाय और दोनों ओर बराबर कर आवश्यकतानुसार ऊपर या नीचे खिसकाकर भग्न अंग को बाँध दिया जाय। नीचे के खाली स्थान से पट्टी निकालकर बाँध दी जाय। चीड़ की लकड़ी की खपच्चें उत्तम और हलकी होती हैं।

३—हड्डियों की बन्धन-विधि

(१) **शीश की चोट का बन्धन**—मस्तिष्क शरीर का एक सुकुमार अंग है। शीश की चोट में बड़ी सतर्कता रखनी चाहिए, क्योंकि शीश की चोट में मतिष्क पर आघात होता है।

मस्तिष्क की चोट के लक्षण—मस्तिष्क की चोट में आहत् बहुधा मूर्च्छित हो जाते हैं। यदि प्रहार से तालु की अथवा कपाल-कोटर के पेंदे की हड्डी टूट गई हो तो कान, आँख, नाक या मुख से रक्त निकलने लगता है या कानों से पानी सरीखा तरल रस बहता है।

चिकित्सा—क्षत को सीधा लिटाये रखना चाहिए किन्तु शीश ऊँचे रहे। शरीर को उष्ण रखने के लिए एक कम्बल या कोई अन्य वस्त्र ओढा दिया जाय, और जब तक कोई डाक्टर न आ जावे रोगी को हिलने-डुलने न दिया जाय।

शीश की चोट में यदि सिर की हड्डी टूट जाय तो उत्तम यह है कि तत्काल किसी सुदक्ष डाक्टर से बन्धन करा लिया जाये।

शीश का बन्धन—तिकोनी पट्टी सिर पर इस प्रकार बाँधी जाती है कि पहले निचले किनारे को लगभग १½ इंच के मोड़ लिया जाये फिर उसे सिर पर इस प्रकार रक्खा जाये कि मोड़ा हुआ किनारा मस्तक पर भौं के किनारे और पट्टी की नोक सिर के पीछे रहे। तदुपरान्त पट्टी के दोनों छोरों को पीछे की ओर कानों के ऊपर से ले जाओ। जिससे

पीछे की नोक छोरों के नीचे दब जाये और फिर छोरों को लौटाकर माथे पर गाँठ दे दो। इसके पश्चात् शीश को सँभालकर दूसरे हाथ से
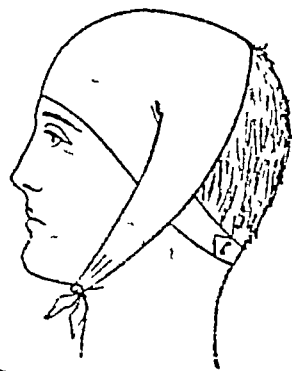
सम्मुख का बन्धन

चौशाखा पट्टी द्वारा बन्धन

पट्टी की नोक को नीचे की ओर खींचो और फिर उलटकर सिर पर ले आओ और काँटए से अटका दो।

शीश का बन्धन—यदि चौशाखा पट्टी से करना हो तो चौड़े भाग को सिर पर रखकर एक ओर की दोनों शाखाओं को मिलाकर सिर के पीछे गाँठ लगा दो और दूसरी ओर की शाखाओं को चिबुक (ठोढ़ी) के नीचे अटका दो।

(२) जवड़े की चोट और बन्धन

हनु (जवड़े) की चोट के लक्षण—जबड़े या जभ की हड्डी यदि किसी आघात से टूट जाय तो उसकी पहचान के लक्षण यह हैं कि मुँह तत्क्षण खुल जाता है और बन्द नहीं हो पाता। दाँतों की पंक्ति बिगड़ जाती है। दाँत ऊपर-नीचे हो जाते हैं और उनसे रुधिर बहने लग जाता है।

चिकित्सा—ऐसी दशा में रोगी को बिठा दो और उसके समक्ष खड़े होकर दाहिने हाथ से सिर को सहारा दो और बायाँ हाथ चिबुक (ठोढ़ी) के नीचे लगाकर आहत अस्थि को ऊपर के जबड़े (ऊर्ध्व हनु) की ओर धीरे-धीरे उँगलियों की सहायता से दबाओ। जब हड्डी का जोड़ मिल जायगा मुँह स्वयं बन्द हो जायगा और हड्डी अपने स्थान पर बैठ जायगी।
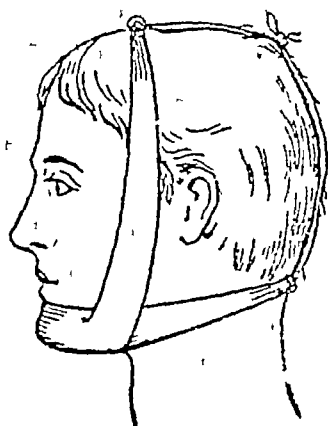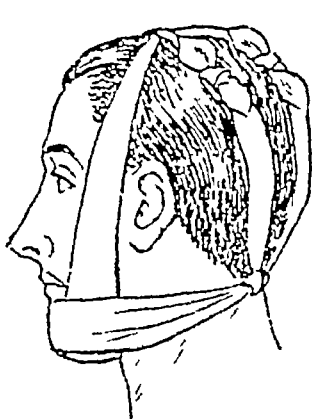
जबड़े का बन्धन

हनु-बन्धन—जबड़े को सुधारने के पूर्व एक तिकोनी पट्टी को पतली बनाकर तैयार कर लो और जब हड्डी बैठ जाय तब पट्टी के बिचले भाग को क्षत के चिबुक के नीचे लगाकर पट्टी की बाएँ ओर का सिरा दाहने कान के नीचे तक ले जाओ और दाहिना सिरा बाएँ कान पर से ले जाकर सिर से दाहिने कान पर ले आओ, यहाँ तक कि पट्टी के दोनों ओर के सिरे तले ऊपर आकर मिल जायँ। अब बाएँ सिरे को दाहिने सिरे के नीचे दबाकर दाहिने सिरे के ऊपर से फिर चिपक पर ले आओ और बाएँ कान के नीचे ले जाकर खींच दो।

सिर और शरीर भग्न अस्थि की ओर झुक जाता है और जिस ओर की हँसली का अस्थि-भग होता है, उस पार्श्व के हाथ को लटकाने में कष्ट होता है।

बन्धन-विधि—क्षत को अपने सम्मुख किसी ऊँची वस्तु पर बैठाओ या खडा कर लो और खडित हँसली की ओर के पार्श्व में (काँख में) एक मोटी गद्दी को लपेटकर लगा दो और हाथ को तिरछा करके वक्ष में लगा दो। अब एक तिकोनी पट्टी फैलाकर उसका एक सिरा स्वस्थ हँसली की ओर के कन्धे की दिशा में डाल दो और इस प्रकार बाँधो कि पट्टी की नोक घायल हँसलीवाले हाथ की कोहनी (कूर्पर) पर रहे और दूसरा किनारा नीचे लटका रहे। पट्टी के लटकते हुए किनारे को कटि के पीछे ले जाकर कन्धे पर दूसरी ओर से ले आओ और दोनों किनारे मिलाकर गाँठ बाँध दो।
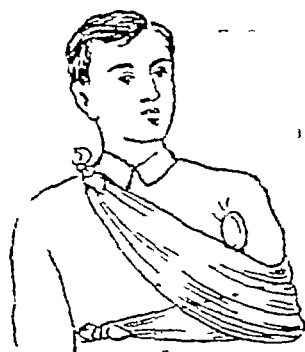
हँसली की हड्डी का बन्धन

तत्पश्चात् पट्टी की नोक को तानो और मोडकर हाथ पर ले आओ और एक काँटे से अटका दो।

यह बन्धन समाप्त करके एक तिकोनी पट्टी लो और उसको दोहरा मोड लो। इस दूसरी पट्टी को बँधे हुए हाथ के कूर्पर (कोहनी) पर लगाओ। इस प्रकार से कि पट्टी का मध्यस्थ भाग कूर्पर पर रहे और दोनों किनारों को शरीर के दोनों पार्श्व से लाकर स्वस्थ कक्ष या काँख की ओर कसकर गँठबन्धन करो। दूसरी पट्टी का बन्धन इतनी दृढता से कसा न होना चाहिए कि रक्त-भ्रमण रुक जाये। उसके अनुमान करने का उपाय यह है कि पट्टी बाँधकर बँधे हुए हाथ की चाल देखो।

उसके प्रतिकूलवाले कन्धे पर पट्टी का एक सिरा नीचे लटकता रहने दो। पट्टी की नोक घायल हाथ की ओर रखो। उसके पश्चात् हाथ को उठाकर पट्टी के ऊपर से क्षत मनुष्य के पेट पर लगाओ। इस प्रकार हथेली पेट पर रहे। यदि समकोण से हाथ पर विशेष बल पडता हो तो हाथ को आवश्यकतानुसार और ऊँचा कर लेना चाहिए।

जब हाथ को इस प्रकार सुधार चुको तब पट्टी के लटकते हुए सिरे को उठाकर हाथ पर ले आओ और घायल हाथ कन्धे की ओर ले जाकर ग्रीवा के पीछे ले जाओ और हाथ को झोली में लटकाकर दोनों
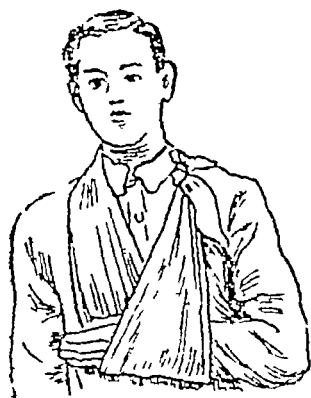
झोली और झोले का उपयोग

सिरों को मिलाकर गाँठ बाँध दो। तदुपरान्त पट्टी की नोक को कूर्पर (कोहनी) से मोडकर ऊपर से काँटा लगा दो। छोटे झोले का बन्धन तो निपट इसी रीति से होता है, किन्तु क्योंकि पट्टी दोहरी होती है, कटिया लगाने की आवश्यकता नहीं पडती। बहुधा लोग झोली की गाँठ घायल कन्धे की ओर देते हैं, परन्तु यह बन्धन अच्छा नहीं है।

झोले के अन्य उपाय—यदि आवश्यकता के समय पट्टी न हो, तो हाथ का आश्रय लगाने के अन्य उपाय भी उपयुक्त हो सकते हैं। यथा—कोट की आस्तीन को कटक के द्वारा कोट से सन्नद्ध कर दिया जाय। अथवा कोट के दामन को उलटकर कोट से अटका दिया जाय। अथवा कोट, वास्कट या जाकिट इत्यादि में बटन लगाकर दोनों बाहों के बीच के स्थान में उँगलियों को रख लिया जाय। इन सब उपायों से हाथ को विश्राम मिलता है।

स्कन्ध का बन्धन—कन्धे का घाव बाँधने के लिए पहले आहत भुजा को एक झोली में लटका दो। पश्चात् एक तिकोनी पट्टी फैलाकर कन्धे के घाव पर डालो, नोक को गुलूबन्द के नीचे करके ऊपर से मोड दो और कटिया लगा दो। अब पट्टी के निचले किनारे को गोट की भाँति मोड़ दो और दोनों सिरों को बगल के दोनों पार्श्व से लँघाकर हाथ पर लपेट दो और गाँठ बाँध दो।

(६) बाहु की चोट का बन्धन

भुजा और हाथ के बन्धन—बाहु या हाथ की हड्डी प्राय प्रहार पड़ने पर बीच से टूट जाया करती है। हम ऊपर बता चुके हैं कि टूटी हुई हड्डी को बाँधने के लिए खपचें बाँधना अत्यन्त आवश्यक है। खपचें अस्थि को दृढ़तापूर्वक पकड़ लेती हैं और जोड़ से विलग नहीं होतीं, परन्तु यदि किसी अवसर पर खपचें मिल ही न सकें तो पट्टी-मात्र का बन्धन भी उपादेय हो सकता है। ऐसे बन्धन के लिए पतले चिट्ट की पट्टी अधिक उचित हो सकती है।

चिट्ट की पट्टी को इस भाँति लपेटना चाहिए कि जिससे टूटी हुई हड्डी के जोड़ मिल जायँ। तदुपरान्त पट्टी को इस प्रकार लपेटना आरम्भ करो जिससे एक ओर पट्टी पूरी चौड़ाई में लेटे और दूसरी अलग आधी मोड़ी हुई ताकि पर्त पर पर्त अच्छी तरह जमती जाय और

बन्धन न तो ढीला हो और न खुले। जब पट्टी समाप्त हो जाय तो पट्टी के छोर को कांटिए से सन्नद्ध कर दो। इसके उपरान्त तिकोनी पट्टी का झोला बनाकर हाथ उसमें डाल दिया जाय।

दो जोड़ी खपचों द्वारा बाहु-बन्धन

खपचों द्वारा बाहु-बन्धन

खपचें बाँधने की विधि यह है कि भग्न अस्थि को सुधार करके उसकी चार दिशाओं पर एक एक खपच लगाकर एक बन्धन हड्डी के जोड़ में किया जाय और एक-एक बन्धन खपचों के ऊपर व नीचेवाले सिरों पर, ताकि खपचें हिल डुल न सकें। इसके पश्चात् हाथ झोले में लटका दिया जाय। यदि चार खपचें न मिल सकें तो दो जोड़ी खपचों से काम लिया जा सकता है। एक-एक पट्टी हड्डी के जोडे के नीचे लगाकर रीति के अनुसार तीन बन्धनों में उन्हे स्थापित कर दिया जाय।

हाथ की खपच का बन्धन—खपच-बन्धन में एक बात का ध्यान रहे, वह यह कि बाहु के बन्धन में ऊपर की खपच बड़ी हो जो कन्धे से कूर्पर तक पहुँच सके और कक्ष की खपच सबसे छोटी हो ताकि हाथ पार्श्व में मिल सके। न तो बगल में खपच लगे और न कूर्पर के भीतर

की ओर रक्त की वाहिनी नसें दबें। इसी प्रकार हाथ के बन्धन में खपचें इतनी लम्बी हों जो कोहनी से उँगली पर्यन्त पहुँच जायँ, और किंचित्मात्र निकलती रहें। हाथ के बन्धन के लिए दो जोड़ी खपचें

खपच पर पंजे का बन्धन

पर्याप्त हैं; परन्तु बन्धन पट्टियों से होना योग्य है। एक कलाई के समीप दूसरी भग्न अस्थि के जोड़ के नीचे। एक मध्य-हस्त में भग्न अस्थि के जोड़ के ऊपर और एक कूर्पर के पास। हाथ को खपच पर इस विधि से रखना चाहिए जिससे उँगलियाँ भीतरवाली खपच पर पूर्ण रूप से फैली रहें। इस प्रकार बँध चुकने पर हाथ को एक चौड़े झोले में लटका देना चाहिए।

चौड़ी खपच द्वारा हाथ का बधन

हाथ के नीचे का बन्धन—यदि हाथ के नीचे भाग में चोट आ जाय या अस्थि भङ्ग हो जाय तो उसके बाँधने की विधि यह है कि एक ऐसी चौड़ी खपच ली जाय जो एक ओर तो उँगलियों से निकलती रहे और दूसरी ओर कलाई से बढ़ी हो। पश्चात् एक तिकोनी पट्टी को पतला करके किसी

समतल वस्तु पर रख दो और पट्टी के बीच में खपच को इस प्रकार खड़ा करो कि खपच का सिरा पट्टी के बीच में पट्टी के किनारे मिलता हुआ रहे। अब खपच को पट्टी समेत उठा लो और पजे को खोलकर खपच पर फैला दो और पट्टी से दाहिने छोर को बाईं ओर बाएँ सिरे को दाईं ओर खूब खींचकर ले आओ जिससे पजा खपच पर भली भाँति जम जाय। इन दोनों सिरों को खपच की ओर ले जाओ और क़ैंची बनाओ। इसी प्रकार एक बार हाथ पर और दूसरी बार खपच पर कैंची बनाते हुए पहुँची तक पहुँची जाओ। कलाई के नीचे पट्टी के दोनों सिरों को संयुक्त करके गाँठ बाँध दो। हाथ को झोली अर्थात् छोटे झोले में लटका दो।

(७) तिकोनी पट्टी से हाथ का बन्धन

यदि पजे में चोट आ गई हो या घाव हो गया हो और अस्थि-भङ्ग न हुआ हो तो बिना खपच बाँधे कपड़ा ही लपेट सकते हैं। उसकी विधि यह है कि एक तिकोनी पट्टी को लेकर उसके निचले किनारे की गोट मोड लो। पश्चात् हाथ को पट्टी के बीच में इस प्रकार रखो कि उँगलियाँ पट्टी की नोक की ओर रहें और कलाई गोट पर। नोक को उठाकर कलाई पर ले आओ। पट्टी के दोनों छोर कलाई के चतुर्दिशि लपेट दो, जिससे कि पट्टी की नोक इस बन्धन के नीचे आ जाय। इसके दोनों छोरों को मिलाकर गाँठ बाँध दो और नोक को गाँठ पर

हाथ की खपचों का बन्धन

उलटकर कटिए से टाँक दो। यदि उँगलियों को फैलाने में कष्ट हो तो मुष्टिका-बन्ध करके तिकोनी पट्टी का ऐसा ही बन्धन कर दो।

कूर्पर-बन्धन—कोहनी में यदि आघात पड़ जाय अथवा घाव हो जाय तो उसके बन्धन की विधि यह है कि एक तिकोनी पट्टी को लेकर फैलाओ और उसके निचले किनारे का गोटा मोड लो। अब कोहनी को पट्टी के बीच में इस प्रकार रख लो कि नोक कन्धे की ओर बाहर की दिशि में और हाथ दोनों सिरों के बीच में रहे। सिरों को लेकर हाथ पर इस प्रकार लपेटो कि कैंची बन जाय। हाथ की कोहनी के पास से जोड़ लो और पट्टी के सिरों को ले जाकर बाहु के चारों ओर इस प्रकार लपेटो कि नोक इस बन्धन के नीचे आ जाय। फिर दोनों सिरों को मिलाकर गाँठ बाँध दो। नोक को ऊपर की ओर खींचकर कोहनी पर पलट दो और कटिए से सन्नद्ध कर दो।

यदि कोहनी की हड्डी टूट जाये या ऐसी संभावना हो तो तुरन्त डाक्टर को दिखलाया जाये, परन्तु जब तक डाक्टर न आ सके कोहनी का बन्धन कर देना चाहिए। दो जोड़ी खपचों को लेकर एक के दो सिरों को उनके सामनेवाले सिरों पर स्थित करो ताकि दोनों के मिलने से समकोण बन सके। यदि लोहे की छड़ें मिल सकें तो इन्हें छड़ों पर स्थापित करो और यदि छड़ें न मिल सकें तो डोरे या चिटों से कसकर बाँध दो। जब यह खपच प्रस्तुत हो जाय तब इसे लेकर घायल कोहनी पर लगाओ और हाथ को उठाकर चत के पेट पर रख दो। खपच लगाने में इस बात का ध्यान रखो कि खड़ी खपच बाहु पर ठीक बैठ जाये और नीचे की बैठ हाथ पर और दोनों खपचों की कोहनी क्षत की कोहनी पर रहे। तत्पश्चात् पट्टियों से चार बन्धन कर लिये जायँ। दो बन्धन भुजाओं पर हों और दो हाथ पर। बाहु के बन्धनों में एक काँख के नीचे होना चाहिए। दूसरा कोहनी से लेशमात्र ऊपर। हाथ के

बन्धनों में एक कलाई पर हो और दूसरा कोहनी से किंचित् नीचे। इस भाँति खपचें निज निज स्थान पर बैठ जायँगी।

बन्धन के पीछे कोहनी पर कपड़े की एक चौड़ी गद्दी शीतल जल में भिगोकर रख देनी चाहिए और जब तक डाक्टर चोट का निरीक्षण न कर ले गद्दी को जल से तर करते रहना चाहिए। यदि बर्फ़ प्राप्त हो सके तो अत्युत्तम है। बाहु और हाथ दोनों की हड्डियाँ जब एक साथ टूट जाती हैं तब भी इसी प्रकार की कोहनीदार खपचों से कार्य-निर्वाह किया जा सकता है।

उँगली का बन्धन—उँगलियों की चोट में यदि हाथ की सभी उँगलियाँ कुचल जायँ तो चिट का बन्धन लाभकारी है। पट्टी की
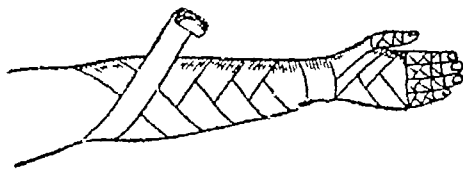
लम्बाई-चौड़ाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए। पट्टी का बन्धन कलाई से प्रारम्भ होता है और उँगलियों पर की लपेट ठीक उसी प्रकार होती है जैसा कि हाथ के बन्धन में दिखलाया गया है।

(८) वक्ष या पृष्ठ के आघात के बन्धन

पार्शुका की चोट—छाती की चोट में उस समय बहुत जोखिम होती है जब पसली की हड्डी टूटकर फेफड़े में चुभ जाय, क्योंकि फेफड़े का घाव भरना लगभग असम्भव है। ऐसी अवस्था में घायल रक्त थूकने लगता है। यदि पसली फेफड़े में न बिध गई हो तब भी क्षत को पार्शुका-भग हो जाने से कठोर पीड़ा होती है। यहाँ तक कि उसको स्वास तक लेना दुस्तर होता है। यदि पसली की हड्डी टूटने से आन्तरिक अंग

आहत हो गये हों तो क्षत के वक्ष पर के वस्त्रों को ढीला कर दो और उसको पीठ के सहारे किंचित् आहत पार्श्व पर लिटा दो। पीड़ा के स्थान पर बर्फ़ को रखना और क्षत को बर्फ़ चूसने के लिए देना बहुत लाभदायक है। गर्म और स्फूर्तिजन्य वस्तुओं—यथा चाय, कहवा, मद्य प्रभृति का निपट परित्याग होना चाहिए।

पार्शुका-बन्धन—यदि पसली के टूटने से अन्य अंगों को आघात पहुँचा हो तो चौड़ी पट्टियों को लेकर भग्न पसली पर इस प्रकार बाँधो कि नीचेवाली पट्टी का ऊपरी तिहाई अंश और ऊपरवाली पट्टी का निचला तिहाई अंश दोनों नीचे और ऊपर टूटी हुई हड्डी के जोड़ पर रहें। पश्चात् दोनों पट्टियों को सामनेवाले वक्ष में जिस पर चोट न हो बाँध दो और एक तिकोनी पट्टी लेकर उसके निचले किनारे की गोट को लगभग १½ इंच के मोड़ लो और पट्टी को फैलाकर वक्ष पर रखो, जिससे कि पट्टी की नोंक उसी पार्श्व के कंधे पर रहे जिधर की पसली आहत है। उसके पश्चात् पट्टी के एक सिरे को पीठ की ओर ले जाकर स्वस्थ पार्श्व के कक्ष में पट्टी के दूसरे सिरे से मिलाकर गाँठ बाँध दो और सिरे का जो अंश गाँठ लगाकर बढ़े उसे मोढ़े पर लाकर पट्टी के कोने के साथ कन्धे पर गाँठ बाँध दो। अब जिस ओर की पसली में चोट लगी हो, उस हाथ को एक चौड़े झोले में डाल करके क्षत को बहुत ही धीरे से जिस प्रकार विश्राम मिले, लिटा दो।

पृष्ठ बन्धन—पीठ का बन्धन ठीक वक्ष ही की भाँति होता है, केवल आगेवाला बन्धन पीछे हो जाता है और पीछेवाला आगे।

कशेरुका की चोट—रीढ़ की हड्डी टूट जाने से दारुण अवस्था हो जाती है। बात यह है कि इस हड्डी के भीतर सुषुम्ना होती है, कमर की हड्डी टूटने का यह अभिप्राय हुआ कि सुषुम्ना पर आघात पहुँचे। सुषुम्ना के क्षत मनुष्य की पहचान यह है कि उसके नीचे के धड़ की

नाडियाँ बेकाम हो जाती है। शरीर के अधोभाग के किसी अंग में पीडा नहीं होती। कटि की हड्डी टूट जाने की दशा में क्षत को बिलकुल भी न हिलने डुलने देना चाहिए और जिस बल वह धराशायी हुआ हो उसी बल पडा रहने देना चाहिए। केवल एक कम्बल ओढा दिया जाय जिससे शरीर उष्ण रहे और चोट ठण्डी न होने पाये। ऐसे क्षत व्यक्ति की चिकित्सा सर्वदा किसी सुदक्ष, विज्ञ और धुरन्धर डाक्टर से करानी चाहिए।

परन्तु यदि डाक्टर वहाँ तक न पहुँच सकता हो और क्षत को उस स्थान से ले जाना आवश्यक हो तो उसके उठाने में बडी सतर्कता से काम लेना चाहिए। यदि क्षत कोट पहने हुए हो तो कोट के बटन खोलकर दो मनुष्य मिलकर क्षत को कोट के सहारे उठायें। एक व्यक्ति कोट को सिर की ओर से पकड़े और दूसरा नीचे की ओर से। और शान्ति से खटिया पर लिटा अस्पताल पहुँचावें, परन्तु यदि कोई कपडा न हो तो चादर इत्यादि को कमर के नीचे आहिस्ता से फैलाकर पहुँचाना चाहिए और फैलाकर झोला बना लेना चाहिए। इसी झोले के अवलम्बन से यथायोग्य चारपाई पर लिटा देना चाहिए।

कूले का बन्धन

(६) नितम्बास्थि की चोट का बन्धन

नितम्बास्थि या कूले का बन्धन—यदि कूले में चोट लग जाये अथवा घाव हो जाये तो उसके बन्धन की विधि यह है कि पहले एक पतली पट्टी कमर में बाँध दो जिससे कि पट्टी की गाँठ आहत
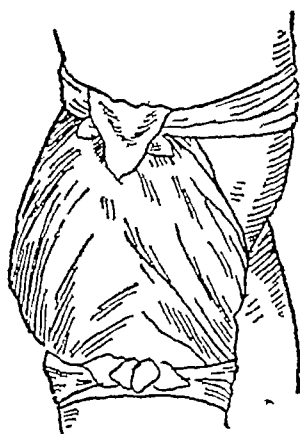
कूले के ऊपर रहे। अब एक तिकोनी पट्टी लो और उसके निचले किनारे की गाँठ मोड़ दो, तत्पश्चात् पट्टी को फैलाकर आहत स्थान पर रखो, इस प्रकार जिससे कि पट्टी की नोक ऊपर की ओर रहे। नोक को पट्टी के भीतर डालकर गाँठ के ऊपर से निकाल लो और मोड़कर कटिए से अटका दो। अब पट्टी के दोनों छोरों को टाँग के चारों ओर लपेट दो और गाँठ बाँध दो।

(१०) ऊर्वस्थि (टाँग) की चोट

जंघा की चोट—जघास्थि शरीर की सब हड्डियों से अधिक लम्बी है। बहुधा उत्तु ग स्थान से स्वय गिरने अथवा भारी बोझा टाँग पर गिरने से यह हड्डी टूट जाती है। बूढ़ों की हड्डियाँ युवकों की अपेक्षा निर्बल होती हैं। इसलिए वृद्ध लोगों की ऊर्वस्थि अधिकतर टूटा करती है। यह हड्डी कभी-कभी बीच से टूटती है और कभी नितम्बास्थि की सन्धि के नीचे से। रान या उरू की हड्डी जब नितम्बास्थि की सन्धि के नीचे से टूटती है तब उसका बन्धन चिह्न की पट्टी से करते हैं।

लक्षण—ऊर्वस्थि टूट जाने का लक्षण यह है कि मनुष्य टाँग को गति नहीं दे सकता। जिस भाँति टाँग पड़ी होगी, पड़ी रहेगी। अस्थि भग्न हो जाने से आहत टाँग तथा स्वस्थ टाँग की समानता में किञ्चित् भेद आ जाता है। घुटने पर कुछ घूम आ जाता है। पैर बाहर की ओर थोड़ा सा फिर जाता है। क्षत अपनी स्वस्थ टाँग से आहत टाँग की एड़ी में सहारा लगा लेता है।

जंघास्थि का बन्धन—जाँघ की टूटी हुई हड्डी के बन्धन के लिए दो खपचों की आवश्यकता होती है। एक काँख से लेकर पाँवों की एड़ी तक और दूसरी जाँघ से लेकर घुटने के नीचे तक। तत्पश्चात् पाँच पतली पट्टियाँ और तीन चौड़ी पट्टियाँ तैयार कर लो। जब यह साधन

उपस्थित हो जायँ तब बन्धन की ओर ध्यान दो। यदि खपच्चें न मिल सकती हों तो लाठियों या काष्ठों से काम चलाया जा सकता है। क्षत को सीधा लिटाकर दोनों टाँगों को पकड़ो और टूटी हुई टाँग को नीचे खींचो। यहाँ तक कि दोनों टाँगें सम हो जायँ और भग्न अस्थि अपने स्थान पर आ जाय। टाँग ठीक हो जाने पर दोनों टाँगों को मिला दो और एक पतली पट्टी लेकर गट्टे के ऊपर दोनों टाँगों को बाँध दो ताकि हड्डी फिर न हट सके।

बड़ी खपच लेकर आहत टाँग के बाहर की ओर लगाओ, इस प्रकार जिससे कि खपच की एक छोर पार्श्व के नीचे रहे और दूसरी छोर एड़ी तक पहुँच जाय।

अब दो चौड़ी पट्टियाँ लो। एक को वक्ष पर लपेटकर लंबी खपच का काँख के नीचेवाला छोर उसमें रखकर बाँध दो और खपच के ऊपर पट्टी के दोनों सिरे लाकर गाँठ बाँध दो। दूसरी चौड़ी पट्टी को नितम्बास्थि के चारों ओर लपेटकर खपच को नितम्बास्थि पर स्थापित करो और खपच के ऊपर पट्टी के सिरों को लाकर गाँठ लगा दो। तत्पश्चात् छोटी खपच बाँध दो, इस प्रकार जिससे कि खपच का एक सिरा तो अनुजघास्थि तक पहुँच जाय और दूसरा सिरा घुटने तक।

छोटी खपच तीन पतली पट्टियों से बनाई जाती है। एक बन्धन अनुजघास्थि के नीचे होता है जिससे खपच का ऊपरी छोर बाँधा जाता है, जो टूटी हड्डी के ऊपरवाले छोर को स्थापित करता है। इस पट्टी को भीतर व बाहरवाली दोनों खपचों के चारों ओर लपेटकर बाहर-वाली खपच पर लाकर गाँठ लगाओ। दूसरी पट्टी को टूटी हड्डी के नीचे-वाले खण्ड को स्थापित करने के लिए खपचों के चारों ओर लपेटकर लम्बी खपच के ऊपर ले जाकर गाँठ बाँध दो। तीसरी पट्टी को छोटी

खपच के नीचे के छोर पर रखकर दोनों खपचों को बांध दो और बड़ी खपच पर यथायोग्य गाँठ बाँध दो।

तत्पश्चात् एक और पतली पट्टी लेकर टखने को उसके बीच में रखो और दोनों टाँगों के चारों ओर बड़ी खपच के ऊपर से एक फेरा दो, जब दोनों सिरे ऊपर आ जायँ तो दाहिनी टाँग की ओर के सिरे को बाएँ पैर की ओर ले जाओ और बाईं टाँग की ओर के सिरे को दाहिने पैर की ओर ले जाओ और दोनों सिरों को कसकर एड़ी के नीचे गाँठ बाँध दो।
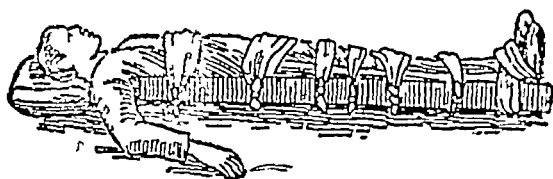
रान उरू की हड्डी का बन्धन

जब यह बन्धन समाप्त हो जायँ तो एक चौड़ी पट्टी लेकर दोनों टाँगों को घुटने के ऊपर बाँध दो और बड़ी खपच पर गाँठ का बन्धन कर दो।

जानु की चोट—जब दौड़कर चलने में ठोकर लगती है और मनुष्य धराशायी होता है तो घुटने बहुधा घायल होते हैं। यदि घुटना घायल हो जाय और रक्त निस्रेर हो, परन्तु अस्थि भङ्ग न हुआ हो तो उसका बन्धन कठिन नहीं है। आहत स्थल पर एक गद्दी जल में भिगो करके रख दो और उस पर तिकोनी पट्टी से बन्धन कर दो।

पट्टी बाँधने की विधि यह है कि पट्टी के निचले किनारे की गोट मोड़कर उसको घुटने पर इस प्रकार रखो जिससे कि नोक उसकी जघा पर रहे और पट्टी का बिचला खंड घाव पर रहे और पट्टी के

दोनों छोरों को पहले घुटने के नीचे लपेटो फिर कैंची बनाते हुए घुटने के ऊपर ले जाकर लपेटो और गाँठ बाँध दो, तत्पश्चात पट्टी की नोक को गाँठ के ऊपर लाकर कटिया के सन्नद्ध कर दो।

चिपनी की हड्डी (गुल्फास्थि) टूटने के लक्षण—जब हड्डी टूट जाती है तब जोड पर सूजन आ जाती है। पीड़ा होती है और टटोलने के हड्डी के खंड ज्ञात होते हैं।
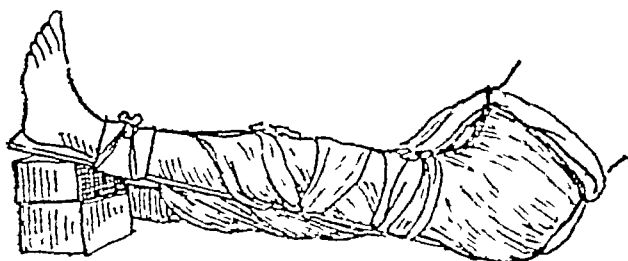
गुल्फास्थि-बन्धन

घुटने का बन्धन—क्षत को पहले एक गाव-तकिया अथवा किसी दूसरी वस्तु के सहारे बिठा दो, जिससे जंघा की नाड़ियाँ ढीली रहें और आहत टाँग की एडी को ईंटा या अन्य किसी ऊँची वस्तु पर रखकर ऊँचा कर दो तदुपरान्त बन्धन आरम्भ करो।

एक लम्बी खपच्च लो जो इतनी लम्बी हो कि नितम्बास्थि के मूल से एडी तक पहुँच सके। इस खपच्च को टाँग के नीचे लगाकर दो पतली पट्टियों से उसके दोनों सिरों को स्थापित कर दो। तत्पश्चात दो पट्टियाँ और लो। एक पट्टी को बीच से चिपनी पर रखकर घुटने पर लपेटो और घुटने के नीचे से आओ और खपच्च के ऊपर से कैंची बनाते हुए पिंडली के ऊपर ले आओ और गाँठ बाँध दो और आहत अंग को जल से तर करते रहो।

पिंडली की हड्डी की चोट—तुम जानती हो कि नली की हड्डी, अर्थात् नरोह—जिसे अनुजंघास्थि भी कहते हैं—बाहु की हड्डी की भाँति दो हुआ करती हैं। अत चोट लगने से, गिर पड़ने से अथवा कोई गाड़ी इत्यादि गल्वी वस्तु के पहियों के नीचे कुचल जाने से इनमें से ऊपर की हड्डी अथवा युगल हड्डियाँ टूट जाती हैं।

लक्षण—यदि दोनों हड्डियाँ टूट जायँ तो उनकी पहचान कठिन नहीं, क्योंकि एक तो हड्डियों के पृथक् हो जाने से पाँव का सञ्चालन कराल होता है, दूसरे यह कि पाँव खण्डित स्थान से विरल होकर झूलने लगता है, परन्तु यदि एक ही हड्डी टूटे, तब भी पाँव बेकाम हो जाता है और पाँव को हिलाना डुलाना कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त आहत अग सूज जाता है और पीड़ा अधिक होने लगती है।

बन्धन-विधि—पिंडली की हड्डी बाँधने की दो प्रणालियाँ हैं—एक तो सामान्य खपचों से, दूसरी खपचों का झोला बना कर।

१—खपचों के बन्धन के लिए दो खपचें चौड़ी-चौड़ी एकत्र करनी चाहिए जो लम्बाई में घुटने से ऊपर और एड़ी से नीचे निकलती रहें।

पिंडली का बन्धन
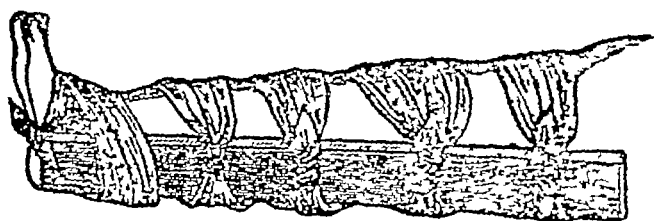
छ पट्टियाँ, पाँच पतली और एक चौड़ी। खपचें न मिल सकें तो छतरी, छड़ी या जो भी पदार्थ प्राप्त हो सके, प्रयोग किये जा सकते हैं। आहत को चित लिटाकर टूटी हुई टाँग को शनैः शनैः नीचे की ओर खींचो।

जब दोनों टाँगें सम हो जायें और हड्डी का जोड मिल जाय तो भीतर की ओर एक खपच लगाकर दोनों पैरों को मिलाकर एक पतली पट्टी से टखने के पास बाँध दो। फिर एक खपच आहत टाँग के बाहर की ओर लगाकर एक पतली पट्टी से दोनों खपचों को घुटने के ऊपर बाँध दो। दो पतली पट्टियाँ और लो और टूटी हुई हड्डी के जोड के ऊपर और नीचे एक-एक बाँध दो। जब बन्धन हो जाये तो चौथी पट्टी को खपचों के नीचे की ओर बाँधो। तत्पश्चात् दोनों छोरों की कैंची बनाकर एडी के नीचे ले जाकर गाँठ बाँध दो जैसा कि जघास्थि के वर्णन में बताया गया है। अन्त में चौडी पट्टी लो और दोनों टाँगों को मिलाकर घुटने के ऊपर बाँध दो, परन्तु यह ध्यान रहे सारी पट्टियों की गाँठें बाहर की खपच के ऊपर रहें।

(११) पाँव की चोट के बन्धन

पाँव पर कोई भारी वस्तु गिर जाय अथवा वह किसी वस्तु के नीचे दब जाय तो वह कुचला जाता है या उसकी हड्डी टूट जाती है। ऐसी दशा में पाँव सूज जाता है। ऐसा होने पर जूता या मोजा तत्काल उतार देना चाहिए। उतारने की विधि यह है कि इन वस्तुओं को पीछे से काट दो और शान्तिपूर्वक निकाल लो जिससे पाँव हिले-डुले नहीं। तदुपरान्त, पाँवों की लम्बाई के बराबर एक खपच लो और उसको गद्दी लगाकर गुदगुदा कर लो और खपच को तलुए लगाकर पतली पट्टी से बाँध दो।

पाँव का बन्धन—पतली पट्टी को लेकर उसके बीच का भाग पंजे पर रखो और दोनों छोर तालू के नीचे लेकर कैंची बना दो। सिरों को एडी पर ले आओ। वहाँ फिर पैर के नीचे कैंची बनाते हुए सिरों को टखनों पर ले आओ और टखनों पर तीसरी कैंची बनाकर सिरों को तालू के नीचे लाकर गाँठ बाँध दो।
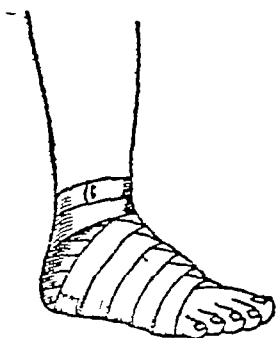
Bandage of the Foot

पट्टी द्वारा पाँव या तालू का बन्धन

तालुओं का बन्धन चिट की पट्टी से भी किया जाता है। जैसा कि चित्र से प्रकट है।

पाँव के घाव का बन्धन—पाँव में यदि घाव हो गया हो अथवा चोट चपेट लगी हो तो उसका बन्धन तिकोनी पट्टी से किया जाता है। पाँव की मरहम पट्टी करके तिकोनी पट्टी को फैलाकर एक पटरे पर रख दो और पाँव को पट्टी के बीचोंबीच इस प्रकार रखो कि अंगूठा पट्टी की नोक की ओर रहे। अब पट्टी की नोक को उठा टखने पर ले आओ, दोनों पट्टियों को उठाकर टखने
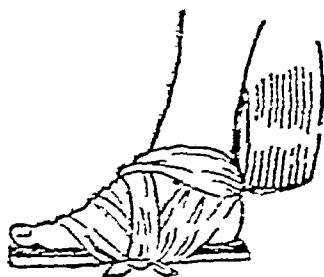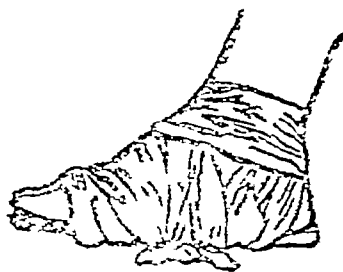
पाँवों का बन्धन

के चारों ओर एक फेरा दो, पाँव पर कैंची बनाते हुए तालू के नीचे ले आओ, फिर ऊपर लाकर पंजे पर गाँठ बाँध दो और नोक को पाँव पर उलटकर कलिए से सम्बद्ध कर दो।

४—क्षत को उठाने और ले जाने की विधियाँ

तुम जानती हो कि हिलने-डुलने और धक्का लगने में क्षत को भयकर यातना होती है। यही नहीं यातना के साथ ही साथ घाव के विदीर्ण हो जाने और हड्डी के स्थान-भ्रष्ट हो जाने का भय भी रहता है। इसलिए क्षत को उठाने और एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिए कुछ नियम निश्चित किये गये हैं, जिनका जानना मनुष्य-मात्र के लिए आवश्यक है।

यदि क्षतवाहक एक ही व्यक्ति हो तो चार विधियों से काम लेना चाहिए :—

(१) पार्श्व-वाहन—यदि किसी व्यक्ति के नीचे के धड में चोट लगी हो, परन्तु अस्थि भङ्ग न हुआ हो तो सहायक (प्रारम्भिक चिकित्सक) क्षत की उस बगल में खडा हो जिधर चोट लगी है और क्षत का हाथ अपनी ग्रीवा में डालकर हाथ को कलाई पर से पकड ले। अब क्षत अपना आहत पाँव ऊपर को उठा ले और सहायक के कन्धे के सहारे एक टाँग से कूदता हुआ उसके साथ चले।

(२) पृष्ठ वाहन—दूसरी विधि यह है कि सहायक उसको अपनी पीठ पर बैठा ले और क्षत अपने दोनों हाथ उसके गले में डालकर काँखों को अपने घुटनों से दबाये, परन्तु यदि घुटने इसके लिए असक्त हो तो सहायक उन्हें अपने हाथों के पकड़ ले अथवा अपने दोनों हाथ अपनी पीठ पर ले जाकर पकड ले और क्षत को इस प्रकार थोडा सहारा दे दे।

(३) पृष्ठ-भार वाहन—तीसरी विधि यह है कि यदि क्षत खडा हो सकता हो तो उसे खड़ा करके सहायक उसके पीछे जाय और थोडा-सा झुककर अपने दोनों हाथ क्षत की काँखों में डाल दे और काँखों के नीचे क्षत को पकड़कर उसे अपनी पीठ पर चित्त लिटा ले और

खड़ा हो जाये। जब उतारना हो तब सहायक अपना बायाँ जानू भूमि पर टेके और दाहिने पर बल देकर बैठ जाय और क्षत को धीरे धीरे बिठा दे।

(४) दमकल वाहन—यदि कोई व्यक्ति मूर्च्छित हो, या उसके नीचे के धड में बहुत चोट लग गई हो तो ले जाने के लिए उसे पट्ट लिटा दो। सहायक क्षत के सिरहाने इस प्रकार से पीठ करे कि उसका एक एक जानू क्षत की दाहिनी ओर भूमि पर रहे और दूसरा बाईं ओर। अपने हाथों से क्षत की काँखों के नीचे डालकर उसको घुटनों के बल कर दे फिर हाथों को कटि में डालकर क्षत को उठा ले और पाँव के बल करके क्षत की दाहिनी कलाई अपने बाएँ हाथ से पकड़कर उसकी दाहिनी बाहु-वल्लरी अपनी ग्रीवा के चारों ओर पहुँचा दे और इतना झुक जाये कि उसका कंधा क्षत के चड्ढा के बराबर हो जाये, फिर अपना दाहिना हाथ क्षत की जाँघों में डालकर क्षत के शरीर का भार अपने दाहिने कन्धे पर सहार ले और हाथ को क्षत की दाहिनी टाँग के ऊपर से लाकर उसकी कलाई को, जो अब तक हाथ में थी, पकड़ ले, बाएँ हाथ को छूँछा कर ले और खड़ा हो जाय।

यह वह दशाएँ हैं जिनमें एक ही सहायक आवश्यक है। परन्तु यदि दो सहायक उपस्थित हो, तो क्षत को ले जाने की तीन निम्नांकित रीतियाँ प्रयोग में लाई जा सकती हैं —

घायलों की टिकठी—साधारणतया रोगियों और आहतों को खटिया पर लिटाकर ले जाते हैं, परन्तु खटिया से उतारने चढ़ाने में कष्ट होता है। इसलिए घायलों को टिकठी अधिक सुविधाजनक है।

विष्टर-वाहन (कुरसी की टिकठी)—यह टिकठी बड़ी सुगमता से तैयार हो जाती है। यदि आहत मनुष्य बैठ सकता हो तो उसे एक कुरसी पर बिठाकर कुरसी के दोनों पार्श्व में एक एक बाँस कुरसी

के पाँव में बाँध दिया जाय और दोनों सहायक बाँसों को हाथों पर उठा-कर क्षत को ले जायँ।

पर्यंकरूपक वाहन—यदि क्षत बैठने के योग्य न हो तो दो लाठियाँ अथवा बाँस ले करके दरी, चाँदनी, दोहर, टाट के खुले हुए बोरे, कम्बल, दुलाई इत्यादि भूमि पर बिछा दो। दोनों लकड़ियाँ गच के किनारे पर रखकर दोनों ओर से लपेटना प्रारम्भ करो, यहाँ तक कि एक मनुष्य के लेटने भर को स्थान रह जाय। दृढ़ता के लिए कपड़े में दोनों ओर डंडों के पास छेद करके दो-तीन स्थानों पर बाँध दो। इन लकड़ियों के बीच की दूरी स्थापित रखने के लिए दो डंडे टिकठी की चौड़ाई की नाप के दोनों लकड़ियों के बीच में लगाओ। पर्यंक रूप टिकटी तैयार हो गई। क्षत को इस पर लिटाकर दोनों सहायक लकड़ियों को हाथों पर उठा करके जहाँ चाहें, ले जा सकते हैं।

यदि किसी अवसर पर दरी आदि न मिल सके तो दो ओवर कोटों को आमने-सामने फैलाकर पर्यंक-रूप टिकटी बनाई जा सकती है। कोटों की आस्तीनों को भीतर की ओर मोड़कर उनमें बाँस डाल दो फिर कोटों में बटन लगाकर रीति के अनुसार पर्यंक रूप की टिकटी तैयार कर लो।

बाहु-विष्टर—हाथ की कुरसी अनेक प्रकार से बनाई जा सकती है इनका हम विस्तीर्ण वर्णन करेंगे।

हस्तद्वयी विष्टर—दोहत्थी बैठक दो प्रकार की होती है, एक तो इस प्रकार से कि दोनों सहायक पार्श्व में पार्श्व मिलाकर खड़े हों और एक अपने दाहिने हाथ से और दूसरा बाएँ हाथ से पंजा में पंजा डालकर बैठक बनाये और क्षत को उस पर बैठाये और क्षत अपने दोनों हाथों को सहायकों की ग्रीवा में सहारे के लिए डाल दे।

दूसरी हस्तद्वयी विष्टर इस प्रकार से बनाई जाती है कि दोनों सहा-यक अपने हाथों की उँगलियों को काँटे की आकृति में मोड़ लें और

हाथ को ऊपर नीचे रखकर बैठक बना लें। यह बैठक काँटेदार बैठक कहलाती है। ऐसी बैठक में सहायक हस्तच्छद (दस्ताने) पहन लेते हैं अथवा हाथ में रूमाल रख लेते हैं, जिससे उँगलियाँ न छिलें।

हस्त त्रयी-विष्टर—यह विष्टर भी ऐसे आहत के वाहन करने में काम आती है, जिसका अधो-अंग बेकाम हो, परन्तु ऊपर का शरीर ऐसा हो, जो स्वयं सँभल सके। इस बैठक के बनाने की विधि यह है कि पहले क्षत के आहत पार्श्व का विचार करो कि चोट दाहिनी टाँग में है या बाईं में। यदि बाईं में हो तो दोनों सहायक परस्पर सम्मुख खड़े हों, एक मनुष्य अपनी बाईं कलाई को अपने दाहिने हाथ से और दूसरे हाथ की दाहिनी कलाई को अपने बाएँ हाथ से पकड़े और दूसरा व्यक्ति पहले मनुष्य की दाहिनी कलाई को अपने दाहिने हाथ से पकड़ ले और अपना बायाँ हाथ क्षत की बाईं टाँग को सहारा देने के लिए छूछा रखे। जब यह बैठक प्रस्तुत हो जाये, तब झुककर क्षत को उस पर बिठा दो। क्षत को चाहिए कि अपने दोनों हाथ सहायकों की ग्रीवा में डाल ले। उसके पश्चात् खड़े होकर क्षत को ले जायें। यदि क्षत की दाहिनी टाँग में चोट लगी हो और सहायक उसे सहारा देना चाहता हो तो विष्टर की रचना बदल जायगी और दाहिने की ठौर बाएँ और बाएँ की ठौर दाहिने का उलट-फेर हो जायेगा। इस प्रकार से सहायक का दाहिना हाथ क्षत की दाहिनी टाँग को सहारा देने को छूछा होगा।

हस्त चतुष्टयी-विष्टर—यह बैठक भी ऐसे ही आहतों के लिए उपयुक्त होती है, जिसकी चर्चा ऊपर की गई है। इसमें दोनों सहायकों के दोनों हाथ घिरे रहते हैं और वह सामने चलने के ठौर पार्श्व की दिशि में चलते हैं। उसके बनाने की विधि यह है कि दोनों सहायक परस्पर समक्ष खड़े हों और अपने दाहिने हाथों से अपनी बाईं कलाइयों को पकड़े और फिर बाएँ हाथों से एक-दूसरे की दाहिनी कलाइयों को

पकड़कर बैठक बना लें और क्षत को इस बिष्टर पर बिठाकर और उसके हाथ अपनी ग्रीवा में डालकर ले जायें।

प्रश्न

(१) हड्डियाँ प्रायः किन-किन कारणों से टूटती हैं ?

(२) हड्डियों के साधारण और कठिन आघात में क्या भेद है ?

(३) हड्डी के टूटने पर अङ्ग में क्या परिवर्तन हो जाता है ?

(४) खोपड़ी की हड्डी टूटने पर कैसी चिकित्सा करोगी ?

(५) शरीर के किन किन स्थानों की हड्डी टूटने पर खपच्चियों की आवश्यकता

(६) भुजायें किन-किन स्थानों पर टूटती हैं। प्रत्येक अवस्था में कैसी चिकित्सा करोगी ?

(७) हँसली टूटने की कौन-सी पहचान है ?

(८) घुटने की हड्डी टूटने पर कैसी चिकित्सा करोगी ?

(९) (अ) जाँघ की हड्डी की चिकित्सा में कितनी लम्बी खपचों की आवश्यकता होती है ?

(ब) और कितनी पट्टियों की ज़रूरत पड़ती है ?

(स) वे पट्टियाँ किन किन स्थानों पर बाँधी जाती हैं ?

(१०) पैर कुचल जाने पर उसे किस प्रकार बाँधना चाहिए ?

अध्याय १४

गृह-प्रबन्ध

१—गृह-जीवन के दैनिक कार्य

गृह-स्वामिनी के कर्त्तव्य—स्त्रियाँ गृह देवियाँ होती हैं और गृहस्थी का सुचारु रूप से चलना स्त्रियों की योग्यता पर ही निर्भर है। इसी लिए स्त्री को गृह-लक्ष्मी, गृहिणी, गृहदेवी और स्वामिनी कहा गया है। पर घर का समस्त कार्य सुचारु और सुव्यवस्थित रूप से चलाना साधारण काम नहीं है। बुद्धि और समझ की इस काय में बड़ी ही आवश्यकता है। अत स्त्रियों का पढना-लिखना उतना ही आवश्यक है जितना गृहस्थी की क्रियात्मक शिक्षा होना।

गृह-स्वामिनी को समय के अनुसार अपने रूप को बदलना चाहिए। एक सफल गृहिणी दिन भर में कभी स्वामिनी, कभी दासी, कभी माँ, कभी शिक्षिका और कभी पत्नी का रूप धारण करती है। ऐसा करते समय वह न तो कभी दुखी ही होती है और न [illegible] घर में सुमति और कुमति की उत्पत्ति का शत-प्रतिशत उत्तरदायित्व गृहिणी पर रहता है। सफल गृहिणी कार्य करते समय दासी, भोजन परोसते, बनाते और खिलाते समय माँ, गृहस्थी में कुमति के स्थान पर सुमति देते समय तथा बालोपयोगी कर्तव्यों की शिक्षा देते समय शिक्षिका तथा पति के सम्मुख उपस्थित होते समय लज्जावती नववधू का रूप धारण करती है।

गृह-स्वामिनी को निम्नलिखित काम करने पड़ने हैं। यदि वह इन्हे न भी करे तो उसका आदेश ही काफी है।

१. भोजन—इसके अन्तगत सौदा ख़रीदना, भण्डारघर का प्रबन्ध और उसकी देख-भाल से लेकर खाना पकाना और खिलाना तथा वर्तनों की सफ़ाई आदि आता है।

२. रक्षा—इसमें घर की सफ़ाई, फ़र्नीचर, गहने-कपड़े की सफ़ाई और मरम्मत, बगीचे की निगरानी और पालतू जानवर की देख-भाल सम्मिलित है।

३. कपड़े—इसके अन्दर कपड़े की कटाई, सिलाई, फटे कपड़ों की सिलाई और उसका धोना शामिल है।

४. बच्चों की देख-भाल—बच्चों को खिलाने पिलाने के अतिरिक्त उनको नहलाना धुलाना, प्यार से प्रारम्भिक शिक्षा देना, उन्हे खेल कूद में लगाना आदि बातें शामिल है।

५ स्वास्थ्य—इस विभाग के अन्तर्गत उपर्युक्त चारों बातों का कार्य स्वास्थ्य की दृष्टि से है। परन्तु शरीर-रचना का साधारण ज्ञान, रोगी की सेवा, प्रारम्भिक चिकित्सा आदि का ज्ञान वाञ्छनीय है।

बहुत-से घरों में गृहस्वामिनी प्रत्येक कार्य स्वय करती है, क्योंकि उसकी गृहस्थी इतनी ही होती है जिसे वह सॅभाल लेती है। मध्यम श्रेणी की गृहस्थी में गृहस्वामिनी की सहायता उसकी लडकियाँ, बहुएँ, सास आदि करती हैं। एक-आध नौकर ऊपर के काम की देख रेख के लिए होता है। बड़ी गृहस्थी में गृहस्वामिनी अधिकतर आदेश देती है। कुछ काम—विशेषकर भोजन सम्बन्धी और बच्चों की देख-भाल—वह स्वय दूसरों के साथ करती है और बाकी काम नौकरों से लेती है। इससे स्पष्ट है कि गृहस्वामिनी को प्रत्येक कार्य का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।

समय का विभाजन—काम में समय का बँटवारा होना चाहिए। इससे काम करने में सुभीता रहता है और वह काम होता भी अच्छी तरह है। सवेरे यदि हम यह तय कर लें कि अमुक आदमी इतने कपड़े सिये, अमुक इतने बर्तनों में पालिश करे, अमुक इतने कपड़े धोकर इस्त्री करे और अमुक खाना पकाकर बच्चों की देखभाल करे और यह सब काम १२ बजे तक निपट जाय तो हममें समय ज्ञान हो जाने से अद्भुत स्फूर्ति से काम करने की आदत पड़ जायेगी और काम भी अच्छा होगा।

एक समय में एक ही काम अच्छी तरह हो सकता है यह बात सर्वथा सत्य है, परन्तु गृहस्थी में समय बचाने के लिए दो तीन काम एक साथ किये जा सकते हैं।

जब स्त्रियाँ चूल्हा जलाकर दाल का अदहन आग पर रख देती हैं तो चूल्हे के पास बैठना उतना जरूरी नहीं है। इस बीच में साबुन लगाना या सिलाई करना या घर का हिसाब करना सम्भव न होगा परन्तु आटा गूँधा जा सकता है मसाला पीसा जा सकता है और इसी प्रकार का छोटा-मोटा रसोईघर का काम किया जा सकता है। जहाँ स्वय खाना पकानेवाला स्टोव हो, वहाँ दूसरे काम किये जा सकते हैं।

यद्यपि गृहस्थी में टाइमटेबिल बनाने की आवश्यकता नहीं समझी जाती, फिर भी नीचे लिखे हुए ढंग से काम करना अधिक सुविधा-जनक है।

१ प्रात उठकर शौच आदि से निवृत्त होना, २ घर की सफाई करना, ३ छोटे बच्चों की देख-भाल करना, ४ नाश्ता कराना, ५ स्नान कर पूजा-पाठ करना, ६ खाना बनाना, ७ लोगों को खिलाना और खाना, ८ बर्तनों की सफाई करना, ९ आराम, १० कोई विशेष काम करना, ११ दोपहर के बाद हलका नाश्ता करना, १२

आराम और गपशप और बच्चों के साथ खेलना, १३ शाम का खाना बनाना, १४. लोगों को खिलाकर खाना, १५. बर्तनों की सफ़ाई करना १६ आराम।

विश्राम का उपयोग—फ़ुरसत के वक्त में स्त्रियाँ क्या करें, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। पढ़ी लिखी स्त्रियाँ सम्भव है सीना-पिरोना, चित्र-कला, ऊन और सूत की कारीगरी, जाली, झालर आदि की कारीगरी का काम करें या पुस्तकें पढ़ें, परन्तु मध्यम श्रेणी की स्त्रियों के लिए यह मनोविनोद स्वयं खर्च का एक मद हो जाता है। यदि वे चर्खा चलाकर सूत कात सकें, तो बेकारी के दुर्गुणों से बचने के साथ ही साथ अपने घर की मामूली आय में थोडी बहुत वृद्धि कर सकती है।

गृहिणी को बाहर टहलने जाना और खुली हवा में रहना ज़रूरी है। उसी के स्वास्थ्य पर घर की गाडी चलती है, इसलिए उसे दूसरों की सुविधा को देखते हुए अपने स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देना चाहिए। यह इस दृष्टि से और भी अधिक आवश्यक है कि स्त्रियों ने चक्की पीसना, दही मथना, मूसल चलाना आदि परिश्रम के कामों की तिलाञ्जलि दे दी है। इसलिए हर रोज हलका-सा व्यायाम नियमित समय पर करना बहुत जरूरी है।

२—रसोईघर की देख-भाल

स्त्रियों को रसोईघर की देख-भाल करनी चाहिए। यह उनके जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है। पाक विद्या में उन्हे निपुण होना चाहिए। इस सम्बन्ध में तुम्हे अभी से परिश्रम करना चाहिए। रसोई प्रेम और स्वच्छता से बनानी चाहिए।

स्वच्छता—गृह-स्वामिनी की शारीरिक स्वच्छता का आशय यह है कि वह शुद्ध रीति से स्नान करके रसोईघर में आये। उसके कपडे

साफ़ हों, नाख़ून गन्दे न हों, बाल मैले न हों। गन्दे कपड़े होने से किसी न किसी रूप में भोजन में गन्दगी आ जाती है। हाथ से सब चीजें छूने की आदत अच्छी नहीं है, लेकिन आटा गूँधना, साग-भाजी छीलना-काटना इनमें हाथ के नाख़ून का अंश आ जाता है। इसलिए नाख़ून खूब साफ़ होने चाहिए। बाल इधर-उधर फैले हुए हों तो खाने की चीजों में उनका गिरना स्वाभाविक है और पसीना, धूल आदि के कारण वे हानिकर हैं।

प्राचीन काल में भारतीय स्त्रियाँ अधिकांश में रसोई के काम के लिए दूसरे वस्त्रों का प्रयोग करती थीं और अब भी करती हैं। ये वस्त्र अधिकतर साधारण व्यवहार के वस्त्रों की अपेक्षा अधिक गंदे रहते हैं। उनको ऐसा न करना चाहिए।

शारीरिक स्वच्छता के अतिरिक्त मानसिक शान्ति अत्यन्त आवश्यक है। क्रोध में या किसी से लड़-झगड़कर खाना बनाना ठीक नहीं। भोजन पर खाना बनानेवाले के मानसिक विकारों का कितना प्रभाव पड़ता है, यह मनोविज्ञान का विषय है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि भोजन ही क्या क्रोध में किया हुआ कोई भी कार्य हितकर नहीं। शान्त, सुस्थिर और एकाग्रचित्त से रसोईघर की व्यवस्था होनी चाहिए।

इन सब बातों के साथ ही साथ भोजन की चीजों की सफ़ाई का नम्बर प्रथम है। प्रतिदिन काम में आनेवाली खाद्य-सामग्री—गेहूँ, [illegible]ना, दाल, चावल, घी आदि शु[illegible]ल [illegible] ख़रीदे जायँ। [illegible]न्हें पहले धो लिया जाय, फिर पिसवाया जाय। कंकड़ आदि साफ़ कर दिये जायँ। घी-दूध के लिए विशेष रूप से सतर्क रहना चाहिए, क्योंकि आजकल मिलावट का बाज़ार गरम है। शाक-भाजी ताज़ी हो।

घर की मालकिन को निम्नलिखित बातों पर ध्यान रखना चाहिए :—

रसोईघर में छोटे बच्चों को लेकर बैठना ठीक नहीं। प्रायः देखा जाता है कि बच्चे पाख़ाना-पेशाब कर देते हैं या दूध गिरा देते हैं। मक्खियाँ उस गन्दगी पर बैठकर भोजन की सामग्री पर बैठती हैं और उसे गन्दा कर देती है। इसी लिए छोटे बच्चों को जहाँ तक हो सके, रसोई बनाते समय अपने पास न रखना चाहिए।

रसोईघर में दो तौलिये होने चाहिए। एक हाथ साफ़ करने और दूसरा बर्तन पोंछने के लिए। खाना परोसते समय बर्तन अवश्य पोंछ लेने चाहिए।

भोजन—भोजन कैसा हो और किस प्रकार बनाना चाहिए, यह एक अलग ही विषय है, परन्तु घर की मालकिन को यह जानना आवश्यक है कि हमारे भोजन में वनस्पतिजन्य, प्राणिजन्य और लवण यथेष्ट मात्रा में हैं या नहीं। भोजन में स्टार्च, प्रोटीन, कार्बो-हाइड्रेट (कार्बोज) और विटैमिन परिमित रूप में है या नहीं। भोजन सादा और हलका तथा पुष्टिकारक होना चाहिए। एक ही प्रकार का खाना रोज़-रोज़ खाने से अरुचि हो जाती है। इसलिए भोजन में परिवर्तन अत्यन्त आवश्यक है।

मालकिन को खाने-पीने की चीज़ों के गुण जानना चाहिए। अनाज, मसाले, दूध, दही, घी तेल, साग-भाजी, जल—इनके गुण जानना चाहिए। किस ऋतु में और किस अवस्था में कैसा भोजन वाञ्छनीय है, इनका ज्ञान न होने से या अधूरा ज्ञान होने से घर में बीमारी बिना बुलाये आ सकती है। अमुक रोगी को अमुक चीज अच्छी नहीं, परन्तु अमुक को वही चीज़ अमृत है, इसका साधारण ज्ञान होना चाहिए।

'पेय' पदार्थों का साधारण ज्ञान वाञ्छनीय है। प्रातः और रात को दूध ही सबसे अच्छा पेय है। परन्तु चाय, काफी, कोको, भंग आदि भी पेय हैं। अच्छा तो यह है कि इनका प्रयोग ही न किया जाय, परन्तु

आवश्यकता पड़ने पर इनको यथोचित रीति से तैयार करने का ज्ञान होना चाहिए। ठंढाई गर्मी के दिनों में लाभदायक है। मादक वस्तुओं के सेवन से जो हानि होती है, उसका ज्ञान आवश्यक है ताकि गृहस्थी में उसका उपयोग न हो।

भोजन का कमरा—यदि गृहस्वामी की आय अधिक हो तो घर में रेडियो का प्रबन्ध होना आवश्यक है। भोजन का कमरा स्वच्छ और उसमें एक जालीदार आलमारी हो। खाने के कमरे या आस पास के कमरे में रेडियो का होना अच्छा है। यदि रेडियो न हो तो ग्रामोफोन भी अच्छा है। भोजन के समय यदि संगीत हो तो वातावरण प्रिय, मनोहारी और सुखदायक बन जाता है। संगीत मस्तिष्क को समस्त चिन्ताओं और दु:खों से एक दूसरे ही लोक में ले जाता है जहाँ आनन्द ही आनन्द है। ऐसे वातावरण में खाया हुआ भोजन मस्तिष्क की शान्ति और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद होता है।

भोजन परोसना—भोजन बनाने के अतिरिक्त भोजन परोसना और खिलाना भी गृहस्वामिनी का एक कर्त्तव्य है। यह भोजन बनाने से बिलकुल विभिन्न, परन्तु अधिक महत्त्वपूर्ण विषय है। भोजन परोसने से पहले अपने हाथ साफ़ कर लेने चाहिए। बर्तनों को कपड़े से पोंछ लेना चाहिए, ताकि मिट्टी, बाल आदि न चिपके रहें। जो चीज परोसी जाय वह न तो बहुत ज़्यादा और न बहुत कम हो। बार-बार प्रेमपूर्वक खिलाना बुरा नहीं, परन्तु जिद करना भी ठीक नहीं होता। भोजन परोसते समय गृहस्वामिनी को प्रसन्नचित्त रहना चाहिए। उससे भोजन करनेवालों की मानसिक चिन्ता दूर हो जाती है।

३—आय-व्यय का चिट्ठा

चिट्ठा रखने की आवश्यकता—घर की जितनी आमदनी हो, उसी के अनुसार ख़र्च हो—इसको दृष्टिगत रखने पर ही गृहस्थी में सुख-

न्त रह सकती है। जहाँ आय कम और ख़र्च अधिक है, वहाँ स्वामिनी की रातें इसी चिन्ता में बीतती हैं कि अमुक ख़र्च कैसे हो। इसका परिणाम गृहस्थी के प्रत्येक मेम्बर पर पड़ता है। अतः आय-व्यय का हिसाब रखना और अपनी आवश्यकताओं को आमदनी के भीतर पूरा करना—यह काम प्रत्येक गृहस्थी के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

हमारी आवश्यकताएँ—हमारी आमदनी चाहे अधिक हो, साधारण हो या कम हो, यह सत्य है कि हमें अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति उसी से करनी होती है। वे आवश्यकताएँ हैं —१—भोजन, २—रहने के लिए मकान (शहरों में जहाँ निजी मकान न हों और किराया देना पड़ता हो), ३—कपड़े आदि, ४—रोगी होने पर दवा-दारू का प्रबन्ध, ५—बच्चों की शिक्षा।

मध्यम और अधिक आमदनीवाले लोग उपर्युक्त पाँच आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त कुछ पैसा नौकर चाकर, यात्रा, मनोविनोद, मानसिक विकास, दान-पुण्य और वृद्धावस्था के लिए (बीमे आदि में) ख़र्च कर सकते हैं, परन्तु ये सब प्रथम आवश्यकताओं से परे की बातें हैं। इनका होना ज़रूरी है, लेकिन उसी हालत में जब हमारी प्रथम प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाय। इस प्रकार जब हम आमदनी को ख़र्च करने के लिए अलग-अलग मद तय कर लेते हैं तो हम आय व्यय का चिट्ठा तैयार करते हैं।

व्यय का चिट्ठा—कल्पना कीजिए आपकी ६०) और १००) मासिक आमदनी हो और घर में ८ प्राणी (४ बड़े और ४ बच्चे) हों तो साधारणतया उनका चिट्ठा इस प्रकार होगा।

६०) मासिक ख़र्च का चिट्ठा—घर में भोजन का ख़र्च सबसे अधिक होगा। दूध, घी और खाने-पीने के सामान पर आय का लगभग $\frac{3}{4}$ भाग ख़र्च होगा। मकान के किराये के लिए ४) से ५) तक दिये

जा सकते हैं। २) या ३) कपड़ों के लिए (धुलाई समेत), ॥) डाक-ख़र्च, ॥) टूटी फूटी चीजों की मरम्मत के लिए और २) या ३) आकस्मिक घटनाओं के लिए। ४४) में ८ आदमियों के भोजन के हिसाब से लगभग ५॥) फ़ी आदमी का औसत आता है, परन्तु इस रक़म से साधारण स्वास्थ्य ही रक्खा जा सकता है।

१००) मासिक खर्च का चिट्ठा—१००) की आमदनी होने पर सबसे पहले भोजन के ख़र्च में बढ़ती होगी। प्रति मनुष्य का औसतन ७) से ६) तक खर्च होगा। १०) से १५) तक मकान का किराया दिया जा सकता है। १०) कपड़ों के लिए हुए। इस प्रकार भोजन पर ६०), मकान किराया १०), कपड़े १०), कुल ८०) प्रारम्भिक आवश्यकताओं के लिए हुए। बाक़ी २०) बच्चों की स्कूल-फ़ीस रोशनी के लिए, चिट्ठी-पत्री, मनोविनोद इत्यादि के लिए शेष बचते हैं।

दो प्रकार की भिन्न भिन्न कल्पित आय व्यय के चिट्ठे से तुम्हें यह विदित हो गया होगा कि हमारा अधिक खर्च भोजन और अन्य आवश्यकताओं पर होता है। उनमें यथाविधि परिवर्तन होना सम्भव है, परन्तु यह लोगों की आवश्यकताओं और उनके रहने के ढंग पर निर्भर करेगा।

अपने घर का पार साल का आय व्यय का चिट्ठा निम्नलिखित ढंग से तैयार करो या अपनी माँ के किसी मित्र के घर का चिट्ठा तैयार करो और देखो कि कल्पित चिट्ठे से इसमें कितनी समानता है।

घर की आमदनी—	रु० आ० पा०	घर के लोगों की संख्या
पिता की आय		
व्यापार से आय	.	
श्रीयुत 'अ' से		
श्रीयुत 'ब' से	...	
कुल	..	

घर का ख़र्च	रु०	आ०	पा०
भोजन	...	..	...
कपड़ा		...	
मकान का किराया	..		.
इक्का गाड़ी	.	...	
टैक्स		...	
दियाबत्ती	...	...	..
विद्या-ख़र्च			
(तुम्हारा और छोटी बहिन का)			.
डाक्टर का बिल			..
सफ़र ख़र्च			
बीमा	.		...
नौकर की तनख्वाह	...	...	....
धुलाई	. .		..
फ़ुटकर	...		..
मनोविनोद आदि		...	
कुल	...	...	.

यह कोई आवश्यक नहीं कि ख़र्च की जितनी मदें हैं, उन सब में कुछ न कुछ लिखा ही जाय। कुछ लोगों का बीमा का ख़र्च न हो। सम्भव है नौकर की तनख्वाह न हो। कुछ लोगों के और ख़र्चे हों। कुछ लोगों की आमदनी का केवल एक ही जरिया हो, दूसरों से कुछ न मिलता हो।

आवश्यक बात—गृहस्वामिनी को हिसाब के सम्बन्ध में चार बातें स्मरण रखनी चाहिए।

१—सामान इकट्ठा ख़रीदा जाय या थोड़ा-थोड़ा,

२—नक़द देकर ख़रीदा जाय या उधार,

३—सस्ती चीज़ें ख़रीदी जायँ या नहीं,

४—चीज़ें स्थानीय हों या बाहर से ख़रीदी जायँ।

१—एक बार सब सामान ख़रीद लेना अधिक सुविधाजनक है। गेहूँ, चना, दाल, चावल, घी, तेल, मसाला, गुड़ आदि ऐसी चीज़ें जो ख़राब नहीं होतीं, ऐसे मौसम में जब उनकी नई फ़सल हो, ख़रीदी जा सकती हैं, परन्तु इसका ध्यान रहे कि इनके रखने का उचित प्रबन्ध होना चाहिए।

२—नक़द देकर चीज लेने से यह लाभ है कि हम सब जगह देख-भालकर, मोल-भाव कर, अच्छी चीज ख़रीद सकते हैं। उधार ख़रीदने पर एक या दो स्थान से जैसी चीज बनियों या दूकानदारों के पास होगी, वैसी ही ले लेनी होगी। फिर उधार लेने पर इसका ख्याल नहीं रहता कि कितना सौदा आ गया और कितना आता जाता है।

३—चीज़ें मौसम पर ख़रीदने से सस्ती मिलती हैं अन्यथा महँगी। इसलिए अचार रखने के लिए आम, नीबू, आँवला आदि और अनाज मौसम पर ख़रीदने चाहिए। सस्ती चीज़ें यदि अच्छी हों तो ख़रीदने में कोई हानि नहीं, लेकिन इसमें अधिकतर धोका रहता है।

४—अधिकतर हमें अपने देश की बनी हुई चीज़ें ही ख़रीदनी चाहिए। जो चीज हमें स्थानीय बाजार में मिल सकती है, उसे बाहर से मँगाने की कोई आवश्यकता नहीं। स्थानीय कार्य-धन्धों को प्रोत्साहन देना चाहिए, यद्यपि उन चीजों के दामों की तुलना बाहर से मिलनेवाली चीजों से करते रहना चाहिए।

सहयोगी स्टोर की उपयोगिता—विलायत में अनेक जगह सहयोगी स्टोर्स खुले हैं। मान लो दस आदमी दस-दस रुपया देकर १००) इकट्ठे करते हैं। १००) की पूँजी से एक आदमी दूकान करता

है। इस आदमी को इन दसों आदमियों ने दूकान की देखभाल और बिक्री का प्रबन्धक बना दिया है। इस दूकान में जो लाभ होता है उसका ५ फीसदी शेयरहोल्डरों को दे दिया जाता है और बाक़ी खरीदारों को दिया जाता है। जो हिस्सेदार वहीं से चीजें लेते हे, उनको दूसरे खरीदारों की अपेक्षा दूना लाभ दिया जाता है। इस स्टोर में सामान अच्छा मिलता है, क्योंकि इसका लाभ किसी एक व्यक्ति को नहीं मिलता जिससे चीज ख़राब खरीदकर बेची जाय।

हिसाब—जो भी हो, चाहे हम माल दूकानों से लें या बाज़ार में खरीदें हमें अपने खर्चे का पूरा-पूरा हिसाब रखना चाहिए, ताकि महीने के अन्त में यह पता लग जाय कि हमने बजट में जिस-जिस मद्द में जो-जो रक़म रक्खी थी, उसमें किस कारण क्या-क्या परिवर्तन हुआ। इस तरह का हिसाब दो कापियों में रखा जा सकता है। एक में तो जैसे-जैसे ख़र्च हो उसको लिखा जाय और दूसरे में माहवार (आटा, दाल, चावल) हिसाब लिखा हो।

हिसाब रखने से ख़र्चीली आदतें छूट जाती हैं। फिज़ूलख़र्ची उधार-खाते में अधिक होती है। पिछले माह से तुलना करने पर अनेक ख़र्च यदि फिज़ूल मालूम हों तो उन्हें कम करने का प्रयत्न करना चाहिए।

हिसाब के सम्बन्ध में दो-तीन बातें जाननी आवश्यक हैं। हमें अपना ख़र्च अपनी आमदनी के हिसाब से रखना है, इसी दृष्टि से हिसाब रक्खा जाता है। बहुत-से लोग केवल दिखाने को ही हिसाब रखते है, न तो ये इसका प्रयत्न करते है कि हिसाब का अध्ययन कर फिज़ूलख़र्ची घटाये और न उन्हें इसकी चिन्ता ही होती है। ऐसे लोगों के लिए हिसाब रखना न रखना बराबर है।

नौकरों से हिसाब लेना अच्छा है लेकिन एक-एक पैसे की कमी या ज्यादती होने पर घंटों ख़र्च कर देना उचित नहीं। गृहस्थी बैंक नहीं है जहाँ एक एक पाई के लिए परेशानी हो जाय।

बचत—आय-व्यय का उचित सामञ्जस्य यद्यपि सरल नहीं, फिर भी हमें 'बचत' का सदैव ध्यान रखना चाहिए। यदि हमारी आमदनी में से बचत नहीं होती तो हमारे चिट्ठे में कोई खराबी और अनियमितता अवश्य है और हमें उस चिट्ठे का मनन करना चाहिए, ताकि आगे वे खर्च जो रोके जा सकते हों, कम कर दिये जायँ और बचत निश्चित रूप से होने लगे।

धन बचाना—द्रव्योपार्जन सरल है, परन्तु द्रव्योपयोग कठिन। यह सिद्धान्त सभी श्रेणियों की गृहस्थी के लिए समान रूप से लागू है। हमें अपनी आय का सदुपयोग करना चाहिए। मासिक आय में से जो धन शेष रहे, उसे जमा करना चाहिए। बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो अपनी आय में से थोड़ा ही बचा सकते हैं। उनके लिए किसी सरकारी संस्था में रुपया जमा करना ही श्रेयस्कर है। ऐसी संस्था में सेविंग बैंक प्रमुख है।

सेविंग-बैंक—सेविंग-बैंक का रुपया डाकखाने में जमा होता है। इसमें कम से कम चार आने जमा होते हैं, परन्तु साल में ५,०००) से ज्यादा जमा नहीं कर सकते। इसका हिसाब एक किताब में रहता है जो डाकखाने से मिलती है। उसे पास बुक कहते हैं।

सेविंग बैंक में रुपया मारे जाने का डर नहीं रहता, क्योंकि उसकी जिम्मेदारी सरकार के ऊपर रहती है। वहाँ सुविधा से रुपया जमा किया जा सकता है और जरूरत पड़ने पर निकाला भी जा सकता है। एक लाभ इस संस्था में यह भी है कि किसी मनुष्य के मरने पर उसका रुपया उसके घरवालों को बिना अदालत में गये मिल जाता है। सेविंग बैंक में १॥) सैकड़ा सालाना ब्याज भी मिलता है, परन्तु इसमें रुपया जमा करने और निकालने, रुपयों की सुरक्षिता और सरकार की जिम्मेदारी ये ही बातें महत्त्वपूर्ण हैं।

बीमा-कम्पनी—बीमा करनेवाली कम्पनियों की कमी नहीं है।

इनमें से अच्छी स्थितिवाली कम्पनी में
कम्पनी के नियमों के अनुसार रुपया बीमा
रहने पर स्वयं उसे या उसके मरने पर उसके
मिल जाता है। इससे यह लाभ है कि जीवित
रक़म वृद्धावस्था के लिए मिल जाती है, परन्तु
हो गई तो बाल बच्चों के गुजारे की समस्या हल हो जाती है। बीमे की कम्पनियों को अब आधी पूँजी सरकार के यहाँ जमा करनी होगी, इससे कम्पनियों के फेल होने और उनके दिवालिया होने का अन्देशा बहुत कम रह गया है।

जीवन का बीमा जितनी जल्दी करा लिया जाय, उतना ही अच्छा। जितनी ही उम्र बढ़ती जाती है, उतनी ही ज्यादा बीमे की क़िस्त की रक़म बढ़ती जाती है।

बीमा रुपये इकट्ठा करने का ढंग नहीं है। अकस्मात् मृत्यु होने पर बाल बच्चों को और अपाहिज होने पर स्वयं जीवन यापन में पेट भरने के योग्य रक़म मिलने का एक तरीका है।

बैंक में रुपया रखना—बैंक में रुपया जमा करने के दो ढंग हैं। एक तो रुपया जमा किया और जरूरत पड़ने पर निकाला, फिर जमा किया और निकाला। इसको 'चालू हिसाब' कहते हैं। बैंक इस पर ब्याज नहीं देता। बैंक में रुपया जमा करने पर जमा करनेवाले व्यक्ति के नाम का एक खाता खोल दिया जाता है और एक किताब दे दी जाती है जिसमें जितना रुपया जमा हो उसका इन्दिराज होता है। इस किताब को 'पास-बुक' कहते हैं। सेविंग बैंक की पास बुक की तरह इसमें रुपया जमा करने और निकालने का हिसाब रहता है। इसके अलावा एक किताब और मिलती है। उसे 'चेक-बुक' कहते हैं।

चेक—चेक एक प्रकार का छपा कागज है। इस पर दस्तख़त कर देने से और पानेवाले का नाम और रुपयों की संख्या लिख देने से बैंक

ा मिल जाता है। यह एक प्रकार का बैंक को प्रार्थना पत्र या हुक्मनामा है कि वह हमें या जिसका नाम लिखा हो उसे इतना रुपया दे दे। चेक डाक से भी भेजी जाती है। रुपया उसी को मिले जिसका नाम चेक में लिखा है, इसके लिए चेक के एक किनारे पर दो समानान्तर रेखाएँ खींचकर उनके बीच में 'एण्ड कम्पनी' लिख देते हैं। इसे अँगरेजी में क्रास्ड चेक कहते हैं। अब रुपया उसी को मिलेगा जिसका या तो बैंक में रुपया जमा होगा, या जिसे बैंक में कोई पहचानता हो या कोई जिम्मेदार आदमी उसकी शिनाख्त करे।

चेक का रुपया लेने के लिए उसकी पीठ पर अपने दस्तख़त करने होते हैं। हर माह अपनी 'पास बुक' बैंक में भेज देना चाहिए ताकि वह पूरा हिसाब उसमें दर्ज कर दे और जमा करनेवाले को अपनी परिस्थिति मालूम होती रहे।

ओवर ड्राफ्ट—बैंक में जितना रुपया जमा है उससे ज्यादा रुपया चेक से निकाल लिया जाता है तो उसको ओवर ड्राफ्ट कहते हैं। बैंक विश्वासपात्र आदमी ही को ओवर ड्राफ्ट देती है। इस ओवर ड्राफ्ट पर व्याज देना पड़ता है।

डिपोज़िट—बैंक में रुपया जमा करने का यह दूसरा ढंग है। इसमें एक निश्चित रक़म जमा करनी पड़ती है। जो रुपया जमा कर देने पर निश्चित अवधि के भीतर नहीं निकाला जाता उसे निश्चित डिपोजिट कहते हैं। इस पर सूद मिलता है और जिस अवधि तक के लिए रुपया जमा होता है उसके पहले निकालने के लिए बैंक को नोटिस देना पड़ता है।

बैंकवाले अपना रुपया उधार देते हैं और उद्योग धन्धों में लगाते हैं।

कभी-कभी बैंक दिवालिया हो जाते हैं। उस दशा में शेअरवालों को रुपया में कुछ आने ही मिलते हैं।

मकान गिरवी रखकर भी रुपया मिल सकता है। इसमें कुछ रुपया तो नक़द देना पड़ता है बाक़ी की जिम्मेदारी के लिए मकान लिख लिया जाता है।

वारिस बनना—वारिस बनाने के लिए बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। जायदाद, जमीन, घर का बहुमूल्य सामान, फ़र्नीचर, हीरा-जवाहरात आदि सब चीजें वारिस के नाम लिखी जा सकती हैं। रुपये-पैसेवाले कागज़ भी वारिस को मिल सकते हैं। वारिस बनाने के नियम यह हैं कि वसीयतनामा स्टैम्प के काग़ज पर लिखा जाय, परन्तु वह साधारण कागज़ पर भी लिखा जा सकता है, दो आदमी अवश्य गवाह हों जिनके सामने उस आदमी ने दस्तखत किये हों।

४—रोगी की सेवा शुश्रूषा

स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों का कितना ही पालन क्यों न किया जाय फिर भी घर में कोई न कोई आदमी कभी न कभी बीमार हो ही जाता है। ऐसा कोई घर नहीं है, जहाँ कोई बीमार न पड़ता हो। बीमार की सेवा शुश्रूषा करना घरवालों का प्रधान कर्त्तव्य है, विशेषकर स्त्रियों का। क्योंकि रोगी की सेवा-शुश्रूषा पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक अच्छी तरह कर सकती हैं। बच्चों की सेवा भी स्त्रियों को ही करनी पड़ती है। इसके सिवा पुरुष तो धनोपार्जन करने के लिए दिन में घर से बाहर रहते हैं। फिर रोगी की सेवा कौन करे? स्त्रियाँ। माँ, बहन, पत्नी या पुत्री इन्हीं में से किसी को सेवा करनी पड़ती है। इसलिए स्त्रियों को सेवा-शुश्रूषा सम्बन्धी साधारण नियमों का जानना जरूरी है। हम तुम्हें इस सम्बन्ध में भी कुछ बातें बताते हैं।

परिचारिका के काम—रोग का इलाज तो वैद्य या डाक्टर ही कर सकता है, परन्तु रोगी के लिए ऊपरी सेवा करनेवालों की बहुत

जरूरत होती है। वैद्य या डाक्टर तो रोगी को देखकर दवा तजवीज़ कर देता है, पर रोगी के कपड़े बदलना, उसके कमरे को साफ़ रखना, उसे आवश्यक चीजें देना, उसे समय पर और डाक्टर के बताये अनुसार भोजन देना ठीक समय पर उसे दवा पिलाना, जरूरत हो तो रोगी को हवा करना आदि काम तो नर्स या परिचारिका को ही करने पड़ते हैं। घरों में स्त्रियाँ परिचारिका का काम कर सकती हैं।

परिचारिका के गुण—डाक्टर की अपेक्षा परिचारिका रोगी को सुख अधिक पहुँचा सकती है। इसलिए उसमें ख़ास-ख़ास गुणों की जरूरत है। परिचारिका को सदा प्रसन्नचित्त, हँस-मुख, विनम्र, दयालु और साथ ही दृढ भी होना चाहिए। उसको चतुर, गृह-कार्य में दक्ष, भोजन बनाने में होशियार और स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों का जानकार होना भी जरूरी है।

रोगी का स्वभाव बहुधा चिड़चिड़ा हो जाता है। वह सेवा करनेवाले पर झल्ला भी बैठता है, पर परिचारिका को कभी रोगी की बातों का बुरा न मानना चाहिए और उसे सदा तसल्ली देते रहना चाहिए।

परिचारिका के कर्त्तव्य—परिचारिका को चाहिए कि रोगी को डाक्टर के आदेशानुसार ठीक समय पर दवा और भोजन दे। यदि कोई बात उसकी समझ में न आवे अथवा उसे न मालूम हो तो उसे डाक्टर से पूछ लेनी चाहिए।

रोग के बढ़ने-घटने का समय और रोगी की ख़ास-ख़ास शिकायतें परिचारिका को अपनी नोटबुक में लिख लेनी चाहिए और सुबह शाम, दोपहर व रात्रि को रोगी का टेम्प्रेचर (तापक्रम) लेकर डाक्टर को सब बातें बता देनी चाहिए। साधारण तौर पर स्वस्थ मनुष्य का टेम्प्रेचर ९८$\frac{2}{5}$ डिग्री होता है। इससे अधिक हो तो ज्वर समझना चाहिए।

यदि डाक्टर रोगी के सम्बन्ध में कोई चिन्ताजनक बात कहे तो परिचारिका को उसे रोगी को न बताना चाहिए। परिचारिका को

यह भी चाहिए कि वह रोगी के मनोरंजन के लिए कुछ बातें करती रहे।

परिचारिका को रोगी की सेवा के साथ ही अपनी सेवा करना भी न भूल जाना चाहिए। उसे अपनी तन्दुरुस्ती का भी ध्यान रखना चाहिए। इसके लिए उसे भी स्वास्थ्य और सफ़ाई सम्बन्धी नियमों का पालन करना चाहिए और काफ़ी विश्राम लेना चाहिए। ऐसा न हो कि जब रोगी को उसकी सेवा की जरूरत हो तब वह थककर चूर हो गई हो और सेवा करने में असमर्थ रहे।

परिचारिका के वस्त्र भी साफ़ रहने चाहिए। उसे अपने वस्त्रों को रोज गरम जल में धोना चाहिए।

कमरे का प्रबन्ध—रोगी के लिए, जहाँ तक सम्भव हो बड़े, सील-रहित, हवादार और रोशनी आ सकनेवाले कमरे की जरूरत होती है। रोगी के कमरे में किसी प्रकार का शोर गुल न होना चाहिए।

रोगी के कमरे की खिड़कियाँ खुली रहनी चाहिए और उसकी चारपाई इस तरह बिछानी चाहिए जिससे उसे तेज हवा न लग सके। जाड़े के दिनों में यदि जरूरत हो तो लकड़ी के कोयले की आग जलाकर रोगी का कमरा कुछ गर्म कर देना चाहिए, लेकिन इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि रोगी कमरे में धुआँ न होने पावे और आग भी न रक्खा रहे।

रोगी के कमरे में सामान कुछ न होना चाहिए। केवल आवश्यक मेज़, कुर्सी और रोगी की दवाइयाँ वग़ैरह होनी चाहिए। कमरे की खूबसूरती के लिए कुछ चित्र या गुलदस्ते रक्खे जा सकते हैं। इनसे रोगी का चित्त प्रसन्न होता है। यदि रोगी कोई पुस्तक पढ़ना पसन्द करे तो उसे ऐसी ही पुस्तक पढ़ने को देनी चाहिए जो बाद को नष्ट की जा सके। इसी प्रकार यदि रोगी बच्चा हो तो उसे जो खिलौने खेलने को दिने जायँ वे बाद को नष्ट करके फेंक देने चाहिए। यह इसलिए कि

कभी-कभी रोग के कीटाणु रोगी के पासवाली चीज़ों में लग जाते हैं और दूसरे लोगों को भी उन चीजों को इस्तेमाल करने से वही रोग हो जाता है।

रोगी की चारपाई या पलँग यदि लोहे का हो तो अच्छा है नहीं तो उसकी चारपाई कसी हुई होनी चाहिए। रोगी के अच्छा होने पर उसे गर्म जल से धोकर धूप में डाल देनी चाहिए।

रोगी के बिस्तर साफ़ होना चाहिए। उसके बिस्तर को बदलते भी रहना चाहिए। रोगी के वस्त्र भी बदलते रहना चाहिए। रोगी को ऐसे ही वस्त्र और बिस्तर देने चाहिए जो गर्म जल में अच्छी तरह उबाले जा सके।

आराम—रोगी को पूर्णरूप से आराम देना चाहिए। यदि उसे नींद आती हो तो सोने देना चाहिए और किसी प्रकार का शोर गुल न करना चाहिए। शोर-गुल करने से रोगी के आराम में खलल पडता है। उसकी चारपाई और कपड़े भी ऐसे होने चाहिए कि जिससे वह आराम के साथ लेट सके।

बहुधा देखा जाता है कि रोगी को देखने के लिए अनेक मिलने-वाले आते है। वे लोग रोगी से तरह तरह की बातें करते हैं। रोगी को भी उनसे बोलना पड़ता है। इससे रोगी के आराम में ख़लल पडता है। इसलिए बीमारी की दशा में बहुत कम—केवल चुने हुए—लोगों को ही रोगी से मिलने देना चाहिए। यदि रोग संक्रामक हो तब तो किसी मिलनेवाले को रोगी के पास जाने की इजाज़त न होनी चाहिए।

खाना—रोगी के खाने के सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जो खाना वैद्य या डाक्टर रोगी को देने को बतावे, वही देना चाहिए। खाने का वजन भी वैद्य या डाक्टर के आदेशानुसार होना चाहिए। रोगी का खाना सदा ताजा, हल्का,

जल्द पचनेवाला और नीरोग होना चाहिए। यदि वैद्य या डाक्टर ने खाने को फल बताये हों तो ऐसे फल देने चाहिए जो अधिक पके हुए न हों।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि रोगी को खाना और दवा दोनों नियत समय पर देनी चाहिए। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि खाने के बर्तन साफ़ हों और उनमें किसी विषैली दवा वगैरह का हाथ न लगने पावे।

दवा के सम्बन्ध में इस बात का बहुत ख़याल रखना चाहिए कि खाने और लगाने की दवाइयाँ अलग अलग रक्खी जायँ, क्योंकि लगाने की बहुत-सी दवाइयाँ विष होती हैं और यदि भूल से उसे रोगी को खाने को दे दिया तो फिर रोगी का ईश्वर ही मालिक होगा।

रोगी जब कुछ अच्छा हो जाय और उसे पथ्य मिल जाय तब भी उसके खान पान के सम्बन्ध में बड़ी सावधानी रखने की ज़रूरत है। ऐसी दशा में बहुत-से रोगी कुपथ्य कर बैठते हैं या इतना अधिक खाना खा लेते हैं जितना वे पचा नहीं सकते। इससे वे फिर बीमार पड़ जाते हैं। रोगी का दुबारा बीमार पड़ना बड़ा खतरनाक है, इसलिए पथ्य लेने के बाद भी परिचारिका को उसके भोजन और दवा के नियमों को जारी रखना चाहिए।

५—शिशु-सेवा

शिशु का स्वास्थ्य—शिशु के अंग-प्रत्यंग बहुत ही कोमल और सुकुमार होते हैं। बाहरी अंग-प्रत्यंग ही की भाँति शिशु के आभ्यन्तरिक यंत्र भी बहुत ही निर्बल और कोमल होते हैं। अप्राकृतिक नियमों, वस्तुओं और क्रियाओं का उन पर इतनी शीघ्रता के साथ प्रभाव पड़ता है कि वे शीघ्र रुग्ण हो जाते हैं। उनके आभ्यन्तरिक यंत्रों

और अंग प्रत्यंगों में इतनी शक्ति नहीं होती कि वे अधिक देर तक विरोधी परिस्थितियों से लड-झगडकर अपने स्वास्थ्य को स्थिर रख सकें। इसलिए यह बहुत ही आवश्यक है कि शिशु के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए उसकी अप्राकृतिक नियमों से रक्षा की जाय।

शिशु का स्वास्थ्य जिन कारणों से विकृत होता है, उनमें उसके भोजन का विशेष स्थान है। शिशु के भोजन पर ही उसका स्वास्थ्य निर्भर रहता है। शिशु को जिस प्रकार का भोजन दिया जाता है, उसी की दृष्टि से उसका स्वास्थ्य बनता और बिगडता रहता है। किन्तु भोजन के अतिरिक्त शिशु के स्वास्थ्य से सम्बन्ध रखनेवाले और भी कई ऐसे विषय हैं, जो अधिक महत्त्वपूर्ण हैं और जिन पर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है।

शिशु की स्वच्छता—शिशु के स्वास्थ्य को सबल बनाने और उसे रोगों से बचाने के लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि उसे गन्दगी से बचाया जाय। गन्दगी ही शिशु की मृत्यु और उसकी निर्बलता का प्रधान कारण है। अनेक प्रकार के रोग केवल गन्दगी से ही बालक को ग्रसित कर लेते हैं। गन्दगी से तात्पर्य उन वस्तुओं की गन्दगी से है, जिनका बालक के जीवन में उपयोग होता है। जैसे भोजन की गन्दगी और शरीर की गन्दगी इत्यादि। शिशु के काम में आनेवाली जितनी भी वस्तुएँ हों, सभी अत्यन्त स्वच्छ, नूतन और शक्तिवर्धक होनी चाहिए। शिशु को खाने के लिए स्वच्छ और ताजा भोजन देना चाहिए। गन्दा और बासी भोजन शिशु के जीवन के लिए विष के सदृश प्रमाणित होता है। शिशु के वस्त्रों को प्रतिदिन धोना और साफ करना चाहिए।

इन सभी बातों के साथ ही साथ शिशु के शरीर की स्वच्छता पर बहुत अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। उसके शरीर को स्वच्छ रखने के लिए उसे प्रतिदिन नियमपूर्वक स्नान करवाना चाहिए।

स्नान से शरीर की गन्दगी तो दूर हो ही जाती है, शरीर में एक प्रकार का नया जीवन सा आ जाता है।

स्वच्छ वायु—शिशु को सदैव स्वच्छ वायु में रखना चाहिए। स्वच्छ वायु शिशु के स्वास्थ्य को बल प्रदान करती है और वह शक्तिशाली बनता है। स्वच्छ वायु जब साँस के द्वारा शिशु के भीतर प्रवेश करती है तब शिशु रोगों से उन्मुक्त होने के साथ ही साथ प्रफुल्लित हो उठता है। घर में ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए जिससे शिशु को निरंतर स्वच्छ वायु मिलती रहे। घर में शिशु को ऐसे स्थान में रखना चाहिए।

स्वच्छ वायु के लिए बच्चों को बाहर मैदान में ले जाना चाहिए। किन्तु इस बात का ध्यान रहे कि आँधी और तेज वायु में बच्चों को बाहर न निकालना चाहिए। छोटे-छोटे बच्चों को गोद या गाड़ियों में बैठाकर मैदान में टहलाना चाहिए। पैरों के बल चलनेवाले बच्चों को मैदान में दौड़कर खेलना चाहिए। वायु के साथ ही साथ बच्चों को धूप में भी बैठालना चाहिए।

शिशु के सोने का स्थान—शिशु के सोने का स्थान निर्मल, पवित्र और प्रकाशयुत होना चाहिए। उसमें इतनी खिड़कियाँ होनी चाहिए कि बच्चे को उनके द्वारा उचित परिमाण में स्वच्छ वायु प्राप्त हो सके। कमरा न तो अधिक सर्द होना चाहिए और न तो अधिक गर्म। ६० से ६५ फ० से अधिक ताप कमरे का न होना चाहिए। कमरे के ताप को सदैव एक सा बनाये रखने का प्रयत्न करना चाहिए। ताप की वृद्धि से बच्चे को अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जहाँ तक हो सके, बच्चे को सुलाने के लिए ऊपर के कमरे में प्रबन्ध करना चाहिए।

शिशु की निद्रा—युवा और आयु प्राप्त मनुष्यों की भाँति शिशु के लिए भी निद्रा अधिक आवश्यक है। शिशु निद्रा ही के द्वारा जीवन

लाभ करता है। जिस शिशु के पाचन यंत्र उचित रूप से अपना काम करते रहते हैं, वह नवजात शिशु इक्कीस घंटे सोता है। इसी प्रकार ६ मास का स्वस्थ शिशु सोलह घंटे तक सोकर नूतन शक्ति प्राप्त करता है। इससे अधिक या कम सोना शिशु के निर्बल स्वास्थ्य का चिह्न है। जो बच्चे इक्कीस घंटे से भी अधिक सोते हैं, उन्हें सिर-सम्बन्धी बीमारियाँ होती हैं। सोलह घंटे से कम सोनेवाले बच्चे पाचन-विकारों से ग्रसित रहते हैं। शिशु को सुलाने के लिए उसे कभी अफीम जैसी नशीली वस्तुएँ न खिलानी चाहिए।

शिशु का बिस्तर—शिशु को लोहे की बनी हुई चारपाई या बेंत के बने हुए पालने पर सुलाना चाहिए। यदि लोहे की चारपाई और बेंत का पालना न उपलब्ध हो सके तो साधारण चारपाई पर ही सुलाया जा सकता है। बच्चे के सोने के लिए जिस किसी भी चारपाई पर प्रबन्ध किया जाय, वह स्वच्छ और नई होनी चाहिए। मूँज और सन की डोरी से बुनी हुई पुरानी चारपाइयों में प्राय. पिस्सू और खटमल घुसे रहते हैं। इस प्रकार की चारपाई पर बच्चे को कभी न सुलाना चाहिए। शिशु का बिस्तर अधिक कोमल और गरम होना चाहिए। अमीर मनुष्यों को शिशु के सोने के लिए एक विशेष प्रकार का कोमल गद्दा बनवाना चाहिए। शिशु का गद्दा यदि पुआल, मूँज और नारियल की जटाओं को भरकर बनवाया जाय तो विशेष अच्छा हो। गद्दे के ऊपर रबड की चद्दर और फिर उसके ऊपर सफेद चद्दर बिछा देनी चाहिए। गरीब मनुष्य इस प्रकार का गद्दा बनवाने में असमर्थ होते हैं, इसलिए उन्हें अपनी स्थिति के अनुसार कोमल गद्दा बनवाना चाहिए।

शिशु की श्वास-क्रिया—साँस की क्रिया का यह प्राकृतिक नियम है कि मनुष्य नाक के द्वारा साँस ग्रहण करे। बच्चा हो चाहे तरुण हो, वृद्ध हो चाहे किशोर, प्रत्येक मनुष्य को नाक ही के द्वारा साँस लेनी
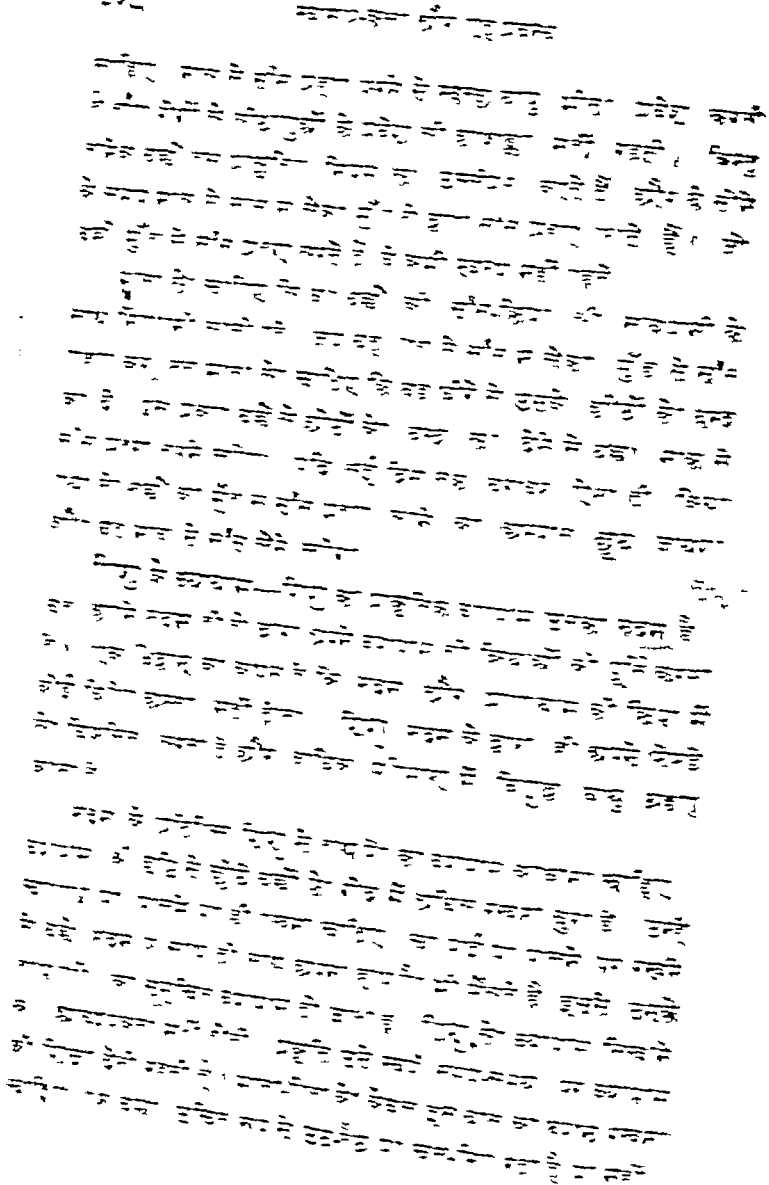
जब बच्चा उठने बैठने और चलने-फिरने में नियमों का उल्लंघन करने लगे तब उन्हें सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए। बच्चों के उठने-बैठने और चलने-फिरने की क्रिया पर ध्यान न देने से शरीर की सुडौलता जाती रहती है।

शिशु को दूध पिलाना—शिशु का मुख्य आहार दूध है। दूध के ऊपर शिशु का जीवन निर्भर रहता है। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि शिशु को स्वच्छता और अप्राकृतिक ढंग से दूध पिलाया जाय। अप्राकृतिक ढंग से पिलाया हुआ दूध शिशु को रोगी बना देता है। शिशु को दूध पिलाने के समय स्वच्छता, क्रम और मात्रा का ध्यान रखना बहुत ही आवश्यक है। छोटे बच्चे अपनी माँ का दूध पीते हैं। माता को चाहिए कि वह शिशु को दूध पिलाने के समय स्वच्छता को अधिक महत्त्व दे। दूध पिलाने के पूर्व माता को स्वच्छ वस्त्र पहनकर निश्चिन्त मन से एक स्थान पर बैठ जाना चाहिए और फिर बच्चे को गोद में लेकर स्तन उसके मुख में देना चाहिए। स्तन मुख में देने के पूर्व उसे भली प्रकार स्वच्छ कर लेना चाहिए बार बार स्तन मुख से डालने से वह गन्दा हो जाता है। उसमें पसीना इत्यादि भी लगा रहता है। स्तन का बिना धोये हुए उस बच्चे के मुख में डालने से बच्चा बीमार हो जाता है।

दूध पिलाने के पूर्व एक और बात पर भी ध्यान देना बहुत आवश्यक है। माता को चाहिए कि वह स्तन शिशु के मुख में डालने के पूर्व उसे भूमि पर निचोड़ दे। इसका कारण यह है कि शिशु जब माता का स्तन मुख में डालकर दूध खींचता है तब सर्वप्रथम उसके मुख में कुछ दूषित अंश आता है जो कि माता के दूध के प्रथमावेग में मिला रहता है। यदि इस दूषित अंश को भूमि पर न निचोड़ दिया गया और शिशु को पीने दिया गया तो उसके निरन्तर पान से शिशु को कफ-सम्बन्धी बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

की पीठ में कूबड निकल आता है और उसके विकास की गति रुक जाती है।

शिशु को नहलाना—शरीर की स्वच्छता के लिए शिशु को प्रतिदिन स्नान कराना बहुत ही आवश्यक है। स्नान से शिशु के स्वास्थ्य को बल प्राप्त होता है और वह नवीन जीवन का अनुभव करता है।

शिशु को ऐसे स्थान में स्नान न कराना चाहिए जहाँ तीव्र वायु का झोंका उसके शरीर को हानि पहुँचा सके। शीत से मिली हुई तीव्र वायु शिशु के शरीर को कँपा देती है और शिशु सर्दी का शिकार हो जाता है। शिशु को बहुत तड़के भी न नहलाना चाहिए। शिशु को नहलाने का सर्वोत्तम समय दस और बारह के मध्य का है। उस समय सूर्य की धूप पर्याप्त गर्म हो जाती है। गर्मी के दिनों में आठ और दस के बीच में भी नहलाया जा सकता है।

स्नान के पूर्व शिशु के शरीर में तेल की मालिश करनी चाहिए। मालिश के लिए सरसों का तेल बहुत ही उपयुक्त होता है। मालिश करते समय शिशु के अंगों की कोमलता का ध्यान रखना चाहिए। बेसन का उबटन लगाना चाहिए। इससे तेल की चिकनाई जाती रहती है और अनावश्यक रोयें भी गिर जाते हैं।

शिशु के स्नान का जल न तो अधिक गर्म होना चाहिए और न अधिक ठंडा। जिस प्रकार अधिक गर्म जल से शिशु के शरीर का चमड़ा लाल हो जाता है, उसी प्रकार ठंडे जल से उस पर नीलिमा दौड़ जाती है।

शिशु के स्नान के पूर्व उसके स्नान का सारा सामान स्नान-स्थान पर एकत्र करके रख लेना चाहिए। जैसे तौलिया, सूखा वस्त्र और साबुन इत्यादि। जहाँ तक हो सके स्नान के समय साबुन का प्रयोग बहुत कम होना चाहिए। स्नान के पश्चात् जिन वस्त्रों को शिशु पहनने-

वाला हो, वे बहुत ही सूखे हुए और कुछ गर्म होने चाहिए। स्नान के पश्चात् शिशु को अधिक देर तक नंगे बदन रहने देना अधिक हानिकारक है।

स्नान के समय शिशु के सभी अंगों को भली भाँति स्वच्छ करना चाहिए। कान, नाक, मुँह, जीभ, दाँत और आँख, सभी को कपड़े के टुकड़े से धीरे से मल-मलकर पोंछना चाहिए। जीभ और दाँतों की सफ़ाई भी कपड़े के टुकड़े से की जा सकती है।

शिशु को सदैव बन्द कमरे में स्नान कराना चाहिए। बाहर खुली वायु में स्नान कराने से शिशु को सर्दी लग जाती है यदि तेज हवा न हो तो कमरे की खिड़कियाँ खुली रखनी चाहिए। तेज हवा के दिनों में कमरे की खिड़कियाँ बन्द करके स्नान कराना चाहिए।

शिशु के वस्त्र—शिशु के वस्त्र एक प्रकार के होने चाहिए। युवा और आयु-प्राप्त मनुष्यों की भाँति शिशु हर एक प्रकार का वस्त्र नहीं धारण कर सकता। इसलिए माता-पिता को शिशु के लिए कपड़े बनवाते समय निम्नांकित बातों पर ध्यान देना बहुत ही आवश्यक है —

(१) शिशु के कपड़े अधिक कोमल होने चाहिए। कड़े, रोएँदार, और खुरदरे कपड़े शिशु के लिए कष्टदायक होते हैं।

(२) शिशु के वस्त्रों में उचित परिमाण में गर्मी की मात्रा होनी चाहिए। किन्तु इतनी गर्मी न हो कि शिशु उसे सहन न कर सके और वह शिशु के जीवन के लिए अनिष्टकारी बन जाय।

(३) शिशु के लिए ऐसे कपड़े बनवाने चाहिए, जिनसे कि उसके शरीर की भली प्रकार रक्षा हो सके। अधूरे और अधटँगे कपड़ से शिशु के अंगों का भली भाँति संरक्षण नहीं होता। उसे शीत इत्यादि लग जाती है और वह निमोनिया इत्यादि रोगों से पीड़ित हो उठता है।

(४) शिशु के कपड़े बहुत ही मुलायम और हल्के होने चाहिए।

(५) शिशु को अधिक चटकीले रंगवाले कपड़े न पहनाना चाहिए।

(६) शिशु के वस्त्र बहुत ही ढीले ढाले होने चाहिए।

शिशु के वस्त्रों को प्रतिदिन साबुन से धोना चाहिए और उसे बदल बदल करके कपड़े पहनाने चाहिए। जिनके पास अधिक वस्त्र न हों, उन्हें चाहिए कि वे प्रतिदिन शिशु के कपड़ों को भली भाँति धोकर उन्हें धूप में डाल दें। छोटे-छोटे बच्चों को जूते और मोजे पहनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। जूते और मोजे से शिशु का पैर कस उठता है और उनकी वृद्धि का विकास रुक जाता है। यह आवश्यक है कि पैरों को शीत से बचाना चाहिए, किन्तु यह भी अधिक आवश्यक है कि पैरों को तंग जूतों और मोजों से न कस दिया जाय। यदि मोजे और जूते काम में लाये जायँ तो वे तंग न होकर ढीले-ढाले होने चाहिए।'

शिशु को जल पिलाना—शिशु अपनी अवस्था ही के अनुसार जल पीता है। भोजन और जल में जो आपेक्षिक परिमाण स्थिर किया गया है, उसी के अनुसार शिशु को प्रतिदिन जल पिलाना चाहिए। बहुत से लोग सर्दी लग जाने के कारण शिशु को जल नहीं पिलाते। जो लोग ऐसा करते है, उनके बच्चे बहुत शीघ्र ही पाचन-विकार से उत्पीड़ित हो जाते है।

शिशु के पीने का जल उबाला हुआ होना चाहिए। बिना उबाला हुआ जल शिशु को कभी न देना चाहिए। बिना उबाला हुआ जल एक तो विशेष ठंढा होता है, दूसरे उसमें कीटाणुओं के रहने की आशङ्का रहती है।

शिशु की आदतें—शिशु की आदतों को जिस प्रकार के साँचे में ढाला जायगा, उसी प्रकार उसके भावी जीवन का निर्माण होगा। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि शिशु की आदतों पर भली

क्रिया को विकृत कर देता है। रंगीन विलायती खिलौनों में भी यही दूषित पदार्थ विद्यमान रहता है और उनसे भी शिशु की पाचन-क्रिया को हानि पहुँचने की आशङ्का रहती है।

शिशु का भोजन—शिशु का मुख्य भोजन दूध है। जब तक शिशु अन्न नहीं खाने लगता तब तक वह दूध पर ही अपने जीवन को आश्रित रखता है। शिशु को चार स्थानों से दूध प्राप्त होता है। माता का दूध, धाय का दूध, गाय का दूध और बनावटी दूध। शिशु के स्वास्थ्य के लिए माता ही का दूध अधिक सर्वोत्तम होता है। जब तक शिशु को पीने के लिए माता का दूध भली प्रकार प्राप्त हो सके तब तक उसे धाय, गाय या बनावटी दूध को देने की आवश्यकता नहीं। धाय का और बनावटी दूध तो शिशु को उस अवस्था में पिलाना चाहिए जब कि माता के स्तनों में दूध न उत्पन्न होता हो। किन्तु आजकल अमीर घरानों की स्त्रियाँ स्तनों में दूध होने पर भी अपने शिशु को धाय को सिपुर्द कर देती हैं। यह उनकी अज्ञानता है। माता को स्वयं अपने शिशु का लालन-पालन करना चाहिए। मातृ पद की महानता भी इसी में है। जिन लड़कों को माता का दूध नहीं पीने दिया जाता अथवा जिनकी माता के स्तनों में दूध नहीं उत्पन्न होता और जो धाय का दूध पीते हैं, उनमें माता-पिता के गुण अंकुरित नहीं हो पाते। जिस धाय का दूध वे पीते हैं, उसी के विचारों और गुणों के अनुसार उनके भी हृदय का निर्माण होता है। माता का दूध निम्न दशाओं में न देना चाहिए —

(१) गर्भवती माता का दूध शिशु को न पिलाना चाहिए।

(२) माता का दूध जब दूषित हो गया हो तब वह शिशु को न पीने देना चाहिए।

(३) यक्ष्मा इत्यादि रोगों से उत्पीड़ित माता का दूध शिशु को न पीने देना चाहिए।

(४) संक्रामक और विषैले रोगों से ग्रसित माता का दूध शिशु को न पिलाना चाहिए।

(५) पगली माता का दूध शिशु को न पिलाना चाहिए।

(६) शिशु के स्वास्थ्य को नष्ट करनेवाली माता का दूध शिशु को न पिलाना चाहिए।

दूध पिलाने का समय—शिशु को दूध उचित मात्रा में और उचित समय पर पिलाना चाहिए। माता को चाहिए कि वह दूध पिलाने के समय की एक सूची बना ले और उसी सूची के अनुसार शिशु को प्रतिदिन दूध पिलाया करे। जो माताएँ शिशु के दूध की मात्रा और समय पर ध्यान देती हैं, उनके बच्चे बहुत कम रुग्ण होते हैं। दूध पिलाने में घड़ी की सहायता अवश्य लेनी चाहिए। जब दूध पिलाने का समय हो जाय तब अपना सब काम छोड़कर शिशु को दूध पिलाना चाहिए। दूध पिलाते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि कहीं शिशु अधिक मात्रा में दूध न पी ले। इसलिए दस पन्द्रह मिनट से अधिक शिशु को दूध न पिलाना चाहिए। इतनी देर में शिशु पर्याप्त मात्रा में दूध पी लेता है।

शिशु को प्रथम तीन महीने में दिन में दो-दो घंटे के अन्तर से दूध पिलाना चाहिए। रात में तीन बार से अधिक दूध पिलाना उचित नहीं है। चौथे महीने में तीन-तीन घंटे का क्रम कर देना चाहिए और रात में केवल दो ही बार दूध पिलाना चाहिए। पाँचवें महीने में दिन में चार बार और रात में केवल एक ही बार पिलाना चाहिए। इसी अनुपात से आगे के महीनों में भी समय का निर्द्धारण कर लेना चाहिए और उसी के अनुसार दूध पिलाना चाहिए।

धाय का दूध—माता के स्तनों में जब दूध न उत्पन्न हो अथवा कम उत्पन्न हो तब शिशु को दूध पिलाने के लिए धाय रखने की आवश्यकता है।

धाय का निर्वाचन बड़ी सावधानी के साथ करना चाहिए। हमारे देश में धाय रखना लोग महत्त्व की बात समझते हैं। किन्तु बहुत कम ऐसे लोग हैं, जो उसके निर्वाचन में स्वास्थ्य-विज्ञान को महत्त्व देते हैं। जो लोग धायों के चुनने में सावधानी के साथ काम न लेकर स्वच्छन्दता के साथ उनका निर्वाचन करते हैं, वे अपनी अज्ञानता के कारण शिशु के लिए खाईं खोदते हैं।

धाय के निर्वाचन में निम्नांकित बातों का ध्यान रखना बहुत ही आवश्यक है :—

(१) धाय स्वस्थ, सुन्दर और सुडौल हो। उसे किसी प्रकार का पैतृक अथवा औपसर्गिक रोग न हो।

(२) धाय का स्वच्छ रहना बहुत ही आवश्यक है। उसके कपड़े स्वच्छ होने के साथ ही साथ उसका शरीर भी स्वच्छ होना चाहिए। वह अपने मुख, दाँत, जीभ और मसूड़ों की स्वच्छता पर भली भाँति ध्यान देती हो।

(३) धाय अच्छे चरित्र की, नम्र, अच्छे स्वभाव की और प्रसन्न-चित्त होनी चाहिए।

(४) धाय के स्तन कठोर मोटे होने चाहिए।

(५) धाय रखने के पूर्व उसके दूध की परीक्षा भली भाँति कर लेनी चाहिए। जिस धाय के दूध में पोषक पदार्थ अधिक हों, उसी को रखना चाहिए।

(६) धाय के शरीर में यदि किसी प्रकार का चर्म-रोग हो तो उसे न रखना चाहिए।

(७) धाय की उम्र शिशु की माँ की उम्र से अधिक न होनी चाहिए।

(८) क्रोधी और उन्मत्ता स्त्री को धाय के रूप में कभी स्थान न देना चाहिए।

(९) अधिक सोनेवाली धाय को न रखना चाहिए।

(१०) ऋतुमती धाय का दूध शिशु को न पिलाना चाहिए।

(११) धाय को रखते समय उसके बच्चे पर भी ध्यान देना आवश्यक है। धाय के बच्चे की अवस्था में और उस बच्चे की अवस्था में जिनके लिए धाय रक्खा जा रहा हो, बहुत कुछ समानता होनी चाहिए।

(१२) जिस स्त्री को बार बार गर्भपात और गर्भस्राव होता हो, उसे धाय के रूप में कदापि न रखना चाहिए।

(१३) कमजोर, रोगी और मूर्ख पति की स्त्री को धाय का पद न देना चाहिए।

ऊपर का दूध—जो लोग गरीबी के कारण धाय की व्यवस्था नहीं कर सकते, उन्हें चाहिए कि वे शिशु को ऊपर का दूध पिलावें। किन्तु ऊपर का दूध पिलाने में अधिक सावधानी से काम लेना चाहिए। क्योंकि वह शिशु का प्राकृतिक भोजन नहीं है। इसलिए वह अपने थोड़े से विकार के कारण भी शिशु के लिए अनिष्टकारी प्रमाणित हो सकता है।

जितने दूध देनेवाले जानवर होते हैं, उनमें प्रायः गाय, भैंस, बकरी, भेड़ और गधी के दूध का उपयोग किया जाता है। इसी लिए स्त्री के दूध के गुणों की तुलना में इन्हीं के दूध के गुणों का उल्लेख किया जा रहा है। गाय का दूध शीतल होता है और देर में पचता है। गाय का दूध रक्त, वात और पित्त के विकार को दूर करता है। बकरी का दूध कसैला और शीतल होता है। वह हलका होने के साथ ही साथ दस्त को रोकता है। भैंस का दूध बहुत भारी होता है। उसमें वसा का इतना अधिक अंश होता है कि वह अधिक देर में पचता है। भेड़ के दूध का स्वाद नमकीन होता है। भेड़ का दूध भी भारी, गर्म और चिकना होता है। गधी का दूध मीठा होता है और कफ वात को दूर करता है।

ऊपर के दूध में गाय ही का दूध अधिक सर्वोत्तम होता है। हमारे देश में गाय का दूध अधिक सर्वोत्तम भी समझा जाता है। आयुर्वेद ग्रन्थों में गो-दुग्ध की बड़ी प्रशंसा लिखी है। विलायत इत्यादि पश्चिमी देशों में भी गाय के दूध का अधिक प्रचार है। इसलिए शिशु को जब कभी ऊपर का दूध पिलाने की आवश्यकता प्रतीत हो तब उसे गाय ही का दूध पिलाना चाहिए। किन्तु दूध पिलाने के पूर्व उसे वैज्ञानिक नियमों के द्वारा माता के दूध की भाँति बना लेना चाहिए।

कृत्रिम दूध—आजकल बाज़ारों में शिशु के पीने के लिए बढ़िया लेबुलों से सुसज्जित बोतलों में दूध बिकते हैं। यूरोपीय सभ्यता ने जहाँ और वस्तुओं का प्रचार किया है, वहाँ शिशुओं के लिए उसने कृत्रिम दूध का भी निर्माण किया है। यूरोप के डाक्टर और व्यापारी इस कृत्रिम दूध के महत्त्व और उसकी उपयोगिता को विज्ञापनों द्वारा प्रमाणित करते रहते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस कृत्रिम दूध का भारत के सभ्य कहे जानेवाले घरों में अधिक प्रचार है, किन्तु तो भी यह कहा जा सकता है कि भारत की अधिकांश जनता अभी इससे दूर ही है और वह इससे जितना ही दूर रहे, उतना ही अच्छा भी है।

दूध की शीशियाँ—आजकल दूध की शीशियों का भी अधिक प्रचार हो चला है। ये शीशियाँ कई रूपों में बाजारों में चलती हैं। अमीर और बड़े घराने में शीशियों में भर करके ही शिशु को दूध पिलाया जाता है। ये शीशियाँ एक विशेष प्रकार की बनी हुई होती हैं और शिशु उन्हीं को माता का स्तन समझकर दूध पीने लगता है। शीशियाँ होती तो अच्छी हैं, किन्तु इनकी स्वच्छता पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

दूध की शीशियों के सम्बन्ध में निम्नांकित बातों पर ध्यान देना बहुत ही आवश्यक है —

(१) अच्छे दर्जे की अच्छी शीशियाँ ख़रीदनी चाहिए।

(२) काँच की शीशी सबसे अधिक अच्छी होती है। वह प्रकार स्वच्छ तो की जा सकती है साथ ही उसमें दूध के भ... का अनुमान भी हो जाता है। काँच की शीशी को काग के द्वारा बन्द कर देने से उसमें कीटाणुओं के प्रवेश करने की आशङ्का नहीं रहती।

(३) यदि शीशी में दूध पिलाने से बच जाय तो फेंक देना चाहिए। बचा हुआ दूध दूसरी बार कभी काम में न लाना चाहिए।

(४) दूध पिलाने के पश्चात शीशी और रबड़ की टोंटी को स्वच्छ कर डालना चाहिए। कुछ देर के पश्चात् स्वच्छ करने से गन्दगी जम जाती है और उसकी स्वच्छता के लिए अधिक परिश्रम करना पड़ता है।

(५) यदि दूध में मलाई का अंश हो तो उसे निकाल देना चाहिए। नहीं तो मलाई टोंटी के छिद्र पर जम जायगी और शिशु को दुग्ध-पान में बाधा उपस्थित होगी।

(६) रबड़ की दो चूँचियाँ रखनी चाहिए और बारी-बारी उनका उपयोग करना चाहिए। दूध पिलाने के पश्चात् चूँची को नल से भली भाँति स्वच्छ कर लेना चाहिए। दो चूँचियों के रखने से शिशु को स्वच्छ चूँची ही के द्वारा दूध मिलता रहेगा।

(७) शिशु को गोद में लेकर दूध पिलाना चाहिए। दूध पिलाने के समय शिशु के सिर को कुछ ऊँचा कर देना चाहिए। दूध पिलाकर शिशु को सुला देना चाहिए। उस समय उसे उछालना और हिलाना डुलाना ठीक नहीं होता।

(८) शीशी में रबड़ की जो चूँची लगाई जाय, वह बहुत आगे न होनी चाहिए। अधिक से अधिक वह ... इंच आगे ... है। इससे अधिक आगे रखने से शिशु को ...